[महाराणा प्रताप की जीवनी पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास]

मूल लेखक
श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई

अनुवादक
श्यामू संन्यासी

वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा. लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिग, कालबादेवी रोड, बम्बई-२

● प्रथम संस्करण

जून १९६०

● मूल्य : रु. ५·००

● प्रकाशक :

के. के. वोरा,

वोरा एण्ड कम्पनी,

पब्लिशर्स प्रा० लिमिटेड,

३, राउण्ड बिल्डिग,

बम्बई २.

● मुद्रक :

मुहम्मद शाकिर,

सहयोगी प्रेस,

१४१, मुट्ठीगंज,

इलाहाबाद ३.

प्रकाशकीय

हिन्दी पाठकों को श्री रमणलाल वसन्तलाल देसाई का परिचय देने की तो कोई आवश्यकता है नहीं। उनकी अनेक कृतियाँ हिन्दी में अनूदित होकर समादृत हो चुकी हैं। अपने जीवनकाल के प्रौढ़ वर्षों में उन्होंने राजस्थान की गौरवगाथा को उपन्यास का विषय बनाया और एक पूरी उपन्यास-माला ही लिखी। रमणलाल की राजस्थान उपन्यास-माला का पहला पुष्प है 'कालभोज'। हिन्दी में इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और प्रसन्नता की बात है कि पाठकों ने उसे पसन्द किया है। दूसरा उपन्यास 'बालाजोगन' है। 'कालभोज' में बापा रावल के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन है तो 'बालाजोगन' में कृष्ण की परमभक्त मीरा बाई की आस्था और भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है। उसके बाद 'पहाड़ के फूल' है, जिसमें बनवीर के गद्दी पर बैठने और उदयसिंह के बच निकलने की घटनाओं से लेकर उदयसिंह द्वारा पुनः चित्तौड़ पर अधिकार करने का घटनाक्रम आलेखित हुआ है। 'पहाड़ के फूल' में पन्ना का महान त्याग है तो नन्दिनी का उत्कट प्रेम भी है। नारी के मन की दो भावनाओं—प्रेम और अधिकार के संघर्ष की ऐसी गठी हुई कहानी भारतीय कथा-साहित्य में कम ही देखने को मिलती है। 'पहाड़ के फूल' का कथानक 'महाराणा उदयसिंह' में आगे बढ़ाया गया है।

अन्त में आता है 'शौर्य-तर्पण'। चित्तौड़ के राणा मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए सतत संघर्ष करते रहे। उन्होंने जीवन-भर शस्त्रास्त्रों का व्रत रखा और शोणित-तर्पण कर स्वाधीनता की देवी का अनुष्ठान करते रहे। महाराणा प्रताप मेवाड़ के ऐसे सभी राणाओं में अन्यतम थे। उन्हें एक

ऐसे शत्रु का सामना करना पड़ा जो अपने सभी पूर्ववर्ती सुल्तानों और बादशाहों से अधिक चतुर और बुद्धिमान था। भारत में मुगलों की जड़ जमाने के लिए अकबर ने बड़ी कुशलता से अधिकांश राजपूत राजाओं को अपना संबंधी बना लिया था और कई हिन्दुओं की सेवाएँ अपने लिए उपलब्ध कर ली थीं। वह कूटनीति में ही नहीं रणनीति में भी अत्यन्त कुशल था। वीर तो खैर वह था ही। अपने प्रयत्नों से उसने महाराणा प्रताप को तटस्थ कर दिया, फिर भी प्रताप आजीवन अकेले लड़ते रहे। भाई गये, कई सरदार लड़ाई के मैदान में काम आये, प्राणों से प्यारा चेतक भी हल्दीघाटी की लड़ाई में कई सांघातिक चोटें खाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ, परन्तु बापा रावल और सिसोदियों का यह वंशज मेवाड़ की अरावली पर्वतमाला के सर्वोच्च शिखर की भाँति अपना गर्वोन्नत मस्तक लिये अन्त तक खड़ा रहा और लड़ता रहा। मानवी दुर्बलताओं ने उसे भी घेरा। हृदय के टुकड़े अपनी सन्तानों को भूख से तिलमिलाते देख उसके पाँव लड़खड़ा गये। कौन वज्रहृदय, पाषाण का बना पिता ऐसा होगा, जो अपने बेटे-बेटियों को भूख से दम तोड़ते देदे और उफ़ न करे। सन्तति की पीड़ा से व्याकुल और व्यथित हो जाना मानवी गुण कहिए तो गुण और दुर्गुण कहिए तो दुर्गुण है, पर है वह मानवता का ही एक अंग। जो दुर्बल होते हैं, वे सन्तान कष्ट की व्यथा में बहकर अपने कर्तव्य को भूल जाते हैं; जो वीर होते हैं वे लड़खड़ाकर भी सँभल जाते हैं। प्रताप भी सँभल गये। पर एक दिन मेवाड़ छोड़ने की नौबत आ गई। उस समय भामाशाह ने अपने सर्वस्व-त्याग के द्वारा भारतीय इतिहास की धारा को ही मोड़ दिया। फिर तो राणा की विजय-परम्पराओं ने नये मैदान मारे और हारे हुए सब किले सर कर लिये। 'शौर्य-तर्पण' ऐसे ही वीरतापूर्ण कार्यों की गाथा है। इसमें इतिहास का सत्य है तो उपन्यास की रोचकता और रस भी है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में रमणलाल की यह राजस्थान-उपन्यास माला निर्विवाद रूप से एक अभिवृद्धि है।

अनुक्रम

दृढ़ प्रतिज्ञा

:: १ ::

'अँधेरे में क्या देख रहे हो, राणाजी ?'

'कुछ नहीं रानीजी ! यूंही जरा चित्तौड़गढ़ की ओर देख रहा था। हमारा रह नहीं गया वह गढ़।'

'मेवाड़ का राणापद आपको मिला है। जो निकल गया भी वह सब धीरे-धीरे लौट आयेगा। मन को इतना छोटा न करें।'

'राणापद मिला है इसी लिए तो मैं चित्तौड़गढ़ के लिए इस तरह तड़पा करता हूँ। जब राणा नहीं था तब उतनी चिन्ता नहीं थी। अब तो मन कभी चिन्ता से रहित होता ही नहीं, और चित्तौड़ का गढ़ हमेशा आँखों के आगे खड़ा रहता है।'

अकबर ने चित्तौड़ का किला जीत लिया था। उसकी रक्षा करते हुए अरावली पर्वतमाला के अनेक सुगन्धित फूल उस किले की धूल में रौंदे गये थे। अन्त में उदयसिंह ने उदयसागर और उदयपुर का निर्माण कर नई राजधानी स्थापित की। परन्तु मेवाड़ की जनता को चित्तौड़ के अतिरिक्त और कोई राजधानी स्वीकार नहीं हुई। स्वयं उदयसिंह को भी, उदयपुर बसाकर भी, चित्तौड़ के बिना चैन न मिला। उदयपुर की नई राजधानी में उसे मरना भी नहीं सुहाया। वहाँ से दूर एक छोटे-से नगर में जाकर ही उसने अन्तिम साँस ली।

मनुष्य का जन्म जितना यथार्थ है उतना ही यथार्थ उसका इस संसार से जाना भी है। कहना चाहिए कि जन्म की अपेक्षा मृत्यु कहीं अधिक निश्चित सत्य है। और मेवाड़ ने मृत्यु की वास्तविकता को बहुत अच्छी तरह आत्मसात कर लिया था। मेवाड़ियों के लिए मृत्यु जीवन का चरमोत्कर्ष था। मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा करनेवाले वीर जीवन की अपेक्षा मृत्यु को कहीं अधिक मूल्यवान समझते थे। जिस तरह बच्चे हाथ में लिये खिलौने को अनायास ही फेंक देते हैं उसी प्रकार मेवाड़ी वीर स्वतंत्रता की वेदी पर अपने जीवन को हँसते-खेलते होम देते थे। कायर और वीर के जीवन के मूल्यांकन में बड़ा अन्तर होता है। जो प्राणों की बाजी लगा सकता है वही जीवन के मूल्य को समझता और जीवन को जीतता है। अकबर बादशाह की एकान्त अभिलाषा थी कि भारतवर्ष का एक-एक निवासी उसकी अधीनता स्वीकार कर ले। लेकिन उदयसिंह ने कभी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की। एक दिन उदयसिंह का जीवन अस्त हुआ और उसके बाद प्रताप गद्दी पर बैठे।

युवराज होने के नाते मेवाड़ के सिंहासन पर अधिकार तो प्रताप का ही था, परन्तु किसी ने छोटे कुमार जगमल को गद्दी पर बैठाकर उदयसिंह के शव का अन्तिम संस्कार करने की धृष्टता की। मेवाड़ के पटावतों को यह अच्छा नहीं लगा। आवश्यकता पड़ने पर वे वास्तविक राणा को भी गद्दी से हटा सकते थे। जब तक रावत कृष्णदास और संग्रामसिंह—सांगा चूड़ा का समर्थन प्राप्त न हो जाता जगमल गद्दी पर बैठ नहीं सकता था। उदयसिंह का दाह-संस्कार करके लौटे हुए सरदारों ने जब जगमल को गद्दी पर बैठे देखा तो उनकी भृकुटियाँ टेढ़ी हो गई। कृष्णदास और सांगा ने जगमल के दोनो हाथ पकड़कर उसे गद्दी से उतार दिया और सिंहासन के सामने ला बिठाया।

कृष्णदास ने क्रोधोन्मत्त स्वर में कहा—कुँवरजी, आप गलत जगह बैठ गये हैं। आपकी जगह यहाँ सिंहासन के सामने है। सिंहासन पर तो प्रतापसिंह ही बैठ सकते हैं।

उसके बाद प्रताप को सिंहासन पर बिठाया गया और मेवाड़ के नये राणा के रूप में सभी सरदारों ने प्रताप का अभिनन्दन और अभिवादन किया। इस प्रकार प्रताप के सिर पर मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा का भार रखा गया।

मानव-स्वभाव भी बड़ा ही विचित्र होता है। मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जीवन-भर युद्ध करनेवाले महाराणा उदयसिंह के पुत्र जगमल को मेवाड़ का सिंहासन नहीं मिला तो मेवाड़ की धरती ही उसके मन निषिद्ध हो गई। वह सभी असन्तुष्ट राजपूतों के आश्रयदाता अकबर की शरण में जा पहुँचा। प्रताप ने जब यह समाचार सुना तो उन्हें बड़ी व्यग्रता हुई। और उस दिन के बाद से चित्तौड़ की याद उनके मन से उतर न सकी।

'राणाजी, आधीरात के डंके बज रहे हैं। अब तो विश्राम कीजिए। चित्तौड़-गढ़ पर आक्रमण करने की योजना तो आपने बनाई ही है।' पत्नी चाहे रानी हो चाहे मजदूरिन, अपने पति को आराम पहुँचाने की स्वाभाविक इच्छा तो उसमें होती ही है। आधीरात में किले के झरोखे में खड़े होकर चाँदनी भरे आकाश को चिन्तापूर्वक देख रहे पति को आराम देने की इच्छा पत्नी के मन में हुई। यह क्रम हो बन गया था कि जब तक महाराणा जागते रहते महारानी सोती न थीं।

'योजनाएँ तो नित्य ही बदलनी पड़ती हैं महारानी।' प्रताप ने कहा।

'क्यों?'

'कारण पूछती हो? मेरा ही एक सगा भाई शक्तिसिंह पिता के जीते-जी अकबर का सेवक बन गया और दूसरा भाई जगमल भी उसी मार्ग का पथिक हुआ।'

'गादी न मिले तो और कोई करे भी क्या?'

'तो क्या गादी के लोभ में स्वतंत्रता ही बेच दी जाये? रानीजी, कई बार सोचता हूँ कि यदि मैं युवराज न होता तो कितना अच्छा होता! यह भाइयों का पारस्परिक झगड़ा और वैमनस्य तो न होता।'

'मान लिया कि आप झगड़ा न करते, परन्तु दूसरे भाइयों को कैसे रोकते?'

'क्या सभी भाइयों को राज्य नहीं मिल सकता?'

'राज्य एक और भाई अनेक। सबको राज्य किस तरह मिल सकता है? हाँ, हरएक भाई अपने लिए अलग-अलग राज्य जीत ले तो सभी को राज्य मिल सकता है। लेकिन यह राजपूतों के बस का नहीं, ऐसा तो तुर्क ही कर सकते हैं।'

'रानीजी, क्या मैं अपना राज्य अपने भाइयों को दे नहीं सकता?'

'यदि एक ही भाई होता तो मैं स्वीकार कर लेती। इस सिंहासन में रखा

ही क्या है? यहाँ न फूलों की सेज है, न संगमरमर का फर्श और न मखमली गालीचों की बिछात। न हमने कभी यहाँ राजसी ठाठ देखा है, न उसका उपभोग ही किया है। ऐसे राज्य को यदि आप किसी को दे भी दें तो मुझे दुःख न हो।'

प्रताप ने कुछ हँसकर कहा—यदि यह राज्य मैं तुम्हीं को दे दूं?

'क्या अब भी देना बाकी रह गया है? आपकी अर्द्धांगिनी होने के कारण आधे राज्य पर मेरा अधिकार तो वैसे भी है।'

'क्या इसी लिए काँटे याद आ गये?'

'हाँ, हो सकता है।'

'अच्छा, इस काँटे की सेज को फूलों की सेज बनाना हो तो क्या करना चाहिए?'

'उपाय बहुत सरल है—अकबरशाह के पास जाकर उसे झुककर मुजरा करो या....' कहते-कहते रानी का परिहास बल्लम की नोक की तरह तीखा हो गया।

'बात अधूरी ही क्यों छोड़ दी रानीजी?'

'कुछ नहीं। यों ही। कहने को कह तो गई, परन्तु अन्त तक कहना समझ में न आया।'

'अच्छा, जैसे मैं तुम्हें जानता ही नहीं। यह तो तुम बात टाल रही हो।'

'कब जाना था आपने मुझे पहले-पहल? बहुत वर्ष नहीं बीते हैं। आप घोड़े पर बैठकर पिता के पास कोई महत्वपूर्ण सन्देश ले जा रहे थे। आपके उस कमल-मुख की याद मुझे अब भी है....'

'बात टालने में आप बड़ी ही चतुर हैं रानीजी! आपकी इस चतुराई के लिए मेरा धन्यवाद। जिस घटना का आपने वर्णन किया है वह और उस-जैसी अनेक घटनाएँ मुझे अच्छी तरह याद हैं। परन्तु उन्हें याद दिलाने के बदले आप अपनी अधूरी बात पूरी करें।'

'अरे, उसे तो मैं भूल ही गई। सच, याद ही नहीं पड़ रहा है कि क्या कह रही थी। चलो, अच्छा ही हुआ। और देखो, औरत को बहुत छेड़ना अच्छा नहीं होता। नींद भी बेचारी औरत ही है।' यह कहकर महारानी ने प्रतापसिंह का हाथ पकड़ लिया और उसे बड़ी कोमलता से अपनी ओर खींचा।

'नहीं, पहले अपनी बात पूरी करो।' राणा ने जिद की।

'नहीं-नहीं, मेरे प्राण! यों जिद नहीं करते।'

'क्यों?'

'फिर कभी कहूँगी।'

'अनकही बात हृदय में घुमड़ती रहती है रानीजी। छाती उसके बोझ को सह नहीं सकती। कह डालो। काँटों की सेज को फूलों की सेज बनाना हो तो या तो अकबरशाह के सामने झुककर मुजरा किया जाये या?'

'मुझसे न पूछिए। मैं आपके साथ अन्याय कर रही थी।'

'झूठ, बिल्कुल झूठ। मेरी रानीजी कभी मेरे साथ अन्याय कर ही नहीं सकतीं। उनका तो एक-एक वाक्य मेरे लिए कविता है।'

'कहूँ....कह दूं.... न कहूँ....'

'रानीजी, रानीजी! क्या तुम सिसोदिया की हठ को नहीं जानतीं? क्या तुम भी मेरी हठ को पूरा नही करोगी? दूसरा कोई नहीं करता तो क्या तुम भी नहीं?'

प्रताप का हाथ अब भी रानी के हाथ में था। रानी ने प्रताप के चेहरे की ओर देखा। अँधेरे में भी उन्हें दृढ़प्रतिज्ञ, प्रणवीर महाराणा के चेहरे पर मर्दानगी की रेखाएँ उभरती दिखाई दीं। सुख और दुःख में सतत साथ देने का निश्चय करनेवाली महारानी को लगा कि प्रताप से सत्य बात कहनी ही होगी, सत्य कहने में प्रताप के साथ अन्याय हो तो भी कहनी होगी। प्रताप के हाथ को जरा जोर से दबाकर रानी ने कहा—कह तो दूं लेकिन आपको बुरा तो नहीं लगेगा?

'नहीं, बिल्कुल नहीं।'

'मैं कह रही थी कि काँटों की सेज को फूलों की सेज बनाने का एक रास्ता तो अकबरशाह के पाँवों के पास है, जिसे सभी राजपूतों ने स्वीकार कर लिया।'

'सभी क्यों कहती हो?'

'अपवाद मैं जानती हूँ। अपवाद को पहचानती भी हूँ। इसी लिए तो कह रही थी कि....'

'कह ही डालो, रुको मत।'

'दूसरा रास्ता यह है कि दिल्ली के सिंहासन पर क्षत्रिय अपना पाँव रखे। अकेले लड़नेवाले राणा को मैं यही कहने जा रही थी, पर कहने का साहस नहीं हो रहा था।'

'तो रानीजी, सुन लो। इस समय चित्तौड़ की ओर देखता हुआ मैं यही संकल्प कर रहा था। सोच रहा था कि चित्तौड़ ही क्यों, दिल्ली क्यों नहीं ? तुम्हारे मन में भी ठीक यही विचार उठ रहा था। उठना ही चाहिए। आधे राज्य की स्वामिनी जो हो। चलो, अच्छा किया तुमने मुझे अपने मन की बात बता दी।'

रानी कुछ नहीं बोलीं। अकबरशाह-जैसे विश्व-विख्यात नृपति के साधनों का विचार किये बिना दिल्ली के सिंहासन पर पाँब रखने के लिए प्रताप को प्रेरित करने में रानी निश्चय ही धृष्टता कर रही थीं, ऐसा स्वयं रानी को ही लगा। आरम्भ में जब यह विचार मन में उदित हुआ तो इस भय से कि कहीं मैं अपने पति के साथ अन्याय तो नहीं कर रही हूँ, उन्होंने वह बात अधूरी ही छोड़ दी थी। परन्तु पति के जिद करने पर कहना पड़ा और कहकर वह मौन हो गईं। प्रताप भी कुछ नहीं बोले। वह अपने सामने अँधेरे में देखते रहे। अरावली की पर्वत-माला की चोटियाँ अँधेरे से होड़ बद रही थीं। दूर धुंधलके में महाराणा कुम्भा का कीर्तिस्तम्भ आकाश में अँगुली उठाये मेवाड़ की कीर्ति और अपकीर्ति की कथा कहता हुआ खड़ा था। इधर वीर पति-पत्नी दिल्ली-विजय के मनसूबे कर रहे थे। कितने मूर्खतापूर्ण इरादे, और कितनी असम्भव कल्पनाएँ सफल भी हो गई हैं।

'अँधेरे में कोई आता दिखाई दे रहा है।' रानी ने थोड़ी देर के बाद कहा।

'हाँ, मैं भी उसी को देख रहा हूँ। कोई गुप्तचर होना चाहिए।'

'हमारा या तुर्कों का ?'

'अभी मालूम हो जायेगा.... दरवाजा खुल रहा है.... इसलिए हमारा ही गुप्तचर होना चाहिए। लेकिन जब भाई ही हमारे नहीं हुए तो गुप्तचर हमारे कहाँ से होंगे ?'

'सभी कुछ सम्भव है, परन्तु एक बात सम्भव नहीं।'

'वह कौन-सी ?'

'यही कि रानीजी आधीरात के समय भी मेरा साथ छोड़ दें।' प्रताप ने हँसकर कहा।

'आप आधीरात में साथ छोड़ने की बात कहते हैं; परन्तु रानी तो बीच नदी में, गहन झंझावात में, अरे, मौत के बीच भी महाराणा का साथ नहीं छोड़ सकती।'

यह सुनते ही राणा प्रताप का हृदय कृतज्ञता से भर आया। उन्होंने रानी का हाथ धीरे से दबाया। दूसरे राजाओं की तुलना में उनके पास राजसी वैभव और ठाठ-बाट नहीं था, परन्तु अकेली इस महारानी ने सब की पूर्ति कर दी थी। ऐसा सौभाग्य बहुत ही कम राजाओं के भाग्य में लिखा होता है।

उधर किले के दरवाजे खुले, फिर महल का दरवाजा भी खुला। वास्तव में महल किले का ही एक भाग था। राणा प्रताप अपनी महारानी का हाथ पकड़े झरोखे से शयनकक्ष की ओर जाने के बदले दूसरे छज्जे में निकल आये और उनका बुलन्द स्वर गूंज उठा—इस समय आधीरात में कौन आया है?

'घणी खम्मा अन्नदाता! मुजरो मंजूर फरमावे! शालिवाहन आये हैं। समाचार अरज करने हैं।' दरवान ने अभिवादन कर उत्तर दिया।

'अच्छी बात है, आने दो। ऊपर भेज दो।'

ग्वालियर के महाराजा रामसिंह के पुत्र शालिवाहन ने ऊपर आकर राणा को प्रणाम किया। मुस्लिमों से पराजित ग्वालियर के राजा रामसिंह अपने राज्य का परित्याग कर मेवाड़ में आ बसे थे। महाराणा उदयसिंह और उनके बीच गहन मित्रता थी। रामसिंह ने सपरिवार मेवाड़ की सेवा स्वीकार कर ली थी। उनके पुत्र शालिवाहन ने शत्रुओं की गति-विधि पर दृष्टि रखने का उत्तरदायित्व प्रताप के राज्यकाल में ग्रहण किया था।

प्रताप ने उसे स्नेहपूर्वक अपने समीप बिठाकर पूछा—तुम इस समय आये हो इसलिए निश्चय ही कोई महत्वपूर्ण बात होनी चाहिए।

'हाँ अन्नदाता, हम चारों ओर से घिरते जा रहे हैं।'

'यह तो पुरानी बात है शालिवाहन। कोई नई बात हुई हो तो बताओ।'

'वही अरज करने आया हूँ अन्नदाता! सिरोही का आधा राज्य अकबरशाह के ताबे चला गया।'

'बिना लड़े ही?'

'हाँ अन्नदाता!'

'यह कैसे हुआ ?'

'सिरोही के दोनी ठाकुर सुरताण और बीजल आपस में झगड़ पड़े। सुरताण ने बीजल से बचने को सिरोही का आधा राज्य अकबरशाह की नजर कर दिया।'

'बीजल को ही दे देता तो क्या बिगड़ जाता ?'

'तब अकबरशाह का सितारा अधिक बुलन्द कैसे होता ? परन्तु महाराणा, बात इतनी ही नहीं है। अकबरशाह ने सिरोही का वह आधा राज्य आपके ही भाई जगमलकुमार को भेंट कर दिया है।'

'हाँ, यह समाचार तो जरूर नये है।'

'नये भी हैं और चौंकानेवाले भी ?'

'नहीं शालिवाहन, अब कोई समाचार मुझे चौंकाता नहीं।'

'अन्नदाता! जगमल आपके सगे भाई हैं। मेवाड़ के सिंहासन का मोह अभी उनसे छूटा नहीं।'

'पागल है न। मैं तो कई बार अपने सामन्तों से निवेदन कर चुका हूँ कि यदि मेरे सिंहासन छोड़ने से मेवाड़ सुखी होता हो तो मैं कभी भी राज्य छोड़ सकता हूँ। मूर्ख जगमल अकबर के पाँव पकड़कर मेवाड़ के सिंहासन पर बैठना चाहता है। वह मुझी से राज्य क्यों नहीं माँग लेता ?'

'मेवाड़ केवल सुखी ही नहीं होना चाहता, वह स्वतंत्र रहकर सुखी होना चाहता है! उसकी यह आशा अन्नदाता ही पूरी कर सकते हैं। इसी लिए तो मेवाड़ की आशा-भरी आँखें अन्नदाता की ओर लगी हुई हैं।'

'मेरे जीते-जी मेवाड़ परतंत्र तो नहीं ही होगा। रह गया सुख, उसकी कौन जानता है। पता नहीं, कितना रक्त और कितने आँसू मैं मेवाड़ को दूंगा।'

'रक्त कितना ही बहे अन्नदाता, परन्तु मेवाड़ आँसू न बहाये।'

'हाँ शालिवाहन, सच कहा तुमने। अब सिरोही की यह सीमा तुम्हीं को सँभालनी होगी। दो-एक कोने घिरने से रह गये हैं वे भी शीघ्र ही घिर जायेंगे। अकबर के व्यूह की नागफाँस कसती ही जा रही है. . . .खैर, उसकी तो कोई चिन्ता नहीं। असन्तोष इतना है कि हाथ केवल दो ही हैं।'

'परन्तु अन्नदाता के इन दो हाथों के पीछे बाईस हजार मेवाड़ियों के हाथों का बल है। आज तक तो इन हाथों से जोर आजमाने की हिम्मत तकों की हुई

नहीं है। जब वह दिन आयेगा तो इतिहास भी अमर हो जायेगा। अब महाराज मुझे आज्ञा दें।'

'रात महल में ही सो रहो। तुम्हारे लिए प्रबन्ध है।'

फिर प्रतापसिंह ने अनुचर को बुलाकर शालिवाहन के रात्रि-विश्राम की सुख-सुविधा के प्रबन्ध की आज्ञा प्रदान की। शालिवाहन प्रणाम करके चला गया। महाराणा बड़ी देर तक उस खाली दरवाजे की ओर देखते रहे, जिसकी राह शालिवाहन वहाँ से गया था। उन्हें याद ही नहीं रहा कि रानीजी पीछे बैठी जाग रही हैं और प्रतीक्षा कर रही हैं।

थोड़ी देर बाद रानीजी ने कहा—आप तो नहीं थके पर यह रात अवश्य थक गई है। आप सो जाइए तो इस बेचारी को भी थोड़ा आराम मिल जाये।

'रानीजी, तुम अभी तक यहीं बैठी हो? मै तो भूल ही गया था। कितना क्रूर पति हूँ मैं भी! अच्छा चलो।'

और राणाजी ने महारानी का हाथ पकड़कर उन्हें खड़ा किया और शयनागार की ओर चल दिये। शयनागार में सैनिकों-जैसी एक कठोर शैय्या पर राणाजी लेट गये। महारानी सिरहाने बैठकर प्रताप के मस्तक पर अपना कोमल हाथ फिराने लगीं। रानी इस विश्वास से हाथ फेर रही थीं कि नारी का हाथ पुरुष को नींद की शान्तिदायिनी गोद में सुला देता है। परन्तु आज राणाजी को नींद आ नहीं रही थी।

'इस तरह बिना सोये कैसे चलेगा?' रानीजी ने उलहना दिया।

'अरे रानीजी, तुम अभी तक यहीं बैठी हो?'

'कहते हैं कि लक्ष्मण निद्राजीत थे।'

'हाँ, और अर्जुन भी।'

'एक ओर मैं उन चार रघुवंशी भाइयों का, दूसरी ओर पाँच पाण्डवों और सौ कौरवों का विचार करता हूँ और उनके साथ अपने भाग्य की तुलना भी।'

'मैं आपका मतलब समझी नहीं।'

'मेरा एक भाई शक्तिसिंह है, दूसरा भाई सगर और तीसरा भाई जगमल, जो अब तक स्वतंत्र था, पर आज अकबर की शरण में चला गया। जब भाई ही

उनसे तो मैं निपट लूंगा। मेरा सबसे बड़ा दुःख तो यही है कि आज मेरे भाई ही मेरे द्रोही बन बैठे हैं। यदि मैं राजसुख का उपभोग कर रहा होता तो उनकी ईर्ष्या और विरोध समझ में आने-जैसी बातें थीं, परन्तु रानी, तुम साक्षी हो, क्या मैंने अपने किसी सामान्य सैनिक से अधिक सुख का कभी उपभोग किया है!'

'आप भी कैसी बात करते हैं। कौन आपसे गवाही माँग रहा है? चलिए, आराम से सो जाइए।'

'तुम्हारा आदेश हो तो बात दूसरी है। परन्तु सच यह है कि मेरी नींद उड़ गई है।'

'हाँ, मैं आदेश देती हूँ। नींद भले ही उड़ जाये; लेकिन मेरा हुक्म है कि सवेरा होने तक आप न तो बोलें और न उठें।'

'हुक्म सिर-माथे पर। पर तुम भी अब सो जाओ।'

'नहीं, जब आप सो जायेंगे तभी मैं सोऊँगी। आज से यही मेरा व्रत होगा।' रानी ने कहा।

रानी की ओर एक बार देखकर प्रताप ने अपनी आँखें मूंद लीं। रूप ही नहीं, देह के आकर्षण से भी ऊपर उठकर दोनो प्रेमियों के हृदय एक हो चुके थे। प्रताप चारों ओर शत्रुओं से घिर गये थे, फिर भी उनकी रानी उन्हे अपने उत्कट प्रेम के कारण कभी उस घेरे का भान न होने देती थी। अकबर सिरोही की सीमा तक आ पहुँचा था। उन्हीं का सगा भाई जगमल उन्हें घेरने के लिए बढ़ा आ रहा था। परिस्थिति इतनी विकट और विषम होते हुए भी जिस राणा के स्वामिभक्त पटावत हों, प्राण निछावर करनेवाले सैनिक हों, राज-भक्त प्रजा और परछाई-जैसी महारानी हो वह सुख की नींद क्यों न सोये! राणा की आँखें सच ही मुंदने लगीं। वह निद्रा के सुखलोक में उतरते गये और उनके चेहरे की कठोर रेखाएँ कोमल होती हुईं विलीन हो गईं और वह पौरुषपूर्ण चेहरा मधुर मुस्कान से आच्छादित हो उठा।

उन्हें पता ही नहीं चला कि सहलानेवाले कोमल हाथ की उँगलियों का चलना कब बन्द हो गया। जब सूर्योदय हुआ और प्रताप ने जागकर देखा तो रानीजी की नींद-भरी रतनारी आँखें खुली हुई थीं और उनकी उँगलियाँ राणा के सिर के बालों में कभी चलने लगती और कभी स्थिर हो जाती थीं। राणा ने

अपनी आँखें पूरी तरह खोलकर रानी की ओर देखा।

'थोड़ी देर और सो रहिए राणाजी।' रानी ने कहा।

'ओह, मैं कितना क्रूर हूँ! अपनी ही अर्द्धांगिनी पर इतना अत्याचार! रानी-जी, अब तुम सो जाओ।' प्रताप ने कहा।

'मुझे तो दिन में सोने को समय मिल जाता है। आपको नहीं मिलता, इस-लिए सो जाइए।'

'मैं आज्ञा देता हूँ, सो जाओ!'

'अब राणाजी घर में भी आज्ञा देने लगे!'

'मैं विद्रोही हूँ। अकबरशाह मुझे लुटेरा कहता है। आज तेरे सामने भी विद्रोह करना होगा। सोती है या नहीं?'

'वाह महाराज, यह तू-तड़ाक बोलने की रीति कहाँ सीखी? जानते नहीं कि मेवाड़ की महारानी के साथ अदब-कायदे से बोलना होता है।' महारानी ने हँसते हुए कहा।

'मैं इस समय मेवाड़ की महारानी से नहीं, अपनी पत्नी से बात कर रहा हूँ। मेरी पत्नी मेवाड़ की महारानी है या नहीं, यह नहीं जानता; परन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि मैं अपनी पत्नी को गँवाना नहीं चाहता।'

यह कहकर राणा प्रताप ने अपनी महारानी को जबर्दस्ती पलंग पर सुला दिया और अब वह स्वयं उनके बालों में हाथ फेरने लगे।

'ओह, कितना कठोर हाथ है आपका! यदि मुझे सुलाना ही चाहते हैं तो आप हाथ न फिरायें।' रानी ने कहा।

'मैं जानता हूँ राजपूतनी, तुझको। अब चुपचाप सो जा!'

'एक सवाल तो पूछ लूं।'

'क्या पूछना है? सो क्यों नहीं जाती?'

'सवाल बड़ा ही महत्वपूर्ण है।'

'अच्छी बात है, पूछ लो। जब तक पूछ न लोगी हमें शान्ति नहीं मिलेगी।'

'आपको मेवाड़-भूमि अधिक प्रिय है या मैं?'

'दोनो।'

'लेकिन अधिक कौन प्रिय है?'

'मेवाड़-भूमि मेरी माता है और तुम पत्नी। मैं दोनो के लिए मर सकता हूँ। कौन अधिक और कौन कम प्रिय है इसका निश्चय बाद में करती रहना, इस समय तो चुपचाप सो जाओ।'

रानी ने माथे पर फिरते हुए राणा प्रताप के हाथ को पकड़कर अपने कण्ठ पर दबाया और सन्तुष्ट होकर सो गई। प्रताप की जो आँखें सदैव तलवार और भाले को ही देखने की अभ्यस्त और इच्छुक थीं वे भी इस समय एक क्षण के लिए नारी के उनींदे सौन्दर्य में उलझकर रह गई।

राणा प्रताप सोचने लगे कि ऐसी सुन्दर स्त्री द्वारा निर्मित संसार में युद्ध क्यों होना चाहिए। मेवाड़ के महाराणा के सिर पर विपदाओं का पहाड़ टूट रहा था, जीवन में विपदाओं की घन-घटाएँ छाई हुई थीं, परन्तु फिर भी नारी के प्रेम-सौन्दर्य की चाँदनी अपनी अमृत-किरणों से उनके जीवन को उज्ज्वल कर रही थी।

भाई अवश्य शत्रु बन गये थे, लेकिन सरदारों की निष्ठा और स्वामिभक्ति अवश्य श्लाघनीय थी। दिल्लीपति ने राणा के एक-एक पटावत को हजार-हजार मनसबदारी का लोभ दिया था; परन्तु उन स्वामिभक्तों ने अकबरशाह के सभी प्रलोभनों को ठुकरा दिया था और अब भी ठुकरा रहे थे।

विपत्ति में ही तो मनुष्य की मनुष्यता परखी जाती है। विपदा न होती तो मानव-आत्मा का यह प्रकाश कहाँ देखने को मिलता ?

महल के बाहर तलवारें खनखना रही थीं। भालों पर प्रतिबिम्बित सूर्य की किरणें राणा के अन्तःपुर तक कौंध-कौंध जाती थीं। एक क्षण को भी चैन नहीं था। मेवाड़ की सेना अहर्निश हथियार बाँधे रहती थी। राणाजी सोते नहीं थे। रानी की आँखों में नींद नहीं थी। मेवाड़ी सेना भी आठों पहर और चौबीसों घड़ी जागती रहती थी। सारे मेवाड़ में सोता ही कौन था !

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए राजा और प्रजा को सतत जागृत रहना पड़ता है। सोकर कोई कभी स्वतंत्रता की रक्षा कर पाया है ?

परन्तु स्वतंत्रता क्या है—सुख या दुःख ?

और सुख किसे कहेंगे ? मधुर भोजन, चैन की नींद, वस्त्रालंकारों से भूषित देह, राग-रंग और गीत-नृत्य से भरे-पूरे रात-दिन, जिह्वा को षट्‌रस भोजन, हृदय

को शृंगार-रस, प्रत्येक इन्द्रिय आह्लादित हो उठे ऐसा भोग-विलास---क्या सुख इसी का नाम है!

सुख-साधनों का विचार करते-करते एक बार तो राणा का शरीर भी काँप उठा, और तभी किले की सूरजपोल पर नौबत बजने लगी।

ओह, कितनी मधुर ध्वनि थी! प्रताप का हृदय डोल उठा। नौबत के स्वर में उन्हें एक अलौकिक संगीत सुनाई देने लगा। फिर उन्हें घोड़े की टापों का स्वर सुनाई दिया। और इस स्वर में भी उन्हें एक अनोखी ताल का आभास हुआ।

राणा उठकर झरोखे में आये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर सूर्य भगवान को प्रणाम किया।

नीचे के मैदान में घोड़े हिनहिना रहे थे और मेवाड़ी सेना के वीर सैनिक केसरिया पागें बाँधे मौन खड़े थे। अपने प्यारे महाराणा को देखकर सभी सैनिक समवेत स्वर में पुकार उठे:

'जय एकलिंग! हर हर महादेव!! 'महाराणा प्रताप की जय!!!'

महाराणा प्रताप का रोआँ-रोआँ खड़ा हो गया। उनके रोमांचित शरीर से यह ध्वनि उठी---यही है, सुख यही है। स्वतंत्रता का सुख इसी को कहते हैं। अडिग मेवाड़ का अडिग महाराणा, अपनी टेक का धनी राणा अब भी सुख का अनुभव कर सकता है। स्वतंत्रता का यही तो सुख है!

::२::

महाराणा का नीला घोड़ा चेतक जोर से हिनहिना उठा। उसकी हिनहिनाहट ऐसी थी मानो सारे मेवाड़ को सतत जागृत रहने के लिए उद्‌बोधित कर रही हो। फिर उसकी नीली देह तरंगित हो उठी। उसकी कनौतियाँ मनोमोहक ढंग से तन गईं। वह अपनी दाहिनी टाप से जमीन खोदने लगा। ऐसा लग रहा था मानो चेतक को बिजली छुआ दी गई हो। वह आनन्द और उमंग से भरकर थिरकने लगा। प्रताप को दूर से ही आता देख वह मारे उल्लास के नाचने लगा। बार-बार जोर से हिनहिनाता था, टापों से जमीन खोदता था और उसका रोआँ-रोआँ थिरक रहा था। यदि उसका बस चलता तो गले की अगाड़ी और पाँव को

पिछाड़ी तोड़कर प्रताप के पास दौड़ा जाता और उनके कन्धे पर अपना सिर रख देता।

राणा प्रताप झालाराणा मानसिंह के साथ बातें करते हुए चेतक की ही ओर चले आ रहे थे। उनके वार्तालाप का विषय शायद गम्भीर था, इसी लिए मन्द गति से चल रहे थे। परन्तु चेतक को उनके गम्भीर वार्त्तालाप से क्या मतलब? वह तो प्रताप को अपने समीप चाहता था। प्रताप के सिवा उसे और किसी बात से कोई मतलब नहीं था, इसी लिए वह कुछ शिकायताना अन्दाज में फिर जोर से हिन-हिनाया। इस हिनहिनाहट की प्रताप भी अवहेलना नहीं कर सके। झालाराणा के साथ उनका गम्भीर वार्त्तालाप चेतक की इस हिनहिनाहट में डूब गया। उन्हें चेतक के अस्तित्व और महत्व को स्वीकार करना ही पड़ा। उन्होंने चेतक को पुचकारते हुए कहा—बस बेटा, बस! चुपका रह जरा। मैं चला ही आ रहा हूँ।

परन्तु चेतक क्यों चुप रहने लगा? उसका हिनहिनाना और थिरकना और भी बढ़ गया। प्रताप ने अपने हाथ में थोड़ा कन्द लिया और चेतक के समीप आकर उसे थपथपाते हुए बोले—अरे बेटा चेतक, ऐसी भी क्या बेचैनी है! आज जरा देर हो गई। ले, अब चुप हो जा। बहुत हिनहिना लिया, बहुत थिरक लिया। मैं जानता हूँ कि तू स्फूर्ति से भरा है। तेरे चैतन्य को ही देखकर तो मैंने तुझे चेतक नाम दिया है। ले, अब शान्त हो जा और यह गाजर खा।

प्रताप ने वाणी-विहीन अश्व के साथ स्नेह-सम्भाषण कर, उसके शरीर से अपना शरीर सटा दिया। चेतक भी अपनी थूथन और गरदन से प्रताप के प्रत्येक अंग-उपांग का स्पर्श करने लगा।

'पता नहीं इसको मुझसे ऐसी क्या प्रीति हो गई है कि सुबह-शाम जब तक दो बार मिल नहीं लेता बेचैनी से थिरकता रहता है।' राणा प्रताप ने हँसते हुए कहा।

'राणाजी, अकेले चेतक का ही नहीं, मेवाड़ की सारी प्रजा का यही हाल है।' झालाराणा मानसिंह ने कहा।

'मानसिंहजी, कुछ राजा सौभाग्य लेकर जनमते हैं। मेवाड़ का समस्त राज-वंश ही सौभाग्यशाली है। केवल प्रजा भाग्यशाली नहीं।'

'कौन कहता है महाराज? मेवाड़ में मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा बता दीजिए जो अपने महाराणा से असन्तुष्ट हो?'

'किसी को असन्तोष न हो तो भी मुझे तो है। मैं प्रजा को युद्ध, रुधिर और आँसू के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दे सकता।'

'आँसू ढारनेवाली प्रजा की मेवाड़ को कोई आवश्यकता नहीं। आँसू बहानेवाले मेवाड़ से बाहर जा बसते हैं। रहा रुधिर, सो वह तो सभी को देना पड़ता है। मनुष्य के पास इस रुधिर को छोड़कर और देने के लिए है ही क्या। और रहा युद्ध, सो महाराज, मेवाड़ स्वयं तो कभी युद्ध माँगता नहीं, बिन माँगे ही आ पड़े तो उसे ठुकराया भी नहीं जा सकता, लेना ही होता है।' प्रौढ़वय के झालाराणा ने किंचित् मुस्कराहट के साथ कहा।

झालाराणा की ओर देखते हुए प्रताप की आँखों के आगे सारा गहलौत राजवंश खड़ा हो गया। आर्यावर्त की मुस्लिम आक्रमणकारियों से रक्षा करनेवाले बापा रावल, खुमाण और समरसिंह की तेजस्वी मूर्तियाँ उनके कल्पना-चक्षुओं के सामने जगमगाने लगीं। फिर उन्होंने हमीर, कुम्भा और राणा साँगा को रण-क्षेत्र में शत्रुओं को ललकाराते देखा। पिता उदयसिंह की पहाड़ी यात्राओं में तो स्वयं प्रताप भी साथ-ही-साथ रहते थे। वे सभी वीर योद्धा थे। उन महारथियों ने अपना सारा जीवन रणक्षेत्रों में ही बिताया। उनमें से कभी किसी ने मेवाड़ के बाहर की एक इंच भूमि की भी माँग नहीं की। विशाल आर्यावर्त के एक कोने में समा सके ऐसे मेवाड़ की रक्षा करने का व्रत ही उनके जीवन का सबसे बड़ा सन्तोष था। उनकी प्रशस्ति गानेवाले भाट-चारणों ने भी कभी यह नहीं कहा कि वे दिग्विजय और अश्वमेध के अभिलाषी थे। वास्तव में तो मेवाड़ का राजवंश एक संन्यासी का ही वंशज था। बापा-रावल ने राज्य छोड़कर संन्यास धारण कर लिया था। उनके वंशजों को चक्रवर्ती-पद कैसे लुभा सकता था?

चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा मेवाड़ के राणाओं ने कभी नहीं की; परन्तु अपनी प्यारी मेवाड़ भूमि पर विदेशियों के आक्रमण को भी वे कभी सह नहीं सके। मजाल नहीं था कि उनके रहते कोई मेवाड़ की ओर आँख उठाकर भी देख सके। उन्होंने ऐसे प्रचण्ड युद्ध किये थे कि चाहते तो अवश्य दिग्विजयी हो सकते थे। अश्वमेध की योग्यता भी उनमें थी और उन्होंने एक नहीं अनेक बार लड़ाई के मैदान में अश्वों और अश्व-सैनिकों को छोड़ा भी था और पकड़ा भी था। कई बार ऐसे भी प्रसंग आये कि वे चाहते तो भारतवर्ष के भाग्य का

चक्र उनकी उँगली पर नाचने लगता। परन्तु मेवाड़ ने कभी दिग्विजय की आकांक्षा नहीं की, कभी अश्वमेध की कामना नहीं की, कभी चक्रवर्ती-पद की अभिलाषा नहीं की। वे जब भी लड़े, केवल मेवाड़-भूमि की रक्षा के लिए। मेवाड़ से अधिक एक इंच भूमि भी उन्होंने कभी नहीं चाही। अपने लिए उन्होंने यह मर्यादा ही बना ली थी।

उनकी दूसरी स्वयं-स्थापित मर्यादा यह थी कि किसी भी आक्रमणकारी को मेवाड़ की एक इंच भूमि नहीं लेने देंगे। दूसरों की भूमि, सत्ता अथवा सम्पत्ति मेवाड़ को नहीं चाहिए। वह मेवाड़ के लिए निषिद्ध थी। साथ ही मेवाड़ की भूमि, सत्ता अथवा सम्पत्ति पर अधिकार करने की इच्छा रखनेवालों के सामने वे नंगी तलवार लिये, मूर्तिमन्त चुनौती बने खड़े रहते थे। मेवाड़ की पहाड़ी हो या पत्थर, मेवाड़ का राजा हो या प्रजाजन, मेवाड़ की महारानी हो या ग्वालिन, यहाँ तक कि मेवाड़ के पशु और पक्षी भी आक्रमणकारियों के लिए साक्षात् काल बन जाते थे। मेवाड़ ने कभी स्वयं होकर युद्ध का नारा नहीं लगाया परन्तु जिसने भी युद्ध का नारा लगाकर मेवाड़ पर आक्रमण किया उससे मेवाड़ियों ने ऐसे भीषण युद्ध किये कि आक्रमणकारियों की सौ-सौ पीढ़ियाँ भी उन्हें भुला न सकीं।

पता नहीं चेतक ने अपनी पंचम इन्द्रिय से यह कैसे जान लिया कि महाराणा का ध्यान उसकी ओर नहीं है और वह विचारों में मग्न हो गये हैं। वह शिकायताना अन्दाज में इतने जोर से हिनहिनाया कि सारा किला प्रतिध्वनित हो गया और प्रताप भी अपनी विचार-तन्द्रा से जाग उठे। स्नेहपूर्वक चेतक की पीठ पर एक धौल जमाकर वह उसकी अयाल को सहलाने लगे।

'राणाजी, घोड़ा क्या है, अश्विनीकुमार का साक्षात् अवतार ही है।' झालाराणा ने कहा।

'मुझे भी इससे कुछ ऐसा स्नेह हो गया है कि जब तक दिन में दो बार आकर इसको थपथपा नहीं लेता, सारा दिन सूना-सूना लगता है।' प्रताप ने कहा। और तभी राजमहल के एक दूर के झरोखे में आकर महारानी ने सूर्य भगवान की जल, अक्षत और कुंकुम से पूजा की।

'महाराज, क्षत्रिय के लिए पत्नी के प्रेम के अधिकार से भी अधिक प्रेम

का अधिकार तो घोड़े का होता है।' मानसिंह ने हँसकर कहा। युद्ध के प्रेमी राजपूत रँगीले तो होते ही थे। उनके प्रेम और श्रृंगार-रस को युद्ध कभी कुंठित नहीं कर सका। युद्ध तो सदा उनके प्रेम को शान ही चढ़ाता रहा। उदयसिंह की उम्र के और उनके मित्र झाला मानसिंह, उदय की ही भाँति, रसिक थे और उनकी बातचीत में कभी-कभी रसिकता छलक उठती थी। महाराणा प्रताप सर्वथा गम्भीर, शिष्ट और युद्ध तथा व्यूह-रचना के विचारों में निमग्न रहने-वाले व्यक्ति थे। झाला सरदार कभी-कभी प्रौढ़वय के गम्भीर प्रताप को राग-रंग और हास-परिहास के क्षेत्र में खींच लाने का प्रयत्न करते थे। झालाराणा का मान-सम्मान और प्रतिष्ठा इतनी अधिक थी कि प्रताप उन्हें अपने पिता के समान ही मानते और अपने साथ हँसी-मजाक कर लेने देते थे।

'रानीजी, झरोखे में खड़ी हैं, सुन लेंगी।' प्रताप ने मुस्कराकर कहा।

'उन्हें सुनाने के लिए ही तो कह रहा हूँ महाराज! यह तो अच्छा हुआ कि किसी मेवाड़ी राणा ने कभी अश्वमेध-यज्ञ की अभिलाषा नहीं की, अन्यथा यह चेतक-जैसा अश्व कभी का यज्ञ में होम दिया जाता।'

'नहीं, नहीं, नहीं, ऐसा न कहिए। इस चेतक को जीवित रखने के लिए मैं एक नहीं, एक सहस्र अश्वमेध-यज्ञों का परित्याग कर दूंगा।'

'आप चिन्ता न कीजिए, हम अश्वमेध-यज्ञ कर ही नहीं सकते।'

'क्यों नहीं कर सकते, झालाराणा?'

'कर सकते तो आज मेवाड़ में कितने ही चक्रवर्ती राजा हो जाते।'

'लेकिन कर क्यों नहीं सकते?'

'इसलिए नहीं कर सकते कि मेवाड़ का एक भी राणा यह कभी नहीं भूल सकता कि मेवाड़ का वास्तविक अधिपति वह नहीं भगवान एकलिंग हैं, सिसोदिया राणा तो एकलिंगजी का मंत्री है और मंत्री अश्वमेध का अधिकारी नहीं होता।'

'यदि कोई राजा इस बात को भूल जाये, तो?'

'महाराज, मेवाड़ में कोई वृद्ध जीवित नहीं रहता। सारे मेवाड़ी जवानी में ही युद्ध में खप जाते हैं। परन्तु भगवान एकलिंगेश्वर कभी-कभी मेरे-जैसे बूढ़ों को मरते-मारते भी केवल इसी लिए जीवित रख देते हैं कि वह मेवाड़ के महाराणा को यह बात भूलने न दे।' रसिक वृद्ध ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'तो मानसिंहजी, इसका तो यही मतलब हुआ कि मैं मेवाड़ का मालिक नहीं।'

'हाँ महाराज! आप मेवाड़ के मालिक नहीं, मेवाड़ के रक्षक हैं, भगवान एकलिंग के प्रतिनिधि हैं। मेवाड़ का सिंहासन न आपकी मिल्कियत है, न और किसी मेवाड़ी राणा की। जो भी राणा इसे अपनी मिल्कियत समझने की भूल करता है उसे मेवाड़ का राज-सिंहासन उठाकर परे फेंक देता है।'

'कितना सच कहा है आपने झालाराणा!'

'महाराज, मैं क्या सच कहूँगा? आप तो स्वयं ही सब-कुछ जानते हैं। और इसी लिए मेवाड़ी जनता के हृदय के हार बने हुए हैं।'

'फिर भी आप मुझे हर समय यह बात याद दिलाते रहिएगा। आज आपकी बात सुनकर मेरे चित्त को बड़ी शान्ति मिली।'

'ऐसा मैंने क्या कहा है महाराज?'

'यही कि मैं एकलिंग का मंत्री हूँ; देवार्पित मेवाड़ का सौदा मैं कभी कर नहीं सकता।'

'यह आप कैसी बात करते हैं राणाजी? मेवाड़ का सौदा किसी ने किया है कि आप करेंगे? लेकिन आपके मन में ऐसा विचार क्यों उत्पन्न हुआ?'

'इसका कारण है मानसिंहजी। एक ओर मेवाड़, दूसरी ओर अम्बर, तीसरी ओर बीकानेर सभी मुझ से आग्रह करते हैं कि मैं मेवाड़ को अकबर के चरणों में समर्पित कर दूं। चित्तौड़ पर तो अकबर का अधिकार है ही। अब सिरोही भी उसके कब्जे में चला गया। समन्दर के बीच एक टापू की तरह, बल्कि बाढ़ की नदी के बीच अकेले द्वीप की तरह यह मेवाड़ बचा रह गया है। पता नहीं बाढ़ का पानी कब बाँध तोड़कर इसे बहा ले जाये। पर इस भय के रहते हुए भी मैं मेवाड़ अकबर को कैसे दे सकता हूँ? मेरा उस पर अधिकार ही क्या है? मैं तो मात्र एकलिंगजी का चाकर हूँ।'

'वाह महाराज, वाह! क्या ही सच बात कही है आपने! आपका काम केवल रक्षा करना है। देने के अधिकारी आप नहीं। और महाराज, मेवाड़ द्वीप नहीं, जहाज है, यह तो जहाज! कितने ही समुद्रों को थाह चुका है, कितनी ही बाढ़ भरी नदियों को पार कर चुका है। और अब तो अकबरशाह का सितारा इतना बुलन्द भी नहीं है, उसके तेज का सूरज ढल रहा है।'

लेकिन प्रताप जानते थे कि अकबरशाह का सितारा अभी अस्त नहीं हो रहा था। वह अपनी शक्ति को संगठित कर रहा था, चित्तौड़ को जीतकर उसने मेवाड़ के भाल पर कलंक की कालिमा लगा दी थी। मेवाड़ को तटस्थ कर दिया था।

उसके बाद उसने सिरोही लिया। सिरोही के परे गुजरात का इलाका भी जीत लिया। उसकी शक्ति का समुद्र बाँध तोड़कर मालवा में भी फैल गया था। मेवाड़ के बचे-खुचे हिस्सों पर उसकी गिद्ध दृष्टि लगी हुई थी। उत्तरी सीमान्त पर अकबर की सेनाएँ खड़ी थीं। पूर्व भी उनके कब्जे में था। दक्षिण बाकी था। सो सिरोही और गुजरात जीतकर उसने राणा की वह दिशा भी रोक दी। अब बचा रह गया था केवल पश्चिम। पश्चिम में सिन्ध के सुमरा अभी स्वतंत्र थे। परन्तु अकबरशाह को अपनी कन्या देनेवाले राठौर मेवाड़ के महाराणा को सिन्ध से सम्पर्क क्यों करने देते?

यह सच है कि अकबर ने अभी तक प्रताप को छेड़ा न था; परन्तु भारत का चक्रवर्ती सम्राट् बनने का महत्त्वाकांक्षी अकबर कब मेवाड़ पर टूट पड़ेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। एक-एक करके भारत के सभी स्वतंत्र राजा उसकी अधीनता स्वीकार करते जा रहे थे या रौंद दिये गये थे। अब प्रताप अकेले बचे रह गये थे। मेवाड़ के बाहर कहीं पाँव रखने की जगह नहीं थी। परन्तु मेवाड़ के बाहर पाँव रखने की जरूरत ही क्या थी? क्या एकलिंगजी का मेवाड़ एकलिंगजी के चाकर को अपने यहाँ खड़े रहने की जगह भी नहीं दे सकता था?

चेतक पुनः हिनहिनाया और महाराणा की विचार-तन्द्रा भंग हुई। उन्होंने मानसिंह से कहा—नहीं झालाराणा, अभी अकबर के इकबाल का सूरज अस्ताचलगामी नहीं हुआ है।

'अकबरी इकबाल का महाराणा को क्या डर? सारी शहन्शाहनियत का बल रहने पर भी मेरा महाराणा अकेला चेतक पर चढ़कर उसका मुकाबला कर सकता है। जो मरने को तैयार हों उन्हें सतर्कता और सावधानी की क्या जरूरत?'

झालाराणा की बात सच थी। जिसको मौत का डर नहीं उसे सच ही सतर्कता, सावधानी और होशियारी-जैसे पैतरों की क्या आवश्यकता? लेकिन जीवन तो किसी का भी सस्ता नहीं होता। मेवाड़ ने कितनी बार जिन्दगी दाँव पर

लगाई है; और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अभी उसे कितनी बार कितनी जिन्दगियाँ दाँव पर लगानी होंगी; और उसमें भी मेवाड़ के महाराणा को तो सबसे पहले अपनी जिन्दगी दाँव पर लगानी होगी।

चेतक फिर हिनहिनाया। इस बार उसकी हिनहिनाहट प्रसन्नता और सन्तोष की द्योतक थी। महाराणा प्रताप ने उसे पूर्णतः सन्तुष्ट किया था। अब वह लौट पड़े। राजमहल में सरदार उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

राजमहल शब्द के उच्चारण-मात्र से हमारे मन में एक सजी-सजाई आलीशान इमारत की कल्पना उठ खड़ी होती है। वहाँ संगमरमर के फर्श होते हैं गुम्बद, मीनारें, कमान और झरोखे होते हैं। विशाल प्रशस्त प्रकोष्ठ होते हैं। बड़े-बड़े बरामदे होते हैं। अनगिनत आँगन और चौक होते हैं। लम्बी-चौड़ी और ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ होती हैं। सुन्दर कलापूर्ण चित्रों से दीवारें सजी होती हैं। घुटनों तक पाँव धँस जायें ऐसे गालीचे बिछे होते हैं। सुनहरी-रुपहरी कुर्सियाँ, तख्त, गावतकिये और मसनदें होती हैं। छत से झूमर, हण्डे, गोले और शमादान लटके होते हैं। फव्वारे होते हैं, नजरबाग और राजोद्यान होते हैं। स्नानगृह होते हैं। मूर्तियाँ होती हैं। राजमहल में मानवी कल्पना सुख-समृद्धि की जितनी सृष्टि कर चुकी होती है और भविष्य में जो कुछ करना चाहती है वह सब संग्रहीत होता है। परन्तु महाराणा प्रताप के राजमहल में ऐसा कुछ नहीं था। वह बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का राजमहल था। उसमें संगमरमर की फर्शबन्दी नहीं थी। ईरानी गालीचे नहीं थे। सोना-चाँदी की कुर्सियाँ नहीं थीं। वहाँ थी काले पत्थर की रूखी-सूखी दीवालें, पाँव में ठोकर लगे ऐसी फर्शबन्दी, और बिछायत और गादी-तकिये भी ऐसे थे कि बैठने पर चुभते थे। चकाचौंध पैदा करनेवाली अगर कोई चीज थी तो वे दीवाल पर टँगे हुए अस्त्रशस्त्र, बख्तर और टोप थे। दीवालों में कारुकार्य के स्थान पर शस्त्र चलाने की मुहानियाँ बनी हुई थीं। महल के चौक में कुण्ड और फव्वारे भी थे, परन्तु उनका उपयोग केसरिया बाना और जौहर करने के लिए ही किया जाता था। बगीचा भी था, पौधों पर फूल भी लहरा रहे थे, लेकिन उनसे यही प्रकट होता था कि वे वीर राजपूतनियों की चिता पर चढ़ने के लिए हैं। वास्तव में वे फूल नहीं, पौधों पर झूलते हुए अंगारे ही थे।

सरदारों की नित्य की बैठक के अनुसार आज भी बैठक थी। आदर-मान सभी का यथोचित किया जाता था। परन्तु वह ठाठ-बाट और भभका नहीं था। सरदारों की संख्या भी अधिक नहीं थी। जो भी वहाँ उपस्थित थे या तो मित्र थे या बुजुर्ग सरदार। किशोरवय का युवराज अमरसिंह भी प्रताप की गादी के समीप बैठा हुआ था। जब प्रताप ने प्रवेश किया तो सभी उनके सम्मानार्थ उठकर खड़े हो गये और सभी ने प्रणाम किया। प्रताप के बैठने के स्थान को दूसरों से भिन्न दिखलाने के लिए केवल एक मसनद रख दी गई थी, और कोई विशेषता नहीं थी। जब सब बैठ गये तो राजकवि ने वीर-रस से पूर्ण एक कवित्त पढ़ा। तब चोबदार ने घोषणा की कि राजकुमार अमरसिंह का परिचित एक सौदागर बढ़िया कालीन और गालीचे महाराणा को भेंट करने के लिए लाया है। महाराणा ने उसे दरबार में उपस्थित करने का आदेश दिया। सौदागर लाया गया। उसने प्रणाम करके बढ़िया गालीचे और कालीनें दिखाना शुरू किया। देखकर सभी को प्रसन्नता हुई। महाराणा ने आज्ञा दी कि सौदागर की सभी वस्तुएँ खरीद ली जायें।

इस आदेश को सुनकर सारा दरबार चकित रह गया। सभी दरबारी जानते थे कि महाराणा के राज-भण्डार की स्थिति ऐसी नहीं है कि एक साथ इतने कीमती गालीचे और कालीनें खरीदी जा सकें। अगर किसी बादशाह को भी एकबारगी इतना सामान खरीदना पड़ता तो वह सोच-विचार में पड़ जाता।

सौदागर को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने निवेदन किया—महाराज, मैं बेचने के लिए नहीं, आपकी नजर करने के लिए लाया हूँ।

'अच्छी बात है सौदागर। हम तुम्हारे कृतज्ञ हुए। परन्तु राजा नजर में कोई वस्तु तभी स्वीकार कर सकता है जब उसकी सवाई कीमत दे सके। भामाशाह, सौदागर सन्तुष्ट होना चाहिए।' प्रताप ने कहा।

'जैसी अन्नदाता की मरजी।'

और वीर-वेशधारी भामाशाह उठ खड़ा हुआ। राणा प्रताप के छोटे-से राज्य का वह कोषाध्यक्ष था। उसके सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध थी कि उसके हाथ में अक्षय भण्डार है। भामाशाह का कोष कभी समाप्त ही नहीं होता था।

जब विस्मित सौदागर भामाशाह के पीछ-पीछे दरबार से बाहर चला गया तो महाराणा प्रताप ने कहा—कितनी सुन्दर कारीगरी है !

'हाँ महाराज !' एक सरदार ने कहा।

'क्या मेवाड़ का कोई कारीगर इतने सुन्दर गालीचे नहीं बना सकता ?' प्रताप ने कहा।

'जी, बना क्यों नहीं सकता ! थोड़ी शान्ति हो तो इससे भी उत्तम कालीनें बनाई जा सकती हैं। अभी तो मेवाड़ के सभी कारीगर युद्ध के सरंजाम बनाने में लगे हुए हैं।' दूसरे सरदार ने कहा।

'तो इन सुन्दर वस्तुओं को शान्तिकाल में उपयोग करने के लिए रख दिया जाये।' महाराणा ने अपना निर्णय दिया।

'हमारी सैनिक तैयारियों को देखकर अकबरशाह ने अभी तक तो यहाँ शान्ति ही रहने दी है।' दूसरे सरदार ने कहा।

'सच है, अभी तक शान्ति रही है। परन्तु यह शान्ति कब भंग हो जायेगी कहा नहीं जा सकता। अमर, तुझे कालीनों और गालीचों का शौक कबसे हो गया ?'

किशोरवय के युवराज को सहसा कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ा। पिता का प्रश्न उसके हृदय में शूल की तरह चुभ गया। उसने कहा—दाता होकम, मैं सीमा की चौकी कर रहा था, वहाँ यह सौदागर मिल गया। इसने चीजें दिखलाईं। मैंने सोचा कि इनमें से एक दरीखाने के लिए, एक आपके निजी कक्ष के लिए और एक शयनागार के लिए....

'बहुत अच्छा किया कुमार ! लेकिन अभी इन्हें बिछाया न जाये।'

'क्यों ?'

'रखा रहने दो।'

'रख छोड़ने से तो ये चीजें बिगड़ जायेंगी महाराज !'

'भले ही बिगड़ जायें। अगर तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने कक्ष में बिछा सकते हो, परन्तु दरीखाने में या मेरे कक्ष में इन्हें न बिछाया जाये।'

'यह क्यों महाराज ?' एक बूढ़े सरदार ने पूछा।

'वैभव की ऐसी सामग्री तो चित्तौड़ के राजमहल में ही शोभा पा सकती है, यहाँ नहीं। मैं अथवा अमर चित्तौड़ को जीत लेंगे तभी इन चीजों का उप-

योग करेंगे, उससे पहले नहीं। जिस राजा के हाथ से उसकी राजधानी निकल गई है वह किस मुंह से रेशम और मखमल के गालीचे काम में लाये?'

यह कहते-कहते प्रताप की आँखों में एक नई चमक आ गई। थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। सभी दरबारी अवाक् बैठे रहे। प्रताप के हृदय के दुःख को, उनकी गहन व्यथा को सभी जानते-समझते थे, सब उसमें सहभागी थे; परन्तु किसी ने यह नहीं सोचा था कि किशोरवय के राजकुमार की बाल-अभिलाषा में महाराणा को इतनी गहरी राजनीति दिखाई देगी।

'यदि कुँवर का मन है तो महाराज....' एक वृद्ध सरदार ने साहस करके कहा।

'इसी लिए तो मैंने कहा कि कुँवर इनका उपयोग कर सकते हैं। मेरे लिए तो वे सभी वस्तुएँ निषिद्ध हैं जो चित्तौड़ की प्राप्ति में सहायक न हों।' महाराणा ने कहा।

'तो इन वस्तुओं को लौटा दिया जाये।' अमरसिंह ने लज्जावनत मुंह से कहा।

'नहीं अमर, भेंट में पायी हुई वस्तुएँ लौटाई नहीं जातीं। और क्या तुम नहीं जानते कि यह किसकी भेंट है?'

'नहीं दाता होकम! मुझे तो यह सौदागर सीमा पर मिल गया और मैं इसे बुला लाया।'

'कोई हर्ज नहीं। आया तो हमारे सिर-माथे पर। भले ही वह हमें थाह ले। जानते हो, यहाँ से लौटकर वह सीधा अकबरशाह के पास जायेगा और उन्हें खबर देगा कि मेवाड़ का खजाना अभी खाली नहीं हुआ है और मेवाड़ी वीर अपनी सीमा पर सन्नद्ध हैं।' प्रताप ने कहा।

अमरसिंह चौंका। दूसरे सरदार भी विस्मित होकर महाराणा की ओर देखने लगे। अमरसिंह पूछ बैठा—तो क्या वह अकबरशाह का गुप्तचर है?

'हाँ अमर! भामाशाह तुम्हें उसके बारे में पूरा हाल बतायेंगे।'

अब अमर के लिए कुछ भी कहना शेष नहीं रहा। उस दिन का दरबार भी समाप्त होने आया। गालीचे राजमहल में पहुँचा दिये गये। दरबार की बर्खास्तगी के पहले प्रताप ने सभी को सम्बोधित कर कहा—अकबरशाह की शान्ति

बहुत दिनों तक चली। अब वह समाप्त होने को है। किसी को उस शान्ति के भ्रम में नहीं रहना चाहिए।

एकलिंगजी और महाराणा प्रताप की जयजयकार के साथ दरबार बर्खास्त हुआ। चेतक पर सवार होकर महाराणा ने अकेले सारे किले की प्रदक्षिणा की। किले की अधिष्ठात्री देवी भद्रकाली की सायं आरती में सम्मिलित होकर राणा ने उसके दर्शन किये। गढ़ के एक कोने पर हिलोरें ले रहे सरोवर के किनारे चेतक को पानी पिलाया। चारों ओर सायंकाल का सन्नाटा और शान्ति थी। लेकिन प्रताप इस शान्ति के रहस्य को भली प्रकार जानते थे। शान्ति जितनी ही गहन होती जाती थी उसकी ओट में छिपे हुए तूफान को वह उतनी ही स्पष्टता से देख रहे थे। वह निश्चयपूर्वक जान गये थे कि अकबरशाह की सेनाएँ मेवाड़ के अविजित प्रदेश पर कभी भी आक्रमण कर सकती थीं। शान्ति की इस लम्बी अवधि ने प्रताप को मन-ही-मन अशान्त कर दिया था। सीमा पर मुगल गुप्त-चरों की गतिविधि बहुत बढ़ गई थी। दिल्ली से मिलनेवाले गुप्त समाचार भी यही बतलाते थे कि अकबरशाह की दृष्टि अब मेवाड़ की ओर घूम रही थी। प्रताप स्वयं भी चाहते थे कि यह नकली शान्ति समाप्त हो और दिल्ली से भिड़न्त शुरू हो जाये। स्वयं प्रताप ने अभी अपनी ओर से पहल नहीं की थी; परन्तु उनका रोम-रोम युद्ध के लिए आकुल हो रहा था। वह प्रतिक्षण मेवाड़ के छिन्न-भिन्न प्रदेश, मेवाड़ी जनता और मेवाड़ी सेना को आगामी युद्ध के लिए तैयार कर रहे थे।

रात में महाराणा रनिवास में आये। रानीजी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। लेकिन महाराणा के कदम द्वार पर ही रुक गये। वहाँ उन्होंने चटाइयों और काठ के तख्तों के स्थान पर ईरानी गालीचे और कालीनें बिछी देखीं।

'रानीजी, मैं तो इस कक्ष में पाँव नहीं रख सकता।'

'क्यों महाराज ? यह गालीचे हिन्दू-कुल-सूर्य महाराणा के चरण का स्पर्श कर धन्य हो जायेंगे।'

'नहीं रानीजी, ये गालीचे मुझ पर, तुम पर और सारे मेवाड़ पर हँसने के लिए यहाँ भेजे गये हैं। मेरे रनिवास में इनकी कोई आवश्यकता नहीं।'

'अमर को यह अच्छे लगे हैं। उसका मन है तो रहने क्यों न दिये जायें ?'

'अमर चाहे ता रख सकता है। मैं जानता हूँ कि ये उसके मन भा गये हैं। परन्तु मेवाड़ को ये शोभा नहीं देते और मेवाड़ के राणा को तो जरा भी नहीं।'

'क्यों ?'

'लज्जा से जिसका सिर झुका हुआ है वह मेवाड़ या मेवाड़ का राणा ऐसे गालीचों का उपयोग कैसे कर सकता है? चित्तौड़-जैसी राजधानी जिन्होंने खो दी, वे सिसोदिया कौन-सा मुंह लेकर इनका उपयोग करें? रानीजी, हटा दो, इन्हें देखकर मेरे अंग-प्रत्यंग जले जा रहे हैं।'

राणा की अर्द्धांगिनी महारानी अपने पति के मन का भाव समझ गई। उसने तत्काल उन गालीचों को वहाँ से हटवा दिया। जब शयनागार पूर्ववत हो गया तभी राणा ने उसमें कदम रखा। अमर को भी अपने पिता के मन के भाव को समझते देर न लगी। उसने भारी कीमत चुकाकर खरीदे हुए सभी गालीचों को राजमहल के चौक में जमा किया और उनकी होली सुलगा दी। उनसे उठती लपटों को देखकर प्रताप को परम सन्तोष हुआ। अकबर के गुप्तचर ने मेवाड़, मेवाड़ के राणा और मेवाड़ी जनता की स्थिति को देखने के लिए ईरानी कालीनों के सौदागर का स्वांग किया था। लेकिन उसका यह स्वांग प्रताप की सतर्क दृष्टि से छिपा न रह सका। उन्होंने मुंहमाँगी कीमत देकर उसकी सभी कालीनें खरीद लीं और इस तरह उस पर मेवाड़ी राणा की उदारता और मेवाड़ी राजकोष की सम्पन्नता का सिक्का बिठा दिया, साथ ही उन कीमती कालीनों का वास्तविक मूल्य भी उसकी होली सुलगाकर उसे समझा दिया।

भामाशाह ने जाकर महाराणा से निवेदन किया—अन्नदाता, मेवाड़ में ऐसी मुनादी ही क्यों न करवा दी जाये कि जो माल मेवाड़ में निपजता नहीं उसे कोई न खरीदे।

'ऐसी मुनादी तो बड़ा अत्याचार हो जायेगी भामाशाह।'

'मैं अन्नदाता का आशय समझ गया। मेवाड़ की प्रजा को मुनादी की कोई जरूरत नहीं। मैं घोषणा करवा देता हूँ कि परदेश के, मेवाड़ के दुश्मन के माल पर राजमहल में प्रतिबन्ध लग गया है। प्रजा इतने से ही सब समझ जायेगी?'

और मंत्री भामाशाह ने मेवाड़ के एक-एक गाँव और एक-एक उपत्यका में यह घोषणा करवा दी कि मेवाड़ में जो माल उत्पन्न नहीं होता, मेवाड़ के

राजमहल में उसकी कोई आवश्यकता नहीं। मेवाड़ की समस्त प्रजा ने भी उसी दिन से यह निश्चय कर लिया कि मेवाड़ जिसे परदेश समझता है वहाँ का बना माल निषिद्ध है, उसे छुआ भी नहीं जा सकता।

यह मेवाड़ के बुनकरों के लिए एक चुनौती थी। उन्होंने निश्चय किया कि जैसा माल दिल्ली, काश्मीर और ईरान बनाता है वैसा माल हम भी बना कर रहेंगे। और एक बूढ़े बुनकर ने इस निश्चय को यथार्थ कर दिखाया। एक दिन वह अपने बूढ़े कन्धों पर एक गालीचा उठाकर लाया और उसे महाराणा के कदमों में फैला दिया।

'यह मुझ गरीब की महाराणा को भेंट है।' उस बुनकर ने कहा।

'लेकिन बाबा, मैं तो कोई विदेशी चीज भेंट में स्वीकार नहीं करता, और न खरीदता हो हूँ।'

'और मैं देता भी नहीं। क्या मेरे हाथ कट गये हैं जो अपने महाराणा को विदेशी चीज दूं! अन्नदाता, यह तो खुद मैंने और मेरे परिवार के लोगों ने अपने हाथों बुना है। यह ईरानी गालीचा नहीं। उतना अच्छा भी नहीं। लेकिन काश्मीरी गालीचे से हल्का भी नहीं। मेरे अन्नदाता इसे स्वीकार करें।'

प्रताप का मुख प्रफुल्लित हो उठा। स्वदेशी की जिस भावना से अनुप्राणित होकर उन्होंने विदेशी गालीचों की होली जलाई थी वह भावना मेवाड़ी जनता के हृदय में आज पल्लवित और पुष्पित हो उठी थी। एक क्षण के लिए प्रताप का कठोर मुख भी कोमल हो आया। उन्होंने उस बुनकर को राजअतिथि का सम्मान दिया और भाट-चारणों ने उसके विरुद का बखान किया। उस दिन से मेवाड़ से बाहर बनी चीजों का उपयोग करनेवाला व्यक्ति समाज में तिरस्कार और निन्दा का पात्र समझा जाने लगा।

'क्यों राणाजी, परदेशी शत्रु तो चल सकता है न? उससे तो आपको कोई एतराज नहीं?' एक दिन महारानी ने मुस्कराकर राणाजी से पूछा। वह अपने पति को हँसाना और प्रफुल्लित करना चाहती थीं, क्योंकि किसी गुप्त मंत्रणा से लौटकर आये हुए प्रताप के चेहरे पर गहन विषाद और चिन्ता का भाव था।

'शत्रु जब तक स्वदेश में हैं तभी तक परदेशी शत्रुओं का भय है। जब स्वदेश में सब मित्र हो जायेंगे तो परदेश अपने-आप मित्र बन जायेगा।'

'अब स्वदेशी शत्रु कौन रहा ?'

'शक्तिसिंह, समर, सगर, जगमल। और ये मेरे ही भाई हैं। मेवाड़ के राज-महल में जन्मे हुए मेवाड़ के शत्रु।'

'वे तो चले गये दिल्ली। अब वहीं आनन्द कर रहे हैं।'

'आनन्द नहीं, अकबर के तलुए सहला रहे हैं।'

'आपके तलुए सहलाकर क्या करते ? सिंहासन तो मिलने से रहा।'

'मैं कब कहता हूँ कि मेरे तलुए सहलाएँ। मैं तो स्वयं ही मेवाड़ के तलुए सहला रहा हूँ। और मनाता हूँ कि जनम-जनम मुझे यह सौभाग्य मिलता रहे।'

'आज महाराणा का चित्त इतना व्यग्र क्यों है ?'

'नहीं, कोई बात नहीं। केवल इतनी-सी बात है कि पड़ोसी शत्रु स्वदेश में आ रहा है।' महाराणा ने किंचित् मुस्कराकर कहा।

'कौन आ रहा है ?'

'अम्बर के मानसिंह कछवाह।'

'गुजरात को जीतने के बाद क्या अब मेवाड़ को जीतने की हवस हुई है ?'

'जीतने को ही आते तो क्या बात थी। लड़ाई के मैदान में अगवानी करता और वहीं फैसला हो जाता। लेकिन वह तो आ रहे हैं मेहमान बनकर।'

'मेहमान ? मानसिंह ? और आपके ?'

'हाँ, मेरे और इसलिए सारे मेवाड़ के। कितना मीठा पत्र लिखा है उन्होंने !' प्रताप ने पुनः मुस्कराकर कहा।

'लेकिन उनके मेहमान बनकर आने का कारण क्या है ? मुस्लिम को डोला देनेवाले अम्बरपति को हम अपना मेहमान [illegible] सकते हैं ?'

'आ रहे होंगे अकबरशाह की धमकी या सलाह लेकर। लेकिन उद्देश्य कोई भी क्यों न हो, घर आये मेहमान का तो स्वागत ही करना होगा।'

'कोई कपट-चाल तो नहीं ?'

'कपट का मुझे जरा भी डर नहीं, परन्तु अब मेवाड़ को अधिक जागरूक रहना होगा।'

'मेवाड़ तो रात-दिन जागता ही रहता है। कौन है यहाँ जो सोया रह सके ! और उसमें भी मेवाड़पति की तो कभी आँख नहीं लगती।'

'मेवाड़पति [illegible] हैं रानीजी, मैं नहीं?' प्रताप ने सहज भाव से मुस्कराकर कहा।

'मैं भी उन्हीं की बात कह रही हूँ महाराज। मेवाड़ के राणा को सुलाने की शक्ति अगर किसी में है तो वह अकेले मुझमें। मैं जानती हूँ कि मेरी गोद में सिर रखकर मेवाड़ का राणा एक शिशु को भाँति पौढ़ जाता है।'

रानी ने प्रसंग बदल दिया और महाराणा प्रताप का चेहरा मुस्कराहट से खिल उठा। राणा प्रताप कभी-कभार ही हँसते थे और उनकी वह विरल हँसी मुस्कराहट से आगे बढ़ने नहीं पाती थी। चित्तौड़ की चिन्ता में दग्ध प्रताप का हृदय उन्हें कभो जी खोलकर हँसने हो नहा देता था।

अकबरशाह ने उदयसिंह के जोवन के अन्तिम वर्षों और प्रताप के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में चित्तौड़ और उसके आसपास के थोड़े-से प्रदेश पर अधिकार करके मेवाड़ में अपने साम्राज्य-विस्तार को स्थगित कर दिया था। लेकिन मेवाड़ के राणा प्रताप से इसका आशय छिपा हुआ नहीं था। अकबर मेवाड़ को चारों ओर से घेरकर, अपनी नागफाँस को जकड़कर प्रणवीर प्रताप को झुकाना चाहता था। उसने ऐसी मोरचेबन्दी कर रखी थी कि प्रताप किसी भी प्रकार चित्तौड़ को फिर से अपने अधिकार में न कर सकें। गुजरात, सिरोही, डूंगरपुर और मालवा को जीतकर अकबरशाह ने मेवाड़ की दक्षिण-पूर्वी सीमा पर अपनी वज्र दीवार खड़ी कर दी थी। उत्तर-पश्चिम में जयपुर, जोधपुर और बीकानेर-जैसे राजपूत राजा मेवाड़ के मुकाबले पर थे। उधर अकबर एक-एक कर स्वतंत्र राजाओं को जीतता जाता था और इधर प्रताप समझते जाते थे कि अब मेवाड़ पर मुगल आक्रमण की तिथि नजदीक आती जा रही है। वह भी भिड़न्त के लिए अपने-आपको और मेवाड़ को तैयार कर रहे थे।

ऐसी ही स्थिति में एक दिन महाराजा मानसिंह का शिष्ट, मिष्ठ और शिष्टाचार-पूर्ण पत्र आ गया। उनके इस पत्र का आशय यह था कि गुजरात और डूंगरपुर को जीतकर उत्तर की ओर जाते हुए मेवाड़ के पुण्य-श्लोक महाराणा से मिलकर और उनके दर्शन करके धन्य होना चाहता हूँ। मेवाड़ अब भी स्वतंत्र था। उसकी स्वतंत्रता सभी हिन्दुओं के गर्व और गौरव का कारण थी। मेवाड़ और मेवाड़ के राणाओं ने, चाहे वे जीते हों या हारे हों, अभी तक दिल्ली का आधिपत्य

स्वीकार नहीं किया था। प्रताप अपने पिता उदयसिंह से भी अधिक दृढ़ता और निश्चय के साथ मेवाड़ की स्वातंत्र्य पताका को फहरा रहे थे। उनका यह कार्य अकबरी दरबार और अकबरी सेना के हिन्दुओं के लिए भी शोभा और गौरव की बात थी। जिन क्षत्रियों ने अकबर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और उसके सामने सिर झुकाते थे वे भी राणा प्रताप की अडिगता और उनके मस्तक को उन्नत देखकर यही समझते थे कि प्रताप उनकी कीर्ति को सुरक्षित रखे हैं। प्रताप के इस कार्य ने सिसोदिया-वंश की परम्परागत प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ा दिया था। राजस्थान ने महाराणा साँगा के नेतृत्व में किये गये युद्ध की गौरव गाथा को अभी भुलाया नहीं था। यद्यपि अकबर का भाग्य-सूर्य आकाश में चमक रहा था और उसका शरणागत बननेवाला अपने को सुरक्षित समझता था, फिर भी राजपूतों और हिन्दुओं के मन में मेवाड़ के लिए विनय और आदर के कोमल भाव थे। मानसिंह अकबर का प्रमुख सेनापति था, फिर भी प्रताप की टेक और स्वातंत्र्य भावना के लिए उसके मन में आदर था। इसी लिए उसने स्वयं पत्र लिखकर प्रताप का मेह-मान बनने की अभिलाषा व्यक्त की थी और अपने पत्र में मेवाड़ के महाराणा के प्रति पूरा सम्मान भी व्यक्त किया था।

:: ३ ::

मानसिंह की मेवाड़ का अतिथि बनने की आकांक्षा को प्रताप ने स्वीकार किया। लेकिन प्रताप जानते थे कि मानसिंह सद्भावना अथवा पूज्य बुद्धि लेकर नहीं आ रहा था। मुगलों के इस हिन्दू सेनापति ने इधर कूटनीति में बड़ी ख्याति अर्जित की थी। अकबर की कीर्ति के साथ उसने अपनी कार्यकुशलता और कीर्ति को भी जोड़ दिया था। सभी कूटनीतिज्ञों की सद्भावना की एक कीमत होती है और उनके सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को वह कीमत चुकानी पड़ती है। इस-लिए सारा मेवाड़ सोच रहा था, और मेवाड़ ही क्यों सारा भारतवर्ष सोच रहा था कि अकबरशाह के बुद्धिमान राजपूत मित्र और सेनापति तथा नन्हें-से मेवाड़ के दृढ़-प्रतिज्ञ वीर की मुलाकात का क्या परिणाम होगा ? क्या मानसिंह प्रताप को अकबरशाह के सामने झुकाने में समर्थ होगा या प्रताप की टेक उनके राज्य को नेस्त-नाबूद कर देगी ? स्थिति ऐसी नहीं थी कि महाराणा प्रताप की दृढता और

अडिगता हिन्दू जनता को स्वातंत्र्य-युद्ध के लिए प्रेरित करती। एक मेवाड़ को छोड़ अकबर के सामने टिका रह सके ऐसा कोई हिन्दू राज्य बचा भी नहीं था। स्वयं मेवाड़ को भी अपना चित्तौड़-रूपी मुकुट-मणि दे देना पड़ा था। इसलिए प्रताप और मानसिंह के मिलन पर तरह-तरह की अटकलें लगाई जा रही थीं।

कुम्भलगढ़ का दुर्ग बड़ा ही दुर्गम था। वहाँ सुविधा केवल शस्त्रास्त्रों की थी। अन्य कोई सुख-सुविधा वहाँ उपलब्ध नहीं थी। ऐसे असुविधापूर्ण दुर्ग में अकबर के प्रमुख सेनापति मानसिंह का स्वागत-सत्कार तो क्या ही हो पाता? मेवाड़ में एक उदयसागर ही ऐसा विशाल और सौन्दर्य-श्री से समृद्ध रमणीक स्थान था जहाँ बादशाह के प्रतिनिधि का उचित स्वागत किया जा सकता था। उसके किनारे पर एक सुन्दर महल, विस्तृत उद्यान और प्राकृतिक सौन्दर्य भी था। यहीं शाही मेहमान को ठहराने का निश्चय किया गया। भामाशाह की देख-रेख में उदयसागर के किनारे अतिथि के स्वागत-सत्कार का सारा आयोजन किया गया और वहां तम्बुओं और छोलदारियों का एक नगर ही बस गया। स्वयं महाराणा प्रताप ने स्वागत ओर आतिथ्य की प्रत्येक विगत को बारीकी से तैयार किया था। वह नहीं चाहते थे कि मानसिंह के स्वागत-सत्कार में तनिक-सी भी त्रुटि रहने पाये। मानसिंह को लेने के लिए उन्होंने स्वयं अपने कुँवर अमरसिंह को सामने भेजा और उसे विशेष रूप से यह आदेश दिया कि सम्माननीय अतिथि के स्वागत-सत्कार में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए।

अपने रिसाले के कुछ चुने हुए सैनिकों के साथ मानसिंह ने मेवाड़ की सीमा में प्रवेश किया। जिस ठाठ से ओर आदर-मान के साथ स्वागत हुआ और अमरसिंह ने जैसा विनय प्रदर्शित किया उसे देखकर मानसिंह को विश्वास हो चला कि मेवाड़ के महाराणा को अकबरशाह का मित्र बनाया जा सकता है। स्वागत में कहीं कोई त्रुटि नहीं थी। मेवाड़ियों के व्यवहार में कहीं यह परिलक्षित नहीं होता था कि वे अकबर से युद्ध कर रहे हैं—उनके व्यवहार में शत्रु का संकोच नहीं मित्र की हार्दिक भावना थी। और अतिथि-भवन के प्रवेश-द्वार में जब मानसिंह ने महाराणा प्रताप को स्वयं देखा तो उसका हृदय बाग-बाग हो गया। उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि अकबर और प्रताप के बीच मैत्री का गौरवपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जा सकेगा।

प्रताप को मानसिंह ने बहुत दिन पहले, जब वह कुँवर थे, देखा था। अकबर के साथ पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने के पहले अम्बर-नरेश भगवानदास की प्रताप के पिता उदयसिंह के साथ गहरी मैत्री थी और उन्होंने मेवाड़ की श्रेष्ठता को स्वीकार भी किया था। भगवानदास ने अपने ही पौत्र मानसिंह को गोद लिया था और वह पहले प्रताप से मिल चुका था। लेकिन अकबर के साथ सम्बन्ध हो जाने के बाद कछवाहों और सिसोदियों में मैत्री-सम्बन्ध का न रहना स्वाभाविक ही था। आज वर्षों बाद मानसिंह प्रताप को और प्रतापसिंह मानसिंह को आमने-सामने देख रहे थे। मानसिंह को देखते ही द्वार में खड़े प्रताप मुस्कराये और उसकी अगवानी के लिए दो-तीन सीढ़ियाँ नीचे उतर आये। मानसिंह ने भी मुस्काराहट का जवाब मुस्कराकर दिया। जिस प्रताप को एक सुकोमल किशोर के रूप में देखा था वह आज भरे-पूरे शरीर का वीर बन गया था। दोनों एक क्षण एक-दूसरे को देखते रहे। दोनों ने एक-दूसरे को परखा। प्रताप ने आगे बढ़कर मानसिंह को अपनी बगल में लिया और मानसिंह भी उनका बगलगीर हुआ। देखनेवालों ने इस दृश्य को विस्मित होकर देखा और वहाँ खड़े मेवाड़ी वीर सोचने लगे कि इसका परिणाम क्या होगा ?

'राणाजी, आपने मुजरा करने का मौका तो दिया ही नहीं। मेरा मुजरा अभी बाकी है।' महाराणा के आलिंगन से छूटते हुए मानसिंह ने कहा और मुजरे के लिए दोनों हाथ जोड़ने जा ही रहा था कि प्रताप ने उसके हाथ पकड़ लिये और उसे सीढ़ियाँ चढ़ाते हुए बोले—हमारे यहाँ तो मेहमान ही पूजनीय होता है। मुजरा मुझी को करना चाहिए। पधारिए, बड़ी कृपा की। कुशल-मंगल तो है न राजा साहब ?

'राजा साहब ! आप मुझे राजा साहब कहते हैं ? आपके लिए तो मैं अभी भी कुँवर ही हूँ।' मानसिंह ने इस तरह अपने पिता राजा भगवानदास के जीवित होने का ही नहीं, प्रताप के साथ अपने पुराने सम्बन्धों का भी उल्लेख किया।

'सारा भारत आपको राजा साहब के ही रूप में जानता है। बिराजिए।'

प्रताप ने मानसिंह को आदरपूर्वक मसनद पर बिठाया, और स्वयं भी बैठ गये। मानसिंह का युद्ध-कौशल देखकर अकबर ने उसे राजा की पदवी प्रदान की थी। तब से मानसिंह राजा मानसिंह कहकर ही पुकारा जाता था।

स्वागत करने के लिए आये हुए सरदार और सामन्त एक-एक कर विदा होने लगे। अन्त में मानसिंह को विश्राम का अवसर देने के लिए प्रताप भी उठ खड़े हुए। तब मानसिंह ने कहा—मुझे आपसे एकान्त में कुछ कहना है।

'आप यही चाहते हैं न कि साथ में कोई सामन्त या मंत्री न हों?'

'जी। आपसे चर्चा कर लेने के बाद जरूरी हुआ तो मैं सामन्तों और मंत्रियों से भी मिल लूंगा।'

'कोई सन्देश है या आदेश?' प्रताप ने कुछ गम्भीर होकर कहा।

'आज्ञा और आपके लिए! नहीं-नहीं, मैं तो सन्देश लाया हूँ—सन्धि का सन्देश।'

'अभी तो आप भोजन कीजिए, कुछ देर आराम कीजिए और रात में मेरे दरबार को पावन कीजिए। वहीं हम साथ बैठकर चर्चा करेंगे। मुझे भी आपसे एकान्त में बातचीत करना है।' यह कहकर महाराणा प्रताप मानसिंह को आराम करने के लिए छोड़कर चले गये।

मानसिंह के स्वागत-सत्कार में कुंवर अमरसिंह की ओर से कोई कसर बाकी नहीं रखी गई थी। नौकर-चाकर और राजकर्मचारी हाथ बाँधे खड़े थे। मुंह से बात निकलने भी न पाती थी कि पूरी कर दी जाती थी। यह आदर-मान देखकर मानसिंह ने यही सोचा कि मेवाड़ का राणा मानसिंह की सद्भावना प्राप्त करना चाहता है। यदि ऐसी बात है तो अकबरशाह का वर्चस्व अब सारे उत्तर भारत पर स्थापित हो जायेगा। एक छोटे-से मेवाड़ को छोड़कर काश्मीर और अफगानिस्तान से लेकर ठेठ गुजरात और मालवा तक का विशाल भूखण्ड अकबरशाह के छत्र के नीचे आ गया था। अब समुद्र में छोटे-से द्वीप-जैसे मेवाड़ के लिए उचित और समझदारी का मार्ग भी यही था कि वह बादशाह अकबर की सल्तनत का एक हिस्सा बन जाता। मानसिंह को प्रताप की ओर के स्वागत-सत्कार में इसी राजनीति का संकेत दिखाई दिया। वह हर्षोत्फुल्ल होकर सोचने लगा कि प्रताप यदि अकबरशाह का पटावत बन जाये तो कितना अच्छा हो। अकबर से जिन राजपूतों ने सम्बन्ध स्थापित किया है उनका नक्कूपन मिट जायेगा, अकबर को प्रताप-जैसा एक वीर सरदार मिल जायेगा और स्वयं मानसिंह की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ जायेगी।

ऐसी ही सुखद कल्पनाओं में मानसिंह का पूरा दिन बीता, रात्रि का भोजन समारम्भ हुआ, संगीत का कार्यक्रम समाप्त होने आया और मानसिंह के सजे हुए प्रकोष्ठ में महाराणा प्रताप ने प्रवेश किया। जैसे ही राणा प्रताप आकर मानसिंह के समीप बैठे अमरसिंह, अन्य मेवाड़ी सरदार और कलाकार वहाँ से चले गये। मानसिंह के अंगरक्षक भी विदा हो गये। अब उस विशाल प्रकोष्ठ में प्रताप और मानसिंह अकेले बैठे थे। दीपाधारों में जलते दीपकों की ज्योति कभी काँपकर और कभी डोलकर उनकी परछाइयों को नचा रही थी, और आगे आनेवाले प्रसंग की मौन साक्षी बनी खड़ी थीं।

'कहिए राजा साहब, किसी बात की तकलीफ तो नहीं हुई?' महाराणा प्रताप ने पूछा।

'तकलीफ? इतना आराम तो मैंने जिन्दगी में कभी जाना नहीं। आपके आदर-मान ने इतना सुख पहुँचाया कि अब नींद आने लगी है।'

'तो आप आराम कीजिए। नींद आती है तो सो जाइए।'

'मुझे और सारे हिन्द को भी सुख की नींद सुलाना आपके हाथ में है।'

'मैं आपके विश्राम में जरा भी बाधक नहीं बनूंगा। आप और आपके साथ आपका भारतवर्ष सुख की नींद सोये, यही मेरी इस समय बड़ी-से-बड़ी अभिलाषा है।' यह कहकर महाराणा प्रताप ने उठने का अभिनय किया।

'नहीं-नहीं, राणाजी, मैं यह नहीं कहता कि आप यहाँ से पधार जायें। भौतिक नींद का क्या? वह आये, न आये, सिपाही के लिए एक ही बात है। सिपाही तो निद्राजीत होता है। और मैं तो ऐसी नींद की बात कर रहा हूँ जिसमें मेवाड़ भी सुख से सो सके और मुगलाई हिन्द भी। और वह भी लम्बे समय के लिए।' मानसिंह ने कहा।

'मानसिंहजी, चाहता तो मैं भी यही हूँ।' प्रताप ने कहा।

'तो आपकी अनुमति हो तो मैं आपकी ओर से सुलतान के पास यह सन्देश ले जाऊँ कि मेवाड़ के पूजनीय राणाजी बादशाह के साथ मैत्री चाहते हैं।'

'अवश्य। अकबरशाह की मैत्री मेरे लिए बड़े आनन्द की बात होगी। मैं तो यह भी निवेदन करना चाहूँगा कि बादशाह स्वयं मेवाड़ पधारें और जिस प्रकार आपने मुझसे हाथ मिलाया है वह भी अपना हाथ मिलायें....'

प्रताप की यह बात सुनकर मानसिंह चौंक पड़ा। भला हिन्दुस्तान का शहन्शाह जहाँपनाह अकबर मेवाड़ में आकर प्रताप से हाथ मिलायेगा? उसने प्रताप को रोकते हुए कहा—अकबरशाह की सज्जनता का मैं आपसे क्या बखान करूँ? वह इतने सज्जन, उदार और विशाल-हृदय हैं कि आपसे परिचय होते ही हाथ मिलाने के लिए भी चले आयेंगे, और उन्हें जरा भी संकोच नहीं होगा।

'यह तो मैं भी जानता हूँ। अकबरशाह का गुण-गान मैंने भी सुना है। यदि ऐसी बात न होती तो मेरे तीन-तीन सगे भाई क्या यों ही मुगलाई तख्त की ताजीम करने लग जाते? राजा साहब, यदि बादशाह मेरी मैत्री चाहते हैं तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वह हाजिर है।'

'इसके लिए आपका शुक्रिया अदा करता हूँ। अकबरशाह जोधपुर, जयपुर और बीकानेर को अपना दोस्त ही समझते हैं। जिस तरह उन्होंने इन रजवाड़ों को अपनाया उसी तरह मेवाड़ को भी अपनायेंगे।'

'यह बात मेरी समझ में आई नहीं राजा साहब? मैत्री का अर्थ यदि ताबेदारी हो तो ऐसी मैत्री मेवाड़ को स्वीकार नहीं।' महाराणा प्रताप ने कहा।

प्रकोष्ठ में जलते हुए दीपकों का प्रकाश सहसा बढ़ गया और मानसिंह को प्रताप की आँखों में एक नया ही आलोक दिखाई दिया। क्षण-भर के लिए तो मानसिंह बेचैन हो गया। जिस उद्देश्य के लिए वह आया था कहीं वही निष्फल न हो जाये। उसे सतर्क रहना होगा। पूरी सावधानी बरतनी होगी। उसने अपने मन पर संयम करके सहज भाव से मुस्कराते हुए कहा—राणाजी, अकबरशाह की दोस्ती में ताबेदारी तो होती ही नहीं। मेरे ही अम्बर के महाराजा भगवान-दास को लीजिए, जोधपुर के मालदेव को लीजिए। इनमें से कोई भी शाही दरबार में नहीं जाता। और जो जाता भी है वह अपनी मर्जी से ही जाता है। सभी ने केवल अपने कुमारों को भेजा है....

'मेवाड़ से विद्रोह करमेरे दो भाई दिल्ली के दरबार में पहुँच तो गये हैं....' और आगे की बात कहना चाहकर भी प्रताप ने न कहना ही उचित समझा।

'यदि आप अमरसिंह को नहीं भेजना चाहते तो किसी दूसरे छोटे कुमार को भेज दीजिए। राजधानी में उनकी अच्छी तालीम होगी। शाही अदब-कायदा सीखेंगे। देश-परदेश के बड़े-बड़े लोगों से मिलकर फायदा उठायेंगे। दिल्ली-आगरा

का तो मामूली शख्स भी तहजीब में बढ़ा-चढ़ा होता है।' मानसिंह ने इस तरह कहा मानो उपदेश दे रह हो।

'जी हाँ, यह तो मैं भी जानता हूँ। सल्तनत की राजधानी की रौनक तो जुदी होती ही है।'

'फिर कभी आप भी वहाँ पधारिए। सारी मुगलाई आपको देखने के लिए बेताब है। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि अकबरशाह आपको इतनी इज्जत बख्शेंगे जितनी उन्होंने आज तक किसी को नहीं बख्शी है। शाही तख्त के बराबर आपका आसन रहेगा। खुद जहाँपनाह ने मुझे आपसे यह कहने की इजाजत दी है कि मेवाड़ से मिला हुआ जितना भी इलाका आप चाहेंगे वह सब आपकी नजर किया जायेगा।' इतना कहकर मानसिंह यह देखने के लिए रुक गया कि उसकी इस बात का प्रताप पर क्या प्रभाव पड़ता है। प्रताप के चेहरे पर पहले तो कुछ विनोद का भाव, फिर थोड़ी उग्रता और अन्त में अकल्पनीय तटस्थता का रंग उभर आया। मानसिंह की बात को चुपचाप वह सुनते रहे। जब मानसिंह को अपनी बात का कोई उत्तर नहीं मिला तो उसने पूछा—राणाजी, आपने तो कुछ भी नहीं कहा?

'जी, मैं सुन रहा हूँ आपका कहना। लेकिन मुझे तो अपने मेवाड़ की भूमि के अतिरिक्त किसी की एक भी इंच जमीन नहीं चाहिए।'

'चित्तौड़ आपको लौटा दिया जायेगा। मेवाड़ का जो हिस्सा आज मुगलों के कब्जे में है वह भी आपको दे दिया जायेगा। यदि किसी ने मेवाड़ की ओर आँख उठाने की जुर्रत की तो शहन्शाह अकबरशाह खुद आपकी बगल में आ खड़े होंगे।'

'यह चित्र तो आपका बहुत ही रंगीन और मोहक है।'

'इस चित्र को हकीकत में बदलना खुद आपके हाथ में है।'

'बदले में मुझे क्या देना होगा?'

'कुछ बहुत नहीं। आप शहन्शाह अकबर की हुकूमत मंजूर फरमा लें और अपने किसी कुँवर को शाही दरबार में भेज दें, बस इतना ही।'

'किसी शाहजादे को सिसोदिया कन्या देने का आग्रह तो नहीं?' प्रताप ने पूछा। अपने स्वर की तिक्तता को उन्होंने कण्ठ में ही समा लिया। परन्तु मान-

सिंह से वह तिक्तता छिपी न रही। अकबर की मैत्री चाहनेवाले प्रत्येक राजा को अभी तक अनिवार्य रूप से दो शर्तें स्वीकार करनी पड़ती थीं। एक तो अकबर के सम्राट्-पद की स्वीकृति और दूसरे मुगल राज-परिवार के किसी शाहज़ादे के साथ अपनी बहन अथवा बेटी का विवाह। सम्राट्-पद की स्वीकृति के रूप में प्रत्येक राजा को अपने पुत्र, भाई, भतीजे या परिवार के किसी पुरुष को अकबर के दरबार में रखना पड़ता था और विवाह के परिणामस्वरूप अकबर के वंशजों में से कितने ही हिन्दू माता की सन्तानें थीं। अकबर अपने चक्रवर्तीत्व की सिद्धि इन्हीं दो रीतियों से करता था। मानसिंह ने लक्ष्य किया कि अकबर की ये शर्तें प्रताप को खलनेवाली हैं इसलिए उसने शीघ्रतापूर्वक कहा—मैं जहाँपनाह से इल्तिजा करूँगा कि वे इन शर्तों पर जोर न दें, बल्कि माफ ही फरमा दें। और मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आज तक तो मेरी कोई भी इल्तिजा नामंजूर नहीं की गई है।

'मानसिंहजी, मुगलाई के शान-शौकत भरे दरबार में हम मेवाड़ के पहाड़ी लोग क्योंकर शोभा पा सकेंगे? और मुस्लिम जनानखाने में, बुरकों और पर्दों में, किसी राजपूत कुँवरी को अच्छा भी कैसे लग सकता है? आप तो जानते ही हैं कि राजपूतनी बचपन से ही घोड़े पर चढ़ना और शस्त्र चलाना सीखती है, हरम में बैठना उसके बस का नहीं होता।' प्रताप अपनी शान्ति को अभी तक बनाये हुए थे।

'यह तो राणाजी, सब-कुछ आदत पर मुनस्सर है और फिर अकबरशाह को अभी आप जानते नहीं। वह अन्धे मजहबी जोशवाले मुसलमान नहीं। वह तो सभी धर्मों को एक-सा समझते हैं। महाभारत का वह फारसी जबान में तर्जुमा करवा रहे हैं। अपनी हिन्दू रानियों के व्रत-त्योहार और तीर्थयात्राओं पर अकबरशाह ने कभी कोई रोक नहीं लगाई। कितने ही हिन्दू पण्डित, शास्त्री, संगीतज्ञ और कलावन्त अकबरशाह के दरबार की शोभा बढ़ाते हैं। मुझे तो अकबरशाह मुस्लिम की बनिस्बत हिन्दू ही ज्यादा मालूम पड़ते हैं....'

'तो उन्हें हिन्दू ही क्यों नहीं बना लेते? फिर तो कोई झंझट ही नहीं रह जायेगी।' प्रताप ने कहा।

'तब तो सारी इस्लामी दुनिया उनकी दुश्मन हो जायेगी। और आप देख

ही रहे हैं कि अभी तो हिन्दुस्तान में एकता कायम भी नहीं होने पायी है....'

'यानी आप यह कहना चाहते हैं कि अकबरशाह और उनके मुस्लिम कर्मचारियों को हिन्दू दुनिया की दुश्मनी का जरा भी डर नहीं। यह तो नाम का हिन्दुस्तान हुआ, बाकी राज्य तो इस्लाम का ही रहा।' प्रताप ने अपने मन की तीक्ष्ण और कटु भावना को खिन्नतापूर्वक व्यक्त किया।

'लेकिन अब हो ही क्या सकता है? हमारे संयोग ही ऐसे हैं। भगवान को हिन्दुओं की जीत ही मंजूर होती तो पानीपत के मैदान में पृथ्वीराज चौहान की हार क्यों होती? महाराणा साँगा को सीकरी का मैदान छोड़कर क्यों भागना पड़ता? दक्षिण के महान विजयनगर राज्य को नेस्तनाबूद क्यों होना पड़ता? राणाजी, समय बदल गया है। यदि हमने समय को नहीं पहचाना तो जिस तरह राज्य हाथ से निकल गया उसी तरह हिन्दुत्व भी हाथ से निकल जायेगा।'

'तो इस तरह दासता स्वीकार करने से हिन्दुत्व बच जायेगा?'

'तो आप ही बताइए और किस तरह बचेगा?'

'राजा साहब, मैंने खूब-खूब सोचा है। जो रास्ता आप बता रहे हैं उसको अपनाने से हिन्दुत्व का शरीर तो अवश्य बच सकता है, लेकिन उसका प्राण, उसकी आत्मा नष्ट हो जायेगी। जिस रास्ते पर मैं चल रहा हूँ उस पर चलते हुए हो सकता है कि एक भी हिन्दू देह हिन्दुस्तान में न बचने पाये, परन्तु हिन्दुत्व के प्राण अवश्य बच सकेंगे।'

'लेकिन आपका रास्ता तो अकबरशाह के साथ जिन्दगी-भर दुस्मनी निभाने का रास्ता है।'

'और हो ही क्या सकता है? जब शाही मैत्री का अर्थ पराधीनता और विधर्मी को कन्यादान हो तो कोई स्वाभिमानी और कर ही क्या सकता है? ऐसे जीवन से मृत्यु क्या बुरी है?'

'यही तो आपकी भूल है। यह सोचना ही गलत है कि आप मुगलाई दबदबे के सामने टिके रह सकेंगे। तीन सौ वर्षों का मेवाड़ का और मारवाड़ का भी यही तजुर्बा है। आप ही बताइए राणाजी, चित्तौड़ में तुर्कों ने कितनी बार होलियाँ खेलीं?'

'चित्तौड़ में नहीं राजा साहब, चित्तौड़ के श्मशान में।'

'यही सही। परन्तु नतीजा क्या हुआ ? बात तो वही हुई न। इसलिए मैं आपसे दरख्वास्त करता हूँ, कहिए तो घुटनों के बल बैठकर और नाक घिसकर इल्तिजा करूँ। आप सब बातों पर फिर से अच्छी तरह गौर कीजिए। मुगलों का सामना करनेवाला, अकबरशाह का मुकाबला करनेवाला हिन्द में तो आज कोई बचा नहीं है। मेवाड़ सिमटता जा रहा है। चित्तौड़ मेवाड़ के हाथ से निकल ही गया और....' मानसिंह आग्रहपूर्वक प्रताप को समझाने लगा।

'कहिए-कहिए, रुक क्यों गये ? आप यही न कहना चाहते हैं कि अगर मैं मुकाबला करता रहा तो खुद भी मर जाऊँगा और मेवाड़ चौपट हो जायेगा ?'

'आपकी बहादुरी की कोई सीमा नहीं राणाजी ! मैं आपकी बहादुरी पर सौ जान से न्योछावर हूँ। इसी लिए तो यहाँ हाजिर हुआ हूँ। मैं नहीं चाहता कि आपकी बहादुरी छोटे-से काम और छोटी-सी हद में बेकार हो जाये।'

'मेरी जिस वीरता का आप इतना सम्मान करते हैं वह आपके सन्धि-प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद भी क्या मुझमें रह जायेगी ?'

'कोशिश करके देखने में हर्ज ही क्या है राणाजी ? मैं जामीन होता हूँ। अकबरशाह की हुकूमत को मंजूर करने के बाद भी अगर आपको ऐसा लगे कि आपकी तौहीन हो रही है तो आप उसी समय आजाद हो सकते हैं। मैं तो यही जानता हूँ कि जितने भी इलाके अकबरशाह की छत्रछाया में आये वे सब आज अमन-चैन से और बहबूदी के रास्ते पर हैं।'

'आप बड़े-कुशल राजनीतिज्ञ हैं राजा साहब ! यदि मैं मेवाड़ का स्वामी होता तो जरूर आपकी बातों को स्वीकार कर लेता।'

'मेवाड़ के मालिक आप नहीं तो और कौन है ?' मानसिंह ने जरा चौंक-कर पूछा। उसकी समझ में नहीं आया कि महाराणा बात को किस ओर ले जाना चाहते हैं। वह बड़ी देर से महाराणा को समझा रहा था, परन्तु अभी तक उसे उनके विचारों की थाह नहीं मिल पायी थी, इसलिए वह जरा व्यग्र भी हो गया था।

'अरे, क्या आप नहीं जानते कि मेवाड़ के मालिक तो भगवान एकलिंगजी हैं। मैं तो उनका अदना चाकर हूँ। मेवाड़ के स्वामित्व को बदलने का अधिकार मुझे नहीं भगवान एकलिंगेश्वर को ही है।' प्रताप का स्वर मन्द परन्तु दृढ़ निश्चय से भरा था।

'राणाजी, यह तो मन की भावना है जो बड़ी अच्छी है, लेकिन राजनीतिक चर्चा में दलील का मुंह बन्द करने के लिए इसका सहारा नहीं लिया जा सकता।' मानसिंह ने भी उतनी ही दृढ़ता से कहा।

'हम सब भावनाओं के ही लिए तो जीते और उन्हीं के लिए मरते भी है।आपकी भावना मुगलाई को फैलाने-फुलाने की है। मेरी भावना मुगलाई आक्रमण के सामने बिना झुके टिके रहने की है। अकबरशाह को यदि मेरी मैत्री चाहिए तो आप इतना आश्वासन दीजिए कि मेवाड़ की स्वाधीनता पर मुगलों की ओर से आँच न आने पायेगी और तब आप देखिए कि प्रताप कितना अच्छा मित्र बन सकता है। मैत्री बराबरीवालों में ही शोभा पाती है।'

'आपने कभी यह भी सोचा है कि इस हठ का क्या नतीजा होगा?'

'हम हिन्दू तो हठ करके साक्षात् भगवान को भी प्रत्यक्ष दर्शन देने के लिए बाध्य कर सकते हैं। जब स्वाभिमान से बाजी लगी हो तो मैं कभी परिणाम की चिन्ता नहीं करता।'

'तो क्या यही आपका आखिरी जवाब है?' इस बार मानसिंह के प्रश्न में विजेता की कठोरता थी।

'राजा साहब, अब रात अधिक हुई। आपको अधिक देर बातों में लगाये रखना मेरा अतिथि-धर्म नहीं। आपने परिश्रम भी बहुत किया।' प्रताप ने कहा और उठने लगे।

'तो मैं अभी ही चल देता हूँ....'

'वाह, क्या मैं आपको इस तरह जाने दे सकता हूँ? मेवाड़ के आतिथ्य का पूरा उपभोग किये बिना क्या आप कभी जा सकते हैं? अभी तो आपकी दावत भी नहीं हुई। कल ही तो मैंने आपके सम्मान में राजसी भोज का आयोजन किया है।' प्रताप उठकर खड़े हो गये और हँसते हुए उन्होंने मानसिंह के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया। उस हस्त-स्पर्श में आतिथ्य का निवेदन और मैत्री की कोमलता थी।

मानसिंह ने प्रताप के नेत्रों में झाँकते हुए कहा—आज की रात भगवान आपको सच्चा मार्ग दिखाये।

प्रताप के मन में तो आया कि पूछ लें, मार्ग ईश्वर दिखायेगा या राह खुदा

बतायेगा। लेकिन इस प्रश्न को मन में ही दबाकर वह मानसिंह से विदा हुए। जब वह अपने शयनागार की ओर चलेतो रात का तीसरा पहर शुरू हो रहा था और उसकी द्योतक तीसरे पहर की शहनाई बज रही थी। बाहर अँधेरा था। विशाल उदयसागर के वक्ष पर आसमान के टिमटिमाते हुए तारे प्रतिबिम्बित हो रहे थे। मानसिंह के अंगरक्षक और उसके स्वागत-सत्कार के लिए नियुक्त मेवाड़ी सरदार अपने पहरे पर मुस्तैद थे।

जब राणा अपने शयनागार के द्वार पर पहुँचे तो वहाँ महारानी पद्मादेवी उनकी प्रतीक्षा में खड़ी हुई थीं। राणा को देखते ही उन्होंने आगे बढ़कर हाथ पकड़ लिया और अन्दर ले जाते हुए पूछा—इतनी देर क्यों लग गई ?

'नींद को जीतने के मामले में तो तुम मुझसे भी बाजी मार ले गई हो रानीजी।'

रानी ने जवाब दिया—मेरे सिवाय किसी और से हारनेवाले पति की पत्नी मैं बन ही कैसे सकती हूँ।

एक क्षण महाराणा अपनी रानी की ओर देखते रह गये। उन्हें आनन्द के साथ इस बात की अनुभूति हुई कि अकबरशाह की धमकी को ठुकराकर आया हूँ और ठीक वही प्रतिध्वनि मेरी पत्नी के हृदय में भी गूंज रही है।

'इस तरह टक लगाये क्या देख रहे हो राणाजी ? मुझसे भी कई सुन्दर स्त्रियाँ इस संसार में पड़ी हुई हैं।' यह कहते हुए रानी ने प्रताप को पलंग पर बिठा दिया और आप उनके समीप बैठ गई।

'मैं रूप को नहीं देख रहा रानी ? रूप के सत्व में विकसित शक्ति को देख रहा हूँ। आज यदि मुझे ठीक समय पर भगवान महादेव ने बचा न लिया होता, उनकी याद न आ गई होती तो निश्चय ही मानसिंह के प्रलोभनों में पड़ जाता। बोलो, वैभव-विलास, हास-परिहास, आनन्द-मंगल चाहिए ?'

'मैं समझी नहीं। मैं तो एक ही बात जानती हूँ। राणाजी की संगति में मुझे सब-कुछ मिल जाता है। आपकी संगति के बिना मिलनेवाला वैभव-विलास, हास-परिहास मुझे नहीं चाहिए। आज तो मानसिंह से बहुत देर बातें हुईं।'

'हाँ, अकबरशाह की मैत्री का सन्देश लेकर वह आये हैं।'

'आपने स्वीकार कर लिया ?'

'तुमसे पूछे बिना कैसे स्वीकार कर लेता ?'

'मैत्री के बदले में वह चाहते क्या हैं ?'

'केवल यह कि मैं अपना सिर झुका दूं।'

'अकबरशाह उम्र में आपसे बड़े हैं, सिर झुका भी दें तो कोई हानि नहीं।'

'मानसिंहजी तो कहते हैं कि अपना मुकुट उतारकर उनके चरणों में रख दो।'

'मेवाड़ के राणा के माथे पर मुकुट होता ही कहाँ है? मुकुट के मालिक तो भगवान एकलिंगेश्वर हैं। देवता के मुकुट को भला कौन उतार सकता है?'

'वाह रानीजी, वाह! ठीक यही बात तो मैंने भी मानसिंह से कही। परन्तु वह तो मानते ही नहीं।'

'किसी को मनाने के लिए कोई देव-द्रोह अथवा देश-द्रोह कैसे करे?'

'देव-द्रोह और देश-द्रोह न करने पर क्या परिणाम होगा, यह भी सोचा है रानीजी? ये द्रोह तो बहुत ही छोटे हैं, और उनका परिणाम भी दूसरे जन्म में भुगतना पड़ेगा; परन्तु अकबर-द्रोह का विषम परिणाम तो इसी जन्म मे भुगतना होगा।'

'लेकिन हमारा तो मुस्लिमों की भाँति केवल एक ही जन्म नहीं होता। हम तो पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। मृत्यु से विषम परिणाम और हो ही क्या सकता है? और मौत को तो राणाजी मुट्ठी में लिये फिरते हैं।'

'सच है, परन्तु मेरे बाद....'

'आपके बाद तो मैं भी नहीं रहूँगी, और हमारे बाद का विचार प्रभु के हस्ते।'

'मारे मेवाड़ की जनता भयंकर विपत्ति में फँस जायेगी। मानसिंह की दृढ़ धारणा है कि अब इस पृथ्वी पर मुगलाई आतंक का सामना करनेवाला कोई बचा नहीं है।'

'मानसिंहजी को हम उनकी भूल बता देंगे। रही जनता पर आनेवाली विपत्ति, सो उसके बारे में जनता से ही पूछना उचित होगा। आप ठहरे जनता के प्रतिनिधि।'

'वाह रानीजी, वाह! तुमने तो सारी समस्या को यों चुटकी बजाते हल कर दिया। अब मुझे खूब गहरी नींद आयेगी।'

'मैंने तो आपको किसी रात गहरी नींद सोते नहीं देखा।'

'लेकिन आज की रात अवश्य गहरी नींद सोऊँगा। मैत्री का अर्थ कभी गुलामी हो नही सकता। मैं संसार-भर के सभी महान राज्यों और महान राजाओं के लिए एक उदाहरण छोड़ जाना चाहता हूँ; और वह यह कि जो मरने के लिए तैयार हो उसे बड़ा से बड़ा राज्य भी मार नहीं सकता।'

यह कहकर महाराणा प्रताप पलंग पर लेट गये। रानीजी उनके माथे पर हाथ फेरने लगीं। प्रताप के नेत्र मुंदने लगे, तभी उन्होंने सहसा आँखें खोलकर कहा—सरदार तो सभी एकमत हैं; प्रजा के मुखियाओं से भी पूछ लिया जाये। सब आ रहे हैं।

'क्या आपने सबको बुलाया है ?'

'हाँ, मानसिंहजी के मिलने आने का उद्देश्य मैं पहले ही समझ गया था, इसीलिए मैंने सबको बुला लिया है। मेवाड़ियों का मन तो टटोल ही लेना चाहिए।'

'सबने आपको मुखिया माना है। जो आपका मन होगा वही उनका भी होगा। अब बिना कुछ बोले-चाले चुपचाप सो जाइए।'

'सो जाऊँ ? लेकिन रानीजी, क्या तुम जानती हो कि राजा किसे कहते हैं ? राजा होता है सारे देश और सारी जनता के चिन्ता-भार को उठानेवाला।'

'और रानी ?'

'राजा के चिन्ता-भार को उठानेवाली एक देवी।'

'यानी रानी हुई राजा से भी बड़ी, ऊँची और प्रतिष्ठित। मानते हैं न ?'

'मानता हूँ। जो राजा को भी आज्ञा दे सके वह होती है रानी।'

'तो मेरी आज्ञा है कि राणाजी अब एक भी अक्षर बोले बिना आँखें मूंदकर सो जायें।'

प्रताप हँस दिये। उन्होंने अपने मस्तक पर फिरते हुए रानी के हाथ पर अपना हाथ रख दिया और उन्हें नींद आने लगी। नींद में भी वह यही सोचते रहे कि मानसिंह के शिविर में लोगों का आना-जाना इतना अधिक क्यों हो रहा है ? सवेरे देर तक उनकी आँखें नहीं खुलीं और जब जागे तो सिर में हल्का-हल्का दर्द हो रहा था।

उस समय रानी झरोखे में भगवान भुवन-भास्कर की पूजा कर रही थीं। प्रताप को जागते देख वह उनके समीप आईं।

'मुझे जल्दी क्यों नहीं जगा दिया राणाजी ?' प्रताप ने कहा।

'कपाल छूकर देखा तो वह मुझे कुछ गरम लगा, इसलिए मैंने आपको जगाया नहीं।' रानी ने कारण बताया।

'राजा साहब प्रतीक्षा कर रहे होंगे।'

'कौन मानसिंह ?'

'हाँ। सिर सचमुच भारी हो गया है।'

'और उधर सामन्त तथा मेवाड़ के मुखियागण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं कहला देती हूँ कि महाराणा की तबियत ठीक नहीं। उपस्थित नहीं हो सकेंगे।'

'यह कैसे होगा ? आज तो मैंने मानसिंह के राजसी-भोज का आयोजन किया है। वह हमारे अतिथि हैं।'

'लेकिन आप उनके साथ भोजन नहीं कर सकते।'

'क्यों ?'

'आपका सहभोज अकबरशाह के साथ हो सकता है, अकबरशाह के सरदार के साथ नहीं।'

प्रताप ने सुना और हँस दिये। फिर वह उठ बैठे। उन्होंने मानसिंह के कुशल-समाचार पूछवाये। सवेरे मिलने जा न सके इसके लिए माफी माँगी और शीघ्रतापूर्वक प्रातःकर्मों से निवृत्त होकर अपने गुप्त मंत्रणा-गृह में प्रवेश किया। वहाँ सरदार नित्य की भाँति अदब-कायदे से बैठे थे। परन्तु वातावरण में एक विचित्र प्रकार की गम्भीरता थी।

महाराणा ने चर्चा आरम्भ करते हुए कहा—आज हमने अपने सम्माननीय अतिथि के स्वागत में राजसी-सहभोज का विशाल आयोजन किया है।

'जी, सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं।' भामाशाह ने कहा।

'लेकिन मुझे तो कोई उत्साह दिखाई नहीं देता।' प्रताप ने कहा।

'हम सब यही सोच रहे हैं, कुछ लोग क्रोधित भी हैं।' भामाशाह ने जवाब दिया।

'सोच में हैं.... क्रोधित हैं.... क्या बात है ?'

'मैं तो सोच रहा हूँ कि क्या अब मुझे भामाशाह के बदले टोडरमल बनना होगा ?' कहते-कहते उस युद्ध-निपुण वैश्य-मंत्री के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई।

'इस बात का विचार तो तुम्हीं को करना है भामाशाह।' प्रताप ने कहा।

'मैंने अपना वैयक्तिक निर्णय कर लिया है महाराज। बाकी जैसी सब सरदारों की राय हो।'

'परन्तु क्रोध का कारण क्या है!'

'सबसे अधिक कुपित तो महाराजा रामसिंहजी हैं। वही कारण बतलाने की कृपा करें।' यह कहकर भामाशाह ने ग्वालियर के वृद्ध महाराजा रामसिंह की ओर दृष्टिपात किया।

लोगों ने देखा कि उस बूढ़े क्षत्रिय की आँखों में अंगारे दहक रहे थे; फिर भी उसने अपने-आप पर संयम करते हुए कहा—कोई खास बात नहीं राणाजी। बुढ़ापे का क्रोध प्रायः निष्फल ही होता है।

'तो भी?'

'आप तो जानते ही हैं कि अकबरशाह ने [illegible] को निमंत्रण दिया था। मानसिंहजी ने आकर उस निमंत्रण को फिर ताजा कर दिया।' कहते-कहते उस वृद्ध सेनानी के ओठ काँप उठे।

'यदि निमंत्रण स्वीकार कर लिया होता तो वह आज मनसबदार होता। सबको अपने बारे में अन्तिम रूप से विचार कर लेना चाहिए।' प्रताप ने कहा।

'विचार तो कभी का कर लिया है राणाजी। जो यहाँ रह गये हैं वे मरने के लिए हैं, खिसकने के लिए नहीं।' झाला मानसिंह ने कहा।

'आप-जैसे वृद्ध सरदार से तो मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। लेकिन युवकों से अवश्य कहना चाहता हूँ कि ....' प्रताप कहते-कहते रुक गये।

'रुक क्यों गये महाराणा? कह ही डालिए न। मेवाड़ की जवानी आपकी ललकार का क्या जवाब देती है इसे हम बूढ़े भी तो सुन लें।' रामसिंह ने कहा।

युवक सरदार पहले ही-तने बैठे थे। अब और तन गये। किसी का हाथ तलवार की मूठ पर तो किसी का अपनी मूछ पर चला गया। यह मानो प्रताप के बिन पूछे प्रश्न का स्वयंस्फूर्त उत्तर था। प्रताप ने इसे लक्ष्य किया; फिर उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा:

'हमारे आज के मेहमान मानसिंहजी के मेवाड़ छोड़ते ही सारी मुगलाई हम पर टूट पड़ेगी।'

'क्यों? हमने ऐसा क्या गुनाह किया है?' एक सामन्त से रहा न गया, वह पूछ ही बैठा।

'गुनाह यही कि हम अकबरशाह की इच्छानुसार, जैसी मैत्री वह चाहते हैं, उसके लिए तैयार नहीं। उनकी मैत्री का अर्थ है उनकी गुलामी।' प्रताप ने कहा।

'ऐसी मैत्री हमें स्वीकार नहीं।' किसी दूसरे सरदार ने कहा।

'साथ ही इसका परिणाम भी हमें सोच लेना चाहिए। मुगलाई आधिपत्य को स्वीकार करते ही मेवाड़ सम्पन्नता की ओर बढ़ने लगेगा। स्वीकार न किया तो कष्ट, युद्ध और मृत्यु हमारे नित्य के साथी बन जायेंगे।' प्रताप ने कहा।

'तो महाराज, मेवाड़ की जवानी की ओर से इस बात को मेरा यह जवाब है कि हम कष्ट, युद्ध और मौत को गले लगायेंगे।' किशोरवय के युवक शालिवाहन ने तमतमाये चेहरे से कहा।

'शाबाश! लेकिन मान लो कि कभी मैं मानव-सुलभ दुर्बलता का शिकार हो गया और मैंने मानसिंहजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, तो?' प्रताप ने जमीन की ओर ताकते हुए कहा।

'ऐसा होने के पहले यहाँ उपस्थित एक-एक सरदार कट मरेगा महाराज!" उत्तर पुनः शालिवाहन ने ही दिया।

मेवाड़ के सरदारों को फोड़ने के प्रयत्न भी मुगल बादशाह की ओर से निरन्तर होते रहते थे। जिनको जाना था वे चले गये थे। अब जो बचे रह गये वे खरे हीरे थे। बड़ा से बड़ा प्रलोभन भी उन्हें डिगा नहीं सकता था। इन्हें फोड़ने के भी बहुतेरे प्रयत्न किये जा रहे थे। सरदारी, मनसबदारी, सूबागीरी, मंत्रीत्व, जागीर और राज-सिंहासन तक के प्रलोभन दिये जा चुके थे। लेकिन धन्य है इन मेवाड़ी वीरों को जिन्होंने उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। ये वज्र निश्चय के फौलादी वीर थे जो झुकना जानते ही नहीं। शालिवाहन को तो मानसिंह ने बड़ा-से-बड़ा प्रलोभन दिया था। उसके पिता का छीना हुआ ग्वालियर का पूरा राज्य ही लौटाने का आश्वासन दिया गया था; परन्तु अपने ही राज्य से निष्कासित, मेवाड़ के आश्रय में पड़े हुए राजा रामसिंह तोमर और उसके पुत्र शालिवाहन को यह प्रलोभन डिगा न सका। अब महाराणा प्रताप की समझ में आया कि सारी रात मानसिंह के शिविर में इतनी हलचल क्यों थी।

मानसिंह ने मेवाड़ के आतिथ्य का पूरा-पूरा दुरुपयोग किया था। वह रात-भर मेवाड़ी सरदारों को बुलाकर उन्हें फोड़ने का प्रयत्न करता रहा, और इसी से मेवाड़ी सरदार इतने कुपित हो उठे थे। यह तो उनकी समझ में आता था कि अकबरशाह मेवाड़ के राणा को समझाने, धमकाने या सन्धि करने के लिए सन्देश-वाहक भेजे; परन्तु यह उनकी समझ में नहीं आता था कि वह सन्देशवाहक मेवाड़ी सरदारों को फोड़ने का प्रयत्न करे। किसी भी पटावत को अकबर के साथ दासता-भरी सन्धि स्वीकार नहीं थी।

अपने सरदारों से चर्चा करने के बाद महाराणा प्रताप ने भीलों के मुखिया बभ्रु को भी बुलाकर पूछा।

उसने सभी भीलों की ओर से उत्तर दिया—महाराज, हम तो जंगल के निवासी गँवार लोग हैं। हमारे दो आँखें हैं और वे केवल दो ही चीजों को देख सकती हैं, तीसरी चीज उन्हें दिखाई नहीं देती। एक चीज है भगवान एकलिंग-नाथ और दूसरी चीज है हमारे राणाजी। इन दो चीजों के आगे हमारी निगाह पहुँचती ही नहीं। हमारे पहाड़ी मुल्क को और कुछ भी नहीं चाहिए महाराज।

'एक-एक टेकरी सुलग उठेगी नायक।'

'टेकरी सुलगाकर तो हम रोज ही तापते हैं राणाजी। जहाँ फूंक मारी कि आग बुझ गई। भील ही जानते हैं कि आग से धुलकर पहाड़ और मगरे कितने उजले हो जाते हैं। एक-एक टेकरी सुलग उठे तो और भी अच्छा।' बभ्रु ने इतने आत्मविश्वासपूर्ण स्वर में कहा कि वहाँ उपस्थित सभी सामन्तों के चेहरे खिल गये। भीलों की स्वामिभक्ति के बारे में वैसे भी सभी आश्वस्त थे।

बभ्रु के बाद महाजनों और ग्रामीणों के मुखिया दरबार में आये। सभी जानते थे कि अब मुगलाई आतंक से दो-दो हाथ करने होंगे।

प्रताप ने उनसे पूछा—मेवाड़ी महाजन और मेवाड़ की ग्रामीण जनता क्या चाहती है—दासता और सम्पन्नता अथवा स्वाधीनता और विपन्नता?

'राणाजी क्षमा करें। लेकिन अन्नदाता की बात की कुछ तुक नहीं बैठती। दासता के साथ सम्पन्नता कभी संभव नहीं।' महाजनों के आगेवान ने कहा।

'जोधपुर और जयपुर को देखिए और गुजरात की सम्पन्नता का भी कुछ विचार कीजिए।'

'वह सब भ्रम है राणाजी। सच्चा महाजन वह है जो जिस चीज को हाथ लगा दे वह सोना हो जाये। महाजन के हाथ तो विपन्नता को भी सम्पन्नता में बदल देते हैं महाराज! फिर मेवाड़ के महाजन को धन्धे-रोजगार का तो कोई डर ही नहीं है।'

'और सच्चा किसान वह है जो पत्थर पर भी अनाज पका देता है। मेवाड़ की धरती को हम जानते हैं अन्नदाता! हम किसान जहाँ भी हल चला देंगे वहीं अनाज लहलहा उठेगा। मेवाड़ के गाँवों पर झण्डा अगर किसी का उड़ सकता है तो वह भगवान एकलिंगजी का, दूसरे किसी का नहीं।' किसानों के मुखिया ने कहा।

'सिसोदियों के साथ रहकर दुःख भोगते आप लोगों को सदियाँ बीत गईं। आज मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ कि जिसकी इच्छा हो मेवाड़ छोड़कर सम्पन्नता की गोद में चला जाये। जानेवालों के लिए मैं सब प्रबन्ध कर दूंगा।' प्रताप का हृदय व्यथित हो उठा था।

'अन्नदाता, आप यह क्या कहते हैं? मेवाड़ पर जितना आपका उतना ही हमारा भी अधिकार है। न हम यहाँ से जायेंगे और न किसी जबरदस्ती करने-वाले को यहाँ आने ही देंगे। हाँ, जो मेहमान बनकर आवेगा उसे हम अपने सिर-आँखों पर लेंगे। बाकी, मालिक तो एक ही है और वह है भगवान एकलिंगेश्वर।' किसानों के मुखिया ने कहा।

'अब केवल एक छोटी-सी बात और रह गई है। उठने से पहले उस पर भी विचार कर लिया जाये। महाराजा मानसिंह से मिलने का समय भी हो चला है। हो सकता है कि मेवाड़ की कुलदेवी आजकल में मनुष्य-बलि की माँग करे। कौन है हममें ऐसा बत्तीस लक्षणोंवाला जो माता के खप्पर में अपना शीश चढ़ा दे?' प्रताप ने कहा।

सारा दरबार उठकर खड़ा हो गया। बूढ़े और जवान, सरदार और ग्रामीण, महाजन और मंत्री कोई भी बैठा न रहा। महाराणा प्रताप गद्‌गद होकर उस दृश्य को देखते रहे। जिस राज्य के सामन्त और सरदार, प्रजाजन और मुखिया इतने वफादार हों वहाँ दासता कैसी? महाराणा प्रताप के हृदय में शक्ति का एक नया ही निर्झर फूट निकला।

भामाशाह ने कहा—राणाजी, बत्तीस लक्षणोंवाला पुरुष हम लोगों के बीच में है या नहीं, यह तो नहीं जानता, लेकिन एक लक्षणवाला पुरुष है, यह विश्वास मैं आपको दिलाता हूँ। मेवाड़ का एक-एक व्यक्ति, वह स्त्री हो या पुरुष, बालक हो, वृद्ध हो या युवा, एकलिंगजी के लिए, मेवाड़ के लिए और आपके लिए बलिदान हो जाने को सदैव प्रस्तुत है। बस आपके आदेश की देर है।

प्रताप की आँखों की कोर पर आँसू की एक बूंद चमकती दिखाई दी। वह इतने भावाकुल हो गये कि कुछ क्षण उनसे बोला नहीं गया। दरबार को बर्खास्त करते हुए वह केवल इतना कह सके—मेवाड़ की जनता का निश्चय ही मेरा निश्चय है। स्वाधीनता के यज्ञ में पहली बलि मेरी चढ़ेगी। आज मुझे फिर से इस बात का दृढ़ विश्वास हो गया कि मेवाड़ स्वतंत्रता चाहता है, दासता नहीं। और इस बात को तो मेवाड़ का बच्चा-बच्चा जानता है कि स्वतंत्रता सिर देकर ही प्राप्त की जा सकती है। इसलिए सबसे पहले मैं ही अपना सिर मेवाड़ की मुक्ति के लिए बाजी पर लगाता हूँ।

'जय एकलिंगजी !' वहाँ उपस्थित सभी सूरमाओं के मुंह से निकली हुई इस ध्वनि ने दशों दिशाओं को गूंजा दिया। मुगल सेनापति मानसिंह ने जब इस जयजयकार को सुना तो उसकी व्यग्रता बहुत बढ़ गई।

सबको सहभोज में उपस्थित रहने का आदेश देकर प्रताप शीघ्रता से अपने मेहमान के पास पहुँचे। सभी मेवाड़ी सरदार सहभोज की व्यवस्था में लग गये। लोगों में अपार जोश और उत्साह था। कौन था इस उत्साह का प्रेरक? वह कौन-सी शक्ति थी जो उन्हें इस तरह उमंगित किये हुए थी। सूर्य तपता है, परन्तु उस सूर्य को तेज प्रदान करनेवाली वह कौन-सी विद्युत-शक्ति है जो दिखती नहीं, फिर भी निरन्तर जलती रहती है?

चेतक क्यों हिनहिना रहा था? क्या प्रताप ने उसकी नीली देह पर अभी तक हाथ नहीं फिराया था? और उदयसागर के तीर पर एकत्रित मेवाड़ी वीरों की गरदनें इतनी उन्नत और अकड़ी हुई क्यों थीं? क्या सबके-सब चेतक की नकल तो नहीं कर रहे थे?

::४::

उदयसागर का पानी हिलोरें ले रहा था। तालाब के हृदय से उठती छोटी-छोटी लहरें किनारे से टकराकर बिखर रही थीं। उसके किनारे को बड़े ठाठ-बाट से सजाया गया था। वृक्ष मस्ती में भरे झूम रहे थे। छतनार वृक्षों के नीचे एक विशाल शामियाना ताना गया था और उसके अन्दर पंगतें पड़ी हुई थीं। रंग-बिरंगे स्वस्तिक और अल्पना बनाई गई थीं। सुन्दर आसन और पटे रख दिये गये थे। केवल एक पटे पर सोने की थाली और स्वर्ण-पात्र थे, उसके आस-पास के कुछ आसनों के आगे चाँदी के बरतन रखे गये थे, शेष सभी आसनों के आगे पलाश के हरे पत्तों की पत्तलें और दोने रखे हुए थे। अगरबत्ती का सुगन्धित धूम वातावरण को गन्धपूरित कर रहा था। मेवाड़ के सरदारों ने अपनी योग्यता और पद के अनुसार अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिया था। मुगल सेनापति मानसिंह के साथ जो कुछ राजपूत सरदार आये हुए थे उन्हें चाँदी के थालवाले आसनों के आगे बिठा दिया गया था।

नौबत की ताल के साथ शहनाईवाला मंगल ध्वनि बजा रहा था। वातावरण में उछाह और उत्सव प्रतीत होता था। परन्तु न जाने क्यों इस उत्सव और उल्लास के नीचे दबा हुआ एक गूढ़ भाव भी था जो वहाँ उपस्थित सभी लोगों के हृदय में हिलोरें ले रहा था और उत्सव को पूरी तरह से उभरने नहीं दे रहा था। मानसिंह के सरदारों ने इस बात पर आपत्ति की थी कि मेवाड़ी सरदार पत्तल-दोने में भोजन करें और उन्हें चाँदी की थालियों में परोसा जाये। उन्हें मेवाड़ी सरदारों की ओर से यह उत्तर दिया गया कि सारे मेवाड़ ने निश्चय किया है कि जब तक चित्तौड़ को जीत नहीं लिया जाता कोई मेवाड़ी सोने-चाँदी के बरतनों में भोजन नहीं करेगा।

मानसिंह को लेकर अमरसिंह ने सहभोज के मंडप में प्रवेश किया। सबने खड़े होकर दोनो का स्वागत किया। मानसिंह इस समय अमरसिंह को दिल्ली, आगरा, सीकरी और अजमेर की सम्पन्नता के किस्से सुना रहा था और अमरसिंह भी बड़े ध्यान से सुनता चला आ रहा था। दोनो बीच-बीच में हँसी-मजाक करते जाते थे, जिससे दोनो के चेहरों पर मुस्कराहट खिली हुई थी। सहभोज के मंडप की व्यवस्था और ठाठ-बाट देखकर मानसिंह को प्रसन्नता ही हुई।

परन्तु अपने सामने सोने की थाली और अमरसिंह के सामने पत्तल-दोने देखकर मानसिंह ने कहा—कुँवरजी, यह भेद क्यों ?

'इसे राजा साहब हम मेवाड़ियों का पागलपन ही समझें। हमने इधर यह निश्चय कर लिया है कि राजमहल में सोने-चाँदी के बरतनों का नहं, पत्तल-दोनों का ही उपयोग किया जाये।' अमरसिंह ने विनयपूर्वक उत्तर दिया।

'तो मुझे भी पत्तल-दोने में ही परोसा जाये।'

'नहीं राजा साहब, यह कैसे हो सकता है! ऐसा करने में न आपकी शोभा है, न हमारी। जो हो रहा है वह उचित ही है।'

मानसिंह ने अपने चारों ओर देखा। सभी मेवाड़ी सरदारों के आगे पत्तल-दोने थे, केवल उसके साथ आये हुए सरदारों के आगे चाँदी के थाली-कटोरे रखे गये थे। मानसिंह की मुस्कराहट तिरोहित हो गई।

जब भोजन परोस दिया गया तो अमरसिंह ने हाथ बाँधकर निवेदन किया—राजा साहब! भोजन आरम्भ किया जाये।'

'लेकिन राणाजी कहाँ हैं? राणाजी के पधारने के बाद ही भोजन आरम्भ होना चाहिए।' मानसिंह ने कहा।

'मैं, राणाजी का प्रतिनिधि, आपके आगे हाजिर हूँ। आरम्भ कीजिए।'

'नहीं कुँवरजी, ऐसा नहीं हो सकता। राणाजी के बिना हम भोजन नहीं कर सकते।' मानसिंह ने आग्रह किया।

'राणाजी पधार नहीं सकते। उन्होंने मुझे कहलवाया है कि मैं आपसे भोजन का निवेदन करूँ।'

'क्यों, पधार क्यों नहीं सकते?'

'क्योंकि वह अस्वस्थ हैं। उनके सिर में पीड़ा है। उन्होंने बहुत-बहुत माफी माँगी है। आरम्भ कीजिए राजा साहब, दोपहर होने को ही है।'

'कुँवरजी, मुझे तो इसमें कोई चाल मालूम पड़ती है। राणाजी मेरे साथ भोजन न करें, यह तो मेरी सरासर बेइज्जती है। मैं राणाजी के बगैर भोजन नहीं करूँगा।'

'छोटी-सी बात को श्रीमान इतना महत्व न दें।' अमरसिंह ने दोनो हाथ जोड़कर कहा।

'बात आपके लिए छोटी हो सकती है, मेरे लिए नहीं। सारा राजस्थान यही कहेगा कि मेवाड़ के विशुद्ध महाराणा अशुद्ध अम्बरवासी के साथ बैठकर एक पंगत में भोजन नहीं करते। मैं तो कौर तभी तोड़ूंगा जब महाराणा स्वयं पधारेंगे।' यह कहता हुआ मानसिंह उठकर खड़ा हो गया। उसके साथ के सभी सरदार भी उठ खड़े हुए। मेवाड़ी सरदार भी अमरसिंह के साथ खड़े हो गये। इधर अमरसिंह मानसिंह को मनाता रहा, उधर उसने महाराणा प्रताप के पास यह सन्देशा भी भिजवाया कि भोजन समारम्भ में आपकी अनुपस्थिति को अतिथि अपना अपमान समझ रहा है।

'इतना ही नहीं, मेरी ओर से यह भी कहला दीजिए कि सिसोदिया-कुल की पवित्रता की रक्षा हो सके, इसी हेतु से हम लोगों ने अपमान सहकर भी अपनी बहन-बेटियाँ मुस्लिमों के साथ ब्याही हैं। आज तक हम आपका भला ही चाहते आये हैं। परन्तु हमारे साथ भोजन के लिए एक पंगत में न बैठकर आप सार्वजनिक रूप से हमारा अपमान कर रहे हैं। यह हमारे लिए असहनीय है।'

वृद्ध झालाराणा मानसिंह के इस सन्देश को लेकर महाराणा प्रताप के पास गये।

इधर अमरसिंह ने हाथ जोड़-जोड़कर सभी खड़े हुओं को पुनः पत्तलों पर बिठाया। परन्तु मानसिंह ने प्रताप की अनुपस्थिति में एक कौर भी मुंह में डालना स्वीकार नहीं किया। उसके तन-बदन में आग लग गई थी। वह आया था भारत सम्राट् जहाँपनाह अकबरशाह की मैत्री का सन्देश लेकर और उसे बदले में मिल रहा था घोर अपमान, असहनीय तिरस्कार। प्रताप के हठ और दुराग्रह को वह देख सका था। प्रताप ने अपनी ओर से विनम्रता और शिष्टाचार का पूरा प्रदर्शन किया था। मानसिंह ने बड़ी सतर्कता से धमकी भी दी थी। अभी तक उसे महाराणा का स्वीकृति या अस्वीकृति-सूचक अन्तिम उत्तर नहीं मिला था। भोजन के समय अन्तिम उत्तर मिलने की आशा मानसिंह को थी। उसने अमरसिंह को प्रलोभन देने का भी पूरा प्रयत्न किया था। इतना तो वह समझ ही गया था कि अकबर का सन्धि-प्रस्ताव शायद ही स्वीकार किया जायेगा। अब जो प्रताप ने मानसिंह के साथ बैठकर भोजन करने में भी आनाकानी की तो स्पष्ट हो गया

थोड़ी ही देर में झालाराणा लौट आये। अपने से उम्र में बहुत ही छोटे मानसिंह के आगे दोनो हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर वृद्ध सरदार ने कहा—राजाजी, महाराणा सच ही अस्वस्थ हैं। यदि विश्वास न हो तो आप स्वयं चलकर देख लीजिए। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की है कि आप अन्नदेव का तिरस्कार न करें।

'यानी मैं अपना तिरस्कार सहन कर लूं? राणाजी की अस्वस्थता का कारण मैं समझता हूँ। जिन्होंने मुसलमानों से नाता जोड़ा है ऐसे सभी राजपूतों का वह अकेले अपमान करना चाहते हैं, तो करें। आप मेरी ओर से उन्हें यह सन्देश पहुँचा दीजिए कि अब वह [illegible] और [illegible] रहें।' मानसिंह ने क्रोधोन्मत्त होकर कहा।

'राणा प्रताप कभी गफलत में नही रहते। वह हमेशा तैयार रहते हैं। आप अम्बरपति के रूप में उनसे मिलना चाहें तो वह आपसे आपके राज्य में मिलने के लिए तैयार हैं; अपने बहनोई अकबरशाह की ओर से मिलना चाहें तो जहाँ और जैसे भी आप कहें मिल लेंगे।' बूढ़े झालाराणा ने मेवाड़ी दबंग से उत्तर दिया। उनका इशारा इस बात की ओर था कि मानसिंह ने अपनी बहन का विवाह अकबरशाह के साथ किया है।

क्षण-भर के लिए सन्नाटा छा गया। सबको विश्वास हो गया कि मानसिंह और प्रताप ने एक-दूसरे पर तलवारें खींच ली हैं।

'अच्छी बात है। अब युद्ध के मैदान में ही मिलेंगे। सिसोदिया-वंश का मिथ्या अभिमान मिट्टी में नहीं मिला दिया तो मेरा नाम मान नहीं। लेकिन फिर भी अन्नदेव की उपेक्षा मैं नहीं करूँगा।' यह कहकर मानसिंह ने देवग्रास के दो-तीन कौर थाली में से निकालकर जमीन पर रख दिये और अपना हाथ धोकर खड़ा हो गया। फिर अपने साथियों से अपना अश्व मँगाकर मानसिंह उस पर सवार हुआ और वहाँ से चल पड़ा। उसके जाते ही यवनों से सम्बन्धित भ्रष्ट राजपूतों द्वारा भ्रष्ट की हुई भोजन-सामग्री को मेवाड़ी सामन्तों ने उठाकर एक ओर फेंक दिया और उस सारी अपवित्र भूमि को गंगाजल से धोकर पवित्र किया। इस अपमान ने मानसिंह के हृदय में होलियाँ सुलगा दीं, परन्तु उसने मुड़कर पीछे नहीं देखा।

इधर सामन्तगण आपस में बातें कर रहे थे—राणाजी को दबाने-धमकाने, कुँवरजी को फुसलाने और सामन्तों को फोड़ने के उद्देश्य से जो भी आयेगा उसे अपमान के सिवा और मिलेगा भी क्या ?

क्रोध की पहली लपट कुछ शान्त हुई तो मानसिंह ने मुड़कर पीछे की ओर देखा। अरावली की एक-एक टेकरी उसे अपने पर हँसती और खिल्ली उड़ाती प्रतीत हुई। मेवाड़ के वृक्षों और वनराजि का पत्ता-पत्ता उसे अपना मुंह चिढ़ाता दिखाई दिया। मेवाड़ के खरहे और हिरन भी उससे अपनी नजर मिलाने में हीनता समझते हों, इस तरह उसकी ओर बिना देखे निकले चले जा रहे थे। मानसिंह को प्रतिक्षण यह डर लग रहा था कि कहीं कोई उसे बाँधकर मेवाड़ में ही न रख ले ! परन्तु किसी ने उसको रोका नहीं। वह सही-सलामत मेवाड़ की सीमा पार कर गया। वह अतिथि बनकर आया था और राजपूतों का धर्म था कि अतिथि के साथ कोई कपट नहीं किया जाये, उसे कोई हानि नहीं पहुँचाई जाये। इस क्षत्रिय धर्म का और महाराणा प्रताप की आज्ञा का सबने पालन किया।

स्वयं राणा और मेवाड़ी वीरों की ओर से अतिथि-सत्कार में कोई त्रुटि नहीं रहने पायी थी। मान-सम्मान का सारा आयोजन मानसिंह ने स्वयं अपनी आँखों देखा था। अपने महत्व को भी वह जानता था। मुगल सेना का वह खास सिपह-सालार था, अनुपम वीर भी था। किसकी ताकत थी जो उसे पकड़कर रख लेता ? परन्तु मेवाड़ ने अपमान तो उसका कर ही दिया। मुंह पर कालिख पोतकर उसे निकाल बाहर किया। उसका बस चलता तो उसी समय वह सारे मेवाड़ को अपने पाँवोंतले रौंद देता। जैसे-जैसे वह मेवाड़ से दूर होता गया, मेवाड़ को पददलित करने का उसका संकल्प भी दृढ़ होता गया।

राजपूत राजवंश ने विधर्मी को कन्या अवश्य दी थी। विधर्मियों से पराजित होकर ही उन्हें विष की यह घूंट पीना पड़ी थी। परन्तु यह सम्बन्ध मानसिंह ने नहीं, उसके पिता ने ही जोड़ा था। अब तो रिश्ता जुड़ गया था। इस रिश्ते के कारण उन्हें मुगलाई में अच्छा मान-मरतबा भी मिला था। अकबरशाह ने मानसिंह को अपनी सेना में ऊँचा पद और रुतबा दिया था। वह उस पर विश्वास भी बहुत करता था। फिर अकबर ने कभी मानसिंह से यह नहीं कहा कि वह

यह कहा कि वह इस्लाम-धर्म स्वीकार कर ले और अपना नाम बदल ले। न उसने उसे अपने व्रत-त्योहार छोड़ने को कहा, न हिन्दू देवी-देवताओंकी पूजा करने से रोका। जब मूर्ति-तोड़क इस्लाम इतना उदार और कोमल हो सकता है तो उससे नाता जोड़ना अपमानजनक क्यों समझा जाये? क्या इस्लाम की यह राजनीतिक और सामरिक विजय ईश्वरी संकेत नहीं? इस्लाम हर मोरचे पर विजयी होता जा रहा था। अकबरशाह भारत का चक्रवर्ती सम्राट् बनने के लिए ही राजा हुआ था और यह बात अब दोये की भाँति उजागर हो चुकी थी। केवल हिन्दू राजा ही नहीं, इस्लाम-धर्मावलम्बी राजा भी अकबरशाह के प्रखर प्रताप और प्रचण्ड आक्रमण के आगे तिनके की भाँति झुके जा रहे थे। जब ईश्वर की ही ऐसी मर्जी हो तो उसके आगे आदमी बेचारे का क्या वस? उसे तो मार्ग देना ही होगा।

आज तो हिन्दू-धर्म की रक्षा भी विजयी इस्लाम को भेंट देकर और उसके आगे झुककर ही की जा सकती थी। धर्म भी इस बात की अनुमति देता है कि भेंट देकर भी यदि धर्म को बचाया जा सके तो बचाना चाहिए। निश्चय ही यह मार्ग अपमानजनक था, परन्तु अकबरशाह हिन्दू-धर्म को समझने का कितना अधिक प्रयत्न करता था। दूसरे धर्मवालों का वह कितना सम्मान करता था। हो सकता है कि आज से कई वर्षों के बाद स्वयं बादशाह अकबर हिन्दू धर्मावलम्बी हो जाये; और यदि मुगलों का शहन्शाह हिन्दू धर्मावलम्बी हो गया तो फिर पूछना ही क्या! तब तो यह धर्म विश्व-व्यापी ही बन जायेगा।

लेकिन मेवाड़ के घमण्डी महाराणा को यह सूरज-जैसा सत्य दिखाई नहीं देता। देखकर भी वह अहंकारी देखना नहीं चाहता। हिन्दू धर्म के मिथ्याभिमान में वह धर्म का दुश्मन बना जा रहा है। छोटी दृष्टिवाले और संकुचित मनवाले उस राणा को यह पता ही नहीं कि आज सैकड़ों नहीं, हजारों राजपूत मुगलोंके मित्र बनकर, मुगलाई प्रताप और दिग्विजय का दबदबा बढ़ा रहे हैं। वह जानता ही नहीं कि अकबरशाह के चारों ओर कई कट्टर आर्य धर्मावलम्बी जमा हो चुके है; और अकबर उन सभी का पूरा सम्मान करता है। आज दक्षिण में सह्याद्रि के शिखरों तक पूर्वी समुद्र के किनारे से पश्चिमी सागर के तट तक और काबुल-कन्धार के पार भी अकबरशाह का आधिपत्य माना जाता है।

इस आधिपत्य के विस्तार में राजपूती शौर्य और आर्यबुद्धि का पूरा-पूरा उपयोग हुआ है। ऐसी परिस्थिति में एक छोटे-से राज्य का अधिपति धर्म और स्वाधीनता की अपनी टेक को कहाँ तक निभा सकता है ? मानसिंह ने प्रताप के साथ हुए अपने वार्तालाप पर बार-बार विचार किया। प्रताप की टेक मानसिंह को अच्छी अवश्य लगी थी, परन्तु आज के जमाने में वह निरुपयोगी और समय के प्रतिकूल थी। अकेला प्रताप कितने दिनों तक टिका रह सकता है ? मुट्ठी-भर सेना, अपर्याप्त साधन, चारों ओर से घिरा हुआ और पुरानी पराजयों से संत्रस्त वह कहाँ तक टिका रहा सकेगा ?

लेकिन यदि वही प्रताप मुगलों का साथ देने को प्रस्तुत हो जाये तो पूर्व में चीन और पश्चिम में रोम और शाम तक मुगलाई प्रताप का विस्तार किया जा सकता है। और मुगलाई केवल मुगलों की ही नहीं है। उसमें हिन्दू भी हैं और मुस्लिम भी। वह आज की भारतीय सत्ता है। इस्लाम की धर्मान्धता और कट्टरता उसमें से निकल चुकी है। आर्य-धर्म की कट्टरता भी उसी परिमाण में कम हुई है। कितना रूढ़िग्रस्त हो गया था आर्यों का धर्म ? समुद्र की यात्रा नहीं की जा सकती। विधर्मियों को छुआ तक नहीं जा सकता। रोक-टोक से पाँव तक बाहर निकाला नहीं जा सकता। प्रताप, धर्मान्ध होकर तुम भयंकर भूल कर रहे हो। युद्ध के ही द्वारा तुम्हारी इस भूल को सुधारा जा सकता है।

मानसिंह जितना ही सोचता, घूम-फिरकर इसी परिणाम पर पहुँचता कि प्रताप के साथ युद्ध करना ही होगा। जब मालवा, बंगाल, गुजरात और पंजाब को जीत लिया तो छोटे-से मेवाड़ की क्या बिसात ? प्रताप को तो यों चुटकियाँ बजाते हराया जा सकता है। और कहीं राणा-वंश की किसी कुँवरी का विवाह अकबर के किसी शाहजादे के साथ हो जाये तब तो प्रताप का प्रताप और घमण्ड अवश्य चूर-चूर हो जायेगा।

इस तरह मैं अपने अपमान का बदला भी ले सकूंगा। फिर कोई सिसोदिया सिर उठाकर कह नहीं सकेगा कि कछवाहों ने अपनी बेटी मुगलों को ब्याही है। बड़ी गलती की कि मेवाड़ के मूर्ख राणा को शब्दों से वश में करने की कोशिश की। वह समझौते की नहीं खड्ग और भालों की भाषा जानता है। अब तो युद्ध-युद्ध और युद्ध। कितने कठिन युद्ध इस मानसिंह ने कर डाले ? और सभी

में आशातीत सफलता प्राप्त की। क्या कहीं हारा, कहीं निष्फल हुआ? मानसिंह ने अपनी स्मृति पर बहुत जोर डाला, परन्तु कहीं हारा होता तभी न याद आता।

मानसिंह ने निश्चय कर लिया कि अब तो प्रताप को हराकर ही दिल्ली जाऊँगा। इस निश्चय के साथ वह अजमेर पहुँचा। उन दिनों बादशाह अकबर का मुकाम अजमेर में ही था। गुजरात की विजय का उत्सव वह अजमेर में मना रहा था। दिल्ली के सभी सुलतान अजमेर के ख्वाजा पीर की दरगाह के भक्त थे। अकबर की भक्ति सभी से बढ़ी-चढ़ी थी। हिन्दू मन्दिरों की प्राणवान शिल्पकला को तोड़-फोड़कर, मूर्तिकला को विकृत और विकलांग करके, भारतीय मन्दिरों का इस्लामीकरण करने की शैली अपनाकर, सुप्रसिद्ध सूर्य मन्दिर को अढ़ाई दिन का झोंपड़ा बनानेवाले चिश्ती साहब की मन्नतें अकबरशाह अकसर मानता रहता था और उनके दर्शनार्थ अजमेर दौड़ा आता था। राजस्थान का केन्द्रीय नगर होने के कारण भी राजनीतिक दृष्टि से अजमेर का अत्यधिक महत्व था। वहाँ बैठकर सारे राजस्थान की चौकी की जा सकती थी। अजमेर से उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम चारों दिशाओं पर निगाह रखना आसान था। और अब तो मेवाड़ को चारों ओर से घेर लिया था, इसलिए उसे भी अजमेर में ही बैठकर अपने रंग में रँगा जा सकता था।

राजपूतों के साथ अकबरशाह की राजनीति और विजय-योजना बिल्कुल नये प्रकार की थी। पहले वह मैत्री का सन्देश भेजता; मैत्री में हिन्दू राजा के परिवार की कोई कन्या और राज-परिवार का कोई कुँवर माँगा जाता था। कन्या किसी शाहजादे के जनानखाने में पहुँचा दी जाती थी और कुँवर अकबरी लश्कर का अमलदार और अकबरी दरबार का दरबारी बना लिया जाता था। जिसे मैत्री स्वीकार न होती उसे युद्ध करना पड़ता था। अकबर की वीरता अनुपम थी। व्यूह-रचना में वह बड़े-बड़े सेनापतियों को मात करता था। विरोधियों को भी वह अपना मित्र बना लेता था, क्योंकि किसी के भी सद्‌गुणों को उभारकर, उनकी सराहना करके उनसे लाभ उठाने की पर्याप्त योग्यता उसमें थी। जिस दुश्मन को मित्र बनाता उसका सदा आदर करता और महत्व देता रहता था। जो दुश्मन मित्र न बनता उसे वह कभी माफ नहीं करता और उसका दमन करके ही छोड़ता था। आदमियों का वह बड़ा पारखी था। उदारता भी उसमें खूब थी। बड़ा ही

न्यायप्रिय और कला का प्रेमी था। इन गुणों ने उसे महान बना दिया था। सभी धर्मों और दर्शनशास्त्रों तथा सिद्धान्तों की विविधता तथा ऊपरी विरोध की ओट में सन्निहित सत्य का वह अन्वेषक और पक्षपाती था। इसलिए उसमें धार्मिक कट्टरता का नितान्त अभाव था और वह मनुष्य-मात्र के एक धर्म का समर्थक और प्रवर्तक बन गया था। अकबर के नाम का लोगों पर रोब गालिब होता था, परन्तु अपने सम्पर्क में आनेवालों का वह प्यारा और स्नेह-पात्र भी था। लोगों की निष्ठा और स्वामिभक्ति को जगाकर उनका उपयोग करने की अद्‌भुत प्रतिभा उस व्यक्ति में थी।

देखते-ही-देखते उसने भारत के समूचे उत्तराखण्ड को अपने अधिकार में कर लिया। सारी दुनिया में उसके नाम का डंका बजने लगा। उसके राज्य की समृद्धि और सम्पन्नता की चारों ओर ख्याति फैल रही थी और उससे आकर्षित होकर देश-विदेश के विद्वान, विचारक, कलाकार और राजनीतिज्ञ उसके दरबार में चले आ रहे थे। लेकिन चन्द्र में कलंक की तरह उसकी निर्बाध सत्ता में एक ही कमी रह गई थी। मेवाड़ उसकी सोने की थाली में लोहे की कील की तरह चुभा हुआ था। मेवाड़ का महाराणा दिल्ली की मुगल पताका को सिर नहीं झुकाता था। अकबर ने मानसिंह को इसी विश्वास से प्रेरित होकर मेवाड़ भेजा था कि वह प्रताप को समझा-बुझाकर अकबरी छत्र-छाया के नीचे ले आयेगा।

आनासागर झील के किनारे की पाल संगमरमर के विशाल प्रकोष्ठों और छज्जों से सुशोभित थी और एक कलापूर्ण स्फटिक मंडप के नीचे मित्रों और दरबारियों के साथ बैठा हुआ भारत का शहन्शाह सामान्य चर्चा कर रहा था। पश्चिमी देशों के ईसाई राज्यों से समुद्री नाविक हिन्द के किनारे उतरने लगे थे और वाणिज्य-व्यवसाय के लिए दिल्ली और आगरा तक की यात्रा करके अपनी चित्र-विचित्र पोशाक और भाषा के द्वारा कुतूहल उत्पन्न कर रहे थे। वे पृथ्वी के दूसरे छोर तक भारतीय कला और कारीगरी को पहुँचाने भी लगे थे। जब यह चर्चा छिड़ी तो फैजी ने कहा—जहाँपनाह, सियासत का उसूल है कि सारा इलाकाए हिन्द एक हुकूमत के नीचे हो तभी आवाम की बहबूदी और तरक्की हो सकती है, और आमद-रफ्त, तिजारत और रोजगार भी सलामत रह सकते हैं।

इस पर बादशाह अकबर ने टोडरमल की ओर मुखातिब होकर कहा—

कहिए राजा साहब, आपका क्या खयाल है? फैजी का यह उसूल, यह सिद्धान्त तो कुबूल होना ही चाहिए।

'जी हुजूर! उनका सिद्धान्त तो सही ही है।' स्वभाव से ही मित और मधुरभाषी राजा टोडरमल ने बहुत ही रुकते-रुकते जवाब दिया।

'यह क्या बात हुई? आपने पूरी जिन्दादिली से इस बात की ताईद नहीं की। बीरबलजी, राजा साहब के जवाब में हिचकिचाहट क्यों मालूम पड़ रही है?' अकबर ने बीरबल को भी चर्चा में शरीक करते हुए कहा।

'जहाँपनाह का फरमाना दुरुस्त है। लेकिन इसका कारण तो हर बात और हर पहलू को तौलनेवाले राजा साहब ही बता सकते हैं।' बीरबल ने जवाब दिया।

यह सुनकर बादशाह ने कहा—लेकिन मावदौलत तो इसका कारण राजा साहब से नहीं, आपसे जानना चाहते हैं।

'दुरुस्त है, बिल्कुल दुरुस्त है। बीरबल साहब तो हर शख्स के दिल का हाल जानते हैं। किसी का दिली राज उनसे पोशीदा नहीं रहता। मेरे उसूल में कोई कमजोरी जरूर होनी चाहिए वरना राजा साहब उसकी पुरजोर ताईद न करते?' फैजी ने बादशाह की बात का समर्थन किया।

'हुजूर, राजा साहब टोडरमल के दिल का हाल जानना लोहे के चने चबाना है। हुजूर के हुक्म को सिर-आँखों पर चढ़ाकर यह नाचीज कोशिश करे और कहीं नाकामयाब हो जाये, तो?' बीरबल ने अपना भय प्रदर्शित किया।

'कोई हर्ज नहीं। कोशिश तो करनी ही चाहिए। तब एक के बदले दो कारण मालूम हो जायेंगे—एक मेरा और एक बीरबल साहब का।' राजा टोडरमल ने मुस्कराकर बीरबल का उत्साह बढ़ाया।

'खुदावन्द, उसूल तो सही है। उसमें कोई मीन-मेख नहीं। लेकिन उसमें राजा साहब को कमजोरी यह दिखाई दी कि एक हुकूमत का होना है तो बहुत बढ़िया परन्तु वह हुकूमत हो किसकी?' बीरबल ने कहा।

'इसका जवाब तो आईने की तरह साफ है। वह हुकूमत सुल्तान जलालुद्दीन अकबर बादशाह की ही हो सकती है। अबुलफजल ने जोर देते हुए कहा।

'हम तो खैर इस बात को मानते ही हैं, लेकिन जो मानते नहीं, उनके बारे में आपकी क्या राय है?' बीरबल ने दलील पेश की।

'जो नहीं मानते उन्हें मानना होगा—पहले समझौते से और उससे काम न बने तो ताकत के जोर से।' फैजी ने कहा।

'इसका तो यही मतलब हुआ कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। क्या आप यही फरमाना चाहते हैं कि जिसमें ताकत होगी वही सुल्तान-ए-हिन्द होगा?' बीरबल ने पूछा।

'जी हाँ। ताकत ही तो आखरी कसौटी है। उसी एक तराजू पर सब-कुछ तुलता है।' अबुलफजल ने अपना मत प्रकट किया।

'लफ्ज आखिरी पर बीरबल साहब को एतराज हो सकता है। मैं समझता हूँ कि हुआ भी चाहिए। लेकिन मावदौलत की यह समझ में नहीं आता कि हिन्दुओं की नीति में चकरवरती का रुतबा मंजूर होते हुए भी उन्हें दिल्ली की एक हुकूमत को मंजूर करने में क्यों एतराज है?' अकबर ने कहा।

'जहाँपनाह, इस बात को हिन्दू बने बगैर समझा नहीं जा सकता।' बीरबल ने निर्भीकता से कहा। बीरबल अपनी हर बात—तीखी-कड़वी, मीठी और व्यंग्य-पूर्ण बादशाह अकबर के सामने बेधड़क कह सकता था।

'बीरबल, क्या अहले मुगलाई में हिन्दू-मुसलमानों का कोई भेद है?' अकबर ने पूछा।

'नहीं गरीबपरवर। इसी लिए तो अहले-मुगलाई का चक्र विशाल और व्यापक होता जाता है। जो इस बात को जानते हैं वे मुगलाई को मानते भी हैं। परन्तु जो नहीं मानते मैं तो उनकी बात कर रहा हूँ। इस नाचीज की राय में तो सब चक्रों में धर्मचक्र यानी मजहब की हुकूमत ही चक्रवर्ती हो सकती है। हुजूर ने उस धर्मचक्र को दीनइलाही यानी सब मजहबों की एकता के रूप में चला भी रखा है।' बीरबल ने कहा।

'मरहबा, मरहबा! वाह क्या बात कही है! राजा मानसिंहजी साहब के एवज बीरबल साहब को मेवाड़ भेजा होता तो कामयाबी में कोई शुबहा नहीं था।' फैजी ने कहा।

'मेवाड़ के राणा से जिनका परिचय है वे जानते हैं कि अगर स्वयं ईश्वर भी सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाता तो उसे सफलता न मिलती।' अभी तक चुप बैठे हुए बीकानेर के राठौर पृथ्वीराज ने कहा।

'जहाँ सुलह की तजवीज कामयाब नहीं होती, वहाँ फौज कामयाबी हासिल करती है।' फैजी ने कहा।

'तो इस प्रयोग को फिर से आजमा लिया जाये। उदयसिंह जीवनपर्यन्त लड़ते रहे, झुके नहीं। इस वास्तविकता का उल्लेख अबुलफजल साहब ने अपनी तवारीख में जरूर ही किया होगा।' पृथ्वीराज ने कहा।

बीकानेर के राठौर घराने का यह भाई-बन्द अकबरशाह का दरबारी तो हो गया था परन्तु उसके क्षात्रतेज और क्षत्रियत्व के अभिमान में रत्ती बराबर भी कभी नहीं होने पायी थी। वह कवि भी था। उसके स्वभाव और शब्दों के अक्खड़पन को अकबर ही नहीं, उसका पूरा दरबार सह लेता था। उसका स्पष्ट मन्तव्य यह था कि हिन्दू जनता को अपने अनुकूल करने के अकबरशाह के प्रयत्न तभी पूरी तरह सफल हो सकते हैं जब कि वह हिन्दुओं द्वारा पूज्य और आदरणीय माने जानेवाले मेवाड़ के राणा-परिवार को न छेड़े। अकबर उसकी इस राय की कदर करता था। परन्तु भारत का चक्रवर्ती सम्राट् बनने की उसकी महत्वाकांक्षा मेवाड़ को स्वतंत्र रहने नहीं दे सकती थी और उसके सलाहकार भी उसे मेवाड़-विजय के लिए प्रेरित करते रहते थे। मेवाड़ का प्रदेश क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत छोटा था। साधन और शक्ति भी इतनी नहीं थी कि मुगल सल्तनत से लड़ सके। महाराणा साँगा के बाद मेवाड़ की आक्रमण करने की शक्ति समाप्त हो गई थी। उसके बाद के राणाओं ने दिल्ली अथवा गुजरात की सल्तनतों पर आक्रमण करने की बात सोची भी नहीं थी। कभी किसी के मन में कल्पना उठी भी तो उसने सक्रिय रूप धारण नहीं किया। मुगलाई के सूर्य का प्रकाश दिनोंदिन बढ़ता जाता था। उसकी विजय-परम्पराएँ सबको चौंधिया रही थीं। मुगल बादशाह की उदारता और मुगल साम्राज्य की सम्पन्नता ने सारे हिन्दू समाज को इस्लाम की ओर आकर्षित कर दिया था। ऐसी स्थिति में, अकेला मेवाड़, इच्छा रहते हुए भी, मुगल सल्तनत पर आक्रमण करने की स्थिति में नहीं था।

परन्तु साथ ही मेवाड़ अपने प्रदेश पर किसी बाहरी आक्रमण को भी सहने के लिए तैयार नहीं था। मुगल-शक्ति कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो, उसे किसी की भी स्वतंत्रता का अपहरण करने का अधिकार नहीं. मेवाड का यह दृढ़

विश्वास था। और इस विश्वास से प्रेरित सारा मेवाड़ किसी भी आक्रमणकारी के विरुद्ध इस तरह प्राणों की बाजी लगाकर लड़ता था कि शत्रु को विजयी होकर भी पराजित होना पड़ता था। मेवाड़ का सारा इतिहास आक्रमण का विरोध करनेवाली वीर प्रजा का इतिहास है। मुगलाई की तुलना में मेवाड़ की वही स्थिति थी जो चींटी की हाथी के आगे होती है। परन्तु हाथी चींटी पर या उसके भीटे पर हँसे ऐसी स्थिति कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। दिल्ली की सल्तनत ने कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं, परन्तु युगों तक याद रहे ऐसी लड़ाइयाँ तो मेवाड़ ने ही उसके साथ की थीं। अकबरशाह के शासन-काल में दिल्ली को जितना स्थायित्व, जितनी सम्पन्नता और जितनी विजय प्राप्त हुई वह सब अभूतपूर्व थी। इसी लिए अकबर के दिल में यह बात हमेशा खटकती रहती थी कि अपने हाथों बनाये हुए भारत के नक्शे में से छोटे-से मेवाड़ को उसे हर बार निकाल देना पड़े। मेवाड़ियों की वीरता से वह अपरिचित नहीं था। चित्तौड़ के घेरे के समय उसने मेवाड़ी जौहर को देखा और परखा था। मेवाड़ी वीरता के प्रतीक जयमल तथा फत्ता—पत्ता, प्रताप की मूर्तियों को राजधानी के दरबारगृह में प्रतिष्ठित कर अकबर ने मेवाड़ी वीरता को अपनी श्रद्धांजलि भी समर्पित की थी। वह मेवाड़ की मैत्री चाहता था। यदि वह मैत्री सन्धि और समझौते से उपलब्ध न हो सके तो ताकत के जोर से उसे प्राप्त करने की आकांक्षा उसमें थी। सब राजपूत राजा अकबर के आगे झुक जायें और अकेला मेवाड़ गर्व से माथा उठाये खड़ा रहे, यह उसे बर्दाश्त नहीं था। उसे अपनी शक्ति और सेना पर विश्वास था। वह मेवाड़ को झुकाने के लिए तत्पर हुआ। इस दिशा में उसका पहला कदम सन्धि और समझौता था और इसी लिए उसने महाराणा प्रताप को समझाने के लिए राजा मानसिंह को भेजा था। अकबर को विश्वास था कि मानसिंह प्रताप को समझा-बुझाकर मुगल छत्र-छाया के नीचे ले आयेगा। लेकिन इस विश्वास के साथ-ही-साथ उसके मन में आशंका भी थी।

जब से मानसिंह मेवाड़ की ओर गया था, अकबर के दरबार में और दरबार के बाहर भी, मेवाड़ और महाराणा प्रताप लोगों की चर्चा का मुख्य विषय बने हुए थे। जब पृथ्वीसिंह ने उदयसिंह की स्वतंत्रता का प्रसंग छेड़कर अबुलफजल के इतिहास का उल्लेख किया तो यह बात अबुलफजल को अच्छी नहीं लगी। उसने

कहा—जी हाँ, 'अकबरनामा' में मैंने जरूर इस बात का तजकिरा किया है। और यह भी लिखा है कि उदयसिंह किस तरह चित्तौड़ छोड़कर भाग गया। अकबरशाह की फैयाजदिली से उदयसिंह को महरूम कैसे रखा जा सकता है? यह कैसे भुलाया जा सकता है कि अकबरशाह ने मेहरबानी और फैयाजदिली से उदयसिंह को भाग जाने दिया!

'इसी लिए तो मैं कहना चाहता हूँ कि अकबरशाह की महान उदारता और कृपा उदयसिंह के पुत्र को भी मिलनी चाहिए। मेवाड़ के महाराणा को मित्र बनाइए, मनसबदार नहीं।' पृथ्वीसिंह ने कहा।

'लेकिन राजा साहब, मावदौलत तो मनसबदारों को भी दोस्त ही मानते हैं।' अकबर ने पृथ्वीराज की बात का जवाब दिया।

'श्रीमान का कथन यथार्थ है। परन्तु मेवाड़ मैत्री स्वीकार कर सकता है, मनसबदारी तो कदापि नहीं।'

'मानसिंहजी की कोशिशों में पृथ्वीसिंह साहब का अधिक यकीन नहीं मालूम होता।'

'विश्वास ही नहीं, मुझे तो श्रद्धा भी है, परन्तु मेवाड़ की टेक और हठ का विचार करता हूँ तो वह श्रद्धा डिगने लगती है। वैसे पता तो मानसिंहजी के पधारने पर ही चल सकता है।'

'राजा मानसिंहजी साहब पधार गये हैं गरीबपरवर! दरबार में तशरीफ लाया हो चाहते हैं।' दरबार के व्यवस्थापक खानखाना ने कहा।

'अच्छा! उन्हें जल्दी हाजिर किया जाये। मावदौलत बालाराणा के सन्देश को सुनने के लिए बेचैन है।'

अकबर राणा प्रताप को बालाराणा कहकर पुकारता था। इसका कारण यह था कि प्रताप अकबर से उम्र में छोटे थे। अकबर उनके पिता उदयसिंह से लड़ा था। वह प्रेम और बड़प्पन के कारण प्रताप के बचपन के नाम बालाराणा का ही सतत उपयोग करता था। प्रताप की वीरता के सम्बन्ध में अकबर ने कई किस्से भी सुन रखे थे। वह मन-ही-मन प्रताप को चाहता था और उसकी हार्दिक इच्छा भी थी कि उस वीर राणा को अपना दोस्त बनाये।

मानसिंह को हाजिर करने की बात अभी अकबर के मुंह से निकली ही थी

कि राजा मानसिंह दरबार में आ पहुँचे। मानसिंह का स्थान अकबर के सभी दरबारियों में श्रेष्ठ और ऊँचा था। वह स्वयं भी अपने महत्व को जानता था। अपने विशिष्ट पद और प्रतिष्ठा के ज्ञान-सहित उसने अकबरशाह को प्रणाम किया और अपने निर्धारित स्थान पर बैठा गया।

'पधारिए-पधारिए, राजा साहब! माबदौलत ने अभी आपको याद फरमाया था। कहिए खैरियत तो है?' अकबर ने पूछा। मानसिंह की वीरता, स्वामि-भक्ति और प्रबन्धकुशलता के लिए अकबर के मन में बड़ी अच्छी और ऊँची राय थी।

'सब अल्लाह का फजल और हुजूर की दुआ है।' मानसिंह ने कहा।

'बताइए बालाराणा की क्या खबर है?'

'वह भी खैरियत से हैं।'

'उन्होंने क्या जवाब अता किया?'

'दोस्ती नामंजूर....और....'

'सुल्तान-ए-हिन्द की दोस्ती को नामंजूर करने की हिम्मत आज तो अकेले उसी में है।' पृथ्वीराज आनन्दित होकर कह उठा।

'और क्या? आप कहते-कहते रुक क्यों गये राजा साहब?'

'बाकी बात दरबार बर्खास्त होने के बाद ही अर्ज कर सकूँगा जहाँपनाह?' मानसिंह ने कहा।

'नहीं-नहीं, आप अभी ही फरमाइए। कोई हर्ज नहीं। यहाँ सभी अपने हैं, कोई गैर नहीं। सभी माबदौलत के दिली दोस्त हैं। बालाराणा ने जो कहा हो आप कहिए ताकि सब मिलकर उस पर गौर कर सकें।'

'प्रताप ने दोस्ती को नामंजूर ही नहीं किया, मुगलाई की तौहीन भी की।'

'कसम खुदा की, सल्तनत की तौहीन को माबदौलत कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते।' अकबरशाह ने तड़पकर कहा। उदार शासक होते हुए भी अकबर की उदारता मान-अपमान से परे न थी। उसके नेत्रों में सहज कठोरता झलकने लगी।

'खुदावन्द, जरा इस पर भी गौर फरमाया जाये कि तौहीन की यानी क्या किया?'

इस पर फैजी ने कहा—क्या राजा मानसिंहजी साहब का फरमाना ही काफी नहीं ?

'फरमाइए राजा साहब, बालाराणा ने सल्तनत की क्या तौहीन की ?' स्वयं अकबर ने बेताब होकर पूछा।

'मेरी यानी सल्तनते हिन्द के नुमाइन्दे की तौहीन दिल्ली के तख्त की ही तौहीन है, ऐसा मेरा खयाल है।' मानसिंह ने जलकर कहा।

'दुरुस्त, बिल्कुल दुरुस्त ! हुजूर की मेहमानवाजी में कोई खामी रह गई थी क्या ?' बीरबल ने पूछा।

'जी नहीं। मेहमानवाजी तो शाही ढंग से की गई, लेकिन महाराणा ने मेरे साथ एक दस्तरखान पर बैठकर खाना मंजूर नहीं किया।' कहते-कहते मानसिंह की आँखों में खून उतर आया।

'माबदौलत जानना चाहते हैं कि क्यों ? किस लिए ?' बादशाह ने पूछा।

'कारण भी क्या जहाँपनाह से छिपा है ? सारा दरबार जान सकता है कि प्रताप ने ऐसा क्यों किया ! हुजूर के साथ हमारा रिश्ता....' मानसिंह अपनी बात पूरी न कर सका।

अकबर का तो यही विश्वास था कि अपने धर्म का हो या पराए धर्म का किसी भी ऊँचे-से-ऊँचे परिवार के साथ रिश्ता कायम करने के वह सर्वथा योग्य है। और इस बात को अकेला बादशाह ही क्यों और भी अनेक लोग मानते थे। सुनते ही अकबर के नेत्र कठोर हो गये। अकबर के निजी मित्र उसकी आँखों को ही देखकर उसके मन के भाव समझ जाते थे।

पृथ्वीराज ने कहा—राणा प्रताप इतने अविवेकी और अशिष्ट तो नहीं कि यह बात स्वयं अपने मुंह से आपके सामने कहें !'

'बालाराणा ने दस्तरखान पर साथ न बैठने का कोई कारण, कोई मजबूरी तो जरूर ही बताई होगी।' बीरबल ने कहा।

'तबियत खराब होने का बहाना किया तो था, लेकिन यह मानने में नहीं आता। जब मैंने अपनी ओर से कारण पुछवाया तो उसके जवाब में राणा ने यही कहलाया कि वह भ्रष्ट राजपूत के साथ एक ही पंगत में नहीं बैठ सकते।' मानसिंह ने कहा।

'लाहौल ! जनाब राजा साहब की तौहीन खुद मावदौलत की तौहीन है। बालाराणा को अब तो इस दरबार में हाजिर होना ही पड़ेगा।' अकबरशाह की यह राणा को जीतने और बन्दी बनाकर दरबार मे हाजिर करने की आज्ञा थी।

बादशाह की एक बार आज्ञा हो जाने के बाद उसका विरोध करने का शायद ही कोई साहस करता था। फिर भी सर्वत्र विजय की वरमालाएँ धारण करने-वाले अकबर को बीरबल ने याद दिलाया कि अभी काशगर, समरकन्द और बुखारा को जीतना बाकी है। चंगेज और तैमूर-जैसे बुजुर्गों की सरजमीन बादशाह सलामत के कब्जे में आनी चाहिए।

'और महाराणा प्रताप तो घिर ही चुके हैं। उन्हें तो जब चाहेंगे ठिकाने लगा देंगे। बित्ता-भर के मेवाड़ की बिसात ही कितनी ?' एक हिन्दू दरबारी ने कहा।

'राजा टोडरमल साहब चुप क्यों हैं ?' अकबर ने राजा टोडरमल को उद्देश्य कर कहा।

'बगैर पूछे राजा साहब ने आज तक कभी कोई सलाह दी भी है ?' फैजी ने हँसकर कहा। शान्त स्वभाव के, गम्भीर और एक-एक शब्द तौल-तौलकर बोलनेवाले राजा टोडरमल की इस विशेषता से सभी परिचित थे।

'बन्दःनवाज, मैं तो इस सारे मसले पर अभी गौर ही कर रहा हूँ।' टोडर-मल ने कहा।

'तो अब हुजूर यह भी फरमा दें कि गौर करने के बाद नतीजा क्या निकला ?' अबुलफजल ने कहा।

'राजा साहब का फैसला मालूम किये बिना मावदौलत एक कदम भी नहीं उठाते। फरमाइए टोडरमल साहब, राजा मानसिंहजी की जो तौहीन हुई है उसके बारे में क्या करना वाजिब है ?' अकबर ने दो टूक शब्दों में टोडरमल से उनकी राय जाननी चाही।

'मानसिंह साहब की तकरीर से यह तो मानना ही होगा कि कुछ ऐसा जरूर हुआ है जो उन्हें काबीले तौहीन लगा। अब अगर फैसला ही करना हो तो हमें प्रतापसिंह की तकरीर भी जरूर सुनना और उस पर गौर करना चाहिए।' टोडरमल ने एक न्यायाधीश की तटस्थता से कहा।

'वल्लाह ! वल्लाह ! लेकिन यह कैसे मुमकिन है ? जंग में प्रताप को शिकस्त देकर जब तक यहाँ नहीं ले आया जाता यह क्योंकर मुमकिन हो सकता है ?' फैजी ने पूछा।

'इसी लिए तो मैंने अर्ज किया कि जनाब मानसिंह साहब की तकरीर को तस्लीम करके चलना होगा। मेरी मुश्किल यह है कि मेरी राय मेरे दिल की तरह दो हिस्सों में बँट गई है। हिन्दू होने के नाते मेरा दिल यह चाहता है कि हिन्दुओं की आखिरी आजाद रियासत मेवाड़ को न छेड़ा जाये।' टोडरमल ने कहा, जिसे सुनकर बीरबल तथा पृथ्वीराज की आँखों में आनन्द उभर आया।

'और हुजूर के दिल के दूसरे गोशे की राय क्या है ?' फैजी ने पूछा।

'दिल का दूसरा गोशा तो बादशाह सलामत का खादिम है और एक अदना खादिम के नाते....'

'नहीं-नहीं, टोडरमल साहब, यह जुल्म न कीजिए। इस दरबार में कोई भी माबदौलत का खादिम नहीं। सब दोस्त और अजीज ह। माबदौलत कभी भी खादिमों का नहीं, दोस्तों और खैरख्वाहों का ही दरबार करते हैं।' अकबर ने सच ही कहा था। वह अपने मंत्रियों और दरबारियों को अपना मित्र और शुभ-चिन्तक ही समझता था।

'मरहबा ! मरहबा !' बादशाह के इस कथन पर सभी ने समवेत स्वर में कहा।

'अल्लाहताला हुजूर की उम्र दराज करे। कितनी ऊँची बात फरमाई है जहाँ-पनाह ने ! यही तो वजह है आज मुगलाई के बढ़ते हुए रुतबे और शान की। लेकिन बीरबल साहब ने ठीक ही फरमाया है कि अभी हमें काश्मीर के उस पार का इलाका फतह करना है। यह काम तभी बखूबी हो सकता है जब इधर बालाराणा को हम अपना दोस्त बना लें। जब तक उन्हें दोस्त नहीं बनायेंगे दिल में धड़का लगा रहेगा। और हिन्द की सरजमीन के बाहर फौजी कार्रवाइयाँ उतनी कारगर नहीं हो सकेंगी।' टोडरमल के इस कथन का आशय एकदम स्पष्ट था—मेवाड़ को स्वतंत्र रहने देकर, मेवाड़ के राणा को दुश्मन बनाये रखकर दिल्ली की सल्तनत हिन्दुस्तान के बाहर के मुल्कों पर हमला करके कभी कामयाब नहीं हो सकती।

'लेकिन मेवाड़ ने तो दोस्ती के बढ़े हुए हाथ को ठुकरा दिया है।' मानसिंह ने कहा।

'अब तो सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं रहा कि बालाराणा को झुकाया जाये।' अबुलफजल ने कहा।

'लेकिन प्रश्न यह है कि क्या बालाराणा झुकेंगे?' पृथ्वीराज ने पूछा।

'हकीकत में यही सवाल दरपेश है। हमने चित्तौड़ फतह किया, लेकिन मेवाड़ फिर भी आजाद रहा। मुमकिन है आज मेवाड़ को फतह कर लें, मगर राणाजी को झुका न सके तो क्या मेवाड़ फतह किया गया समझा जायेगा? क्या वह फिर भी आजाद नहीं रहेगा?' टोडरमल ने पृथ्वीराज की बात का समर्थन किया।

अन्त में दरबारियों का बहुमत यही प्रतीत हुआ कि अब दिल्ली का तख्त मेवाड़ की स्वतंत्रता को सह नहीं सकता। जिस मेवाड़ ने मानसिंह और मानसिंह के द्वारा सारी मुगलाई का अपमान किया है उसके मान को मर्दित करना ही होगा। अन्त में यह प्रस्ताव किया गया कि मेवाड़ की स्वतंत्रता को पददलित करने के लिए एक विशाल सेना भेजी जाये और मानसिंह को ही उसका सेनापति बनाकर मेवाड़-विजय का सौभाग्य प्रदान किया जाये। चुने हुए हिन्दू और मुस्लिम सेनानायकों की वहीं पसन्दगी की गई। उसी दरबार में मेवाड़ के विरुद्ध दिल्ली के बादशाह के युद्ध की नौबत बज उठी। सबको विश्वास हो गया कि अब यों चुटकियाँ बजाते मेवाड़ कुचल दिया जायेगा और मेवाड़ के महाराणा का मस्तक जीवित या मृत अवस्था में मुगल शहन्शाह के कदमों पर लाकर रख दिया जायेगा।

जब दरबार बर्खास्त हो गया तो अकेले पृथ्वीराज ने राजा मानसिंह को रोककर कहा—राजा साहब, सौगन्ध खाने के लिए एक मेवाड़ को तो जीवित रहने देते।

'क्यों? प्रताप के खाँडे से बहुत डर लगता है?' मानसिंह ने चुटकी भरी।

'डर यहाँ किसे लगता है! आप तो मुझे जानते ही हैं। हाँ, यह डर अवश्य है कि कहीं दिल्ली के तख्त को छोटे-से मेवाड़ के आगे मुंह की न खानी पड़े, और जगहँसाई न हो।'

'प्रताप के प्रति आपकी भक्ति की बत को कौन नहीं जानता राजा साहब! यह आप नहीं, प्रताप के प्रति आपकी भक्ति ही बोल रही है।'

'अच्छी बात है। जब आप प्रताप को पकड़कर पधारेंगे तो मैं आपके चरणों में सिर नवाकर आरती उतारूँगा।' पृथ्वीराज ने कटकर जवाब दिया और दोनो क्षत्रिय वीर नेत्र आरक्त किये एक-दूसरे से विदा हुए।

: : ५ : :

'गौतमी, किसका चित्र बना रही हो ?'

कुम्भलगढ़ की प्राचीर के साथ संयुक्त राजप्रासाद के एक छोटे-से कक्ष में एक युवती रंग की प्यालियाँ सामने रखे दो दीपिकाओं के प्रकाश में चित्र-फलक पर तूलिका से कुछ चित्रित कर रही थी। चित्रांकन में वह तल्लीन हो गई थी। इसलिए जब यह प्रश्न उसके कानों में पड़ा और साथ ही उसने प्रश्नकर्त्ता को वहाँ प्रवेश करते हुए देखा तो सहसा चौंक पड़ी। मध्य रात्रि में रनिवास के निभृत कक्ष में पुरुष का प्रवेश कहाँ से !

'देवराज, तुम ? यहाँ ! इस रात में ?' गौतमी ने चित्र-फलक पर हाथ की तूलिका को चलाते हुए पूछा।

कुम्भलगढ़ के दुर्गपाल देवराज के लिए दुर्ग का ऐसा कौन-सा भाग है जहाँ वह जा नहीं सकता ?' [illegible] का दुर्गपाल देवराज था। वह अत्यन्त सुन्दर और वीर युवक था। प्रताप उसे बहुत चाहते थे। उन्होंने उसकी कई परीक्षाएँ ली थीं और सभी में वह उत्तीर्ण हुआ था। जयमल और फत्ता के बाद प्रताप को एक शालिवाहन और दूसरा देवराज बहुत प्रिय थे। शालिवाहन ग्वालियर के पद-भ्रष्ट राजा का पुत्र था और देवराज अकबर द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण किये जाने के समय सबसे पहले बलि होनेवाले वीर क्षत्रिय का पुत्र था। जब उदयसिंह को चित्तौड़ छोड़कर भागना पड़ा तो वह इन दोनो किशोरों को अपने साथ लेता गया और प्रताप के ही साथ इनका लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा हुई। जब प्रताप सिंहासनारूढ़ हुए तो कुम्भलगढ़ के दुर्ग की रक्षा का भार देवराज को और मेवाड़ की सीमा की रक्षा और चौकसी का काम शालिवाहन को सौंपा गया। दुर्गपाल होने के कारण देवराज किसी भी समय दुर्ग के किसी भी हिस्से में आ-जा सकता था।

'हाँ, यह तो मैं जानती हूँ। लेकिन तुम इस समय यहाँ क्यों आये ? इस

कक्ष में तो गढ़ की रक्षा-व्यवस्था का कोई व्यूह रचा नहीं जा रहा।' गौतमी ने कहा।

'यही तो तुम भूलती हो गौतमी ! यहाँ आने पर ही मैं दुर्ग-रक्षा के उत्तर-दायित्व को अधिक संलग्नता से निभा पाता हूँ। जिस दिन तुम्हें देख नहीं पाता वह सारा दिन व्यर्थ हो जाता है, शुभ शकुन ही नहीं होता।' देवराज ने उत्तर दिया।

'शुभ शकुन के लिए तो तुम्हें महारानीजी के दर्शन करना चाहिए। युद्धकाल में स्त्रियों को देखना छोड़ दो। क्षत्रिय का शकुन उसकी तलवार है।'

'वह तो सतत मेरे पास रहती है—मेरी बगल में। परन्तु तुम ऐसा क्या चित्रित कर रही हो कि मेरी ओर देखने का भी अवकाश नहीं ?'

'तुम्हारी ओर तो देखनेवाली कई युवतियाँ हैं। तुम ठहरे मेवाड़ के कामदेव।'

'पहले यह तो बताओ कि किसका चित्र आरम्भ कर रही हो ? मेरी प्रशंसा बाद में करना।'

'चित्र आरम्भ नहीं कर रही हूँ, समाप्त करने जा रही हूँ। समाप्त हो जाये तो तुमसे बात करूँ।'

'लेकिन यह तो बताओ कि किसका चित्र बना रही हो ?'

'भगवान कृष्ण का—वृन्दावनविहारी कृष्ण का।'

'मीरा के मार्ग का अनुसरण करना चाहती हो क्या ? और झूठ क्यों बोल रही हो ?' देवराज ने चित्र-फलक के समीप आकर चित्र को ध्यान से देखा और भौंहें चढ़ाकर कहा, 'कहाँ हैं कृष्ण इसमें ? क्या यही कृष्ण का चित्र है ?'

'देख नहीं रहे हो, कृष्ण ही तो हैं। यह मोरपंख, पीला पीताम्बर, वैजयन्ती माला—कितना सुन्दर है सब-कुछ और यह उनकी त्रिभंगी देह। ओठों से लगी इस मुरली को मैं जरा अन्तिम रूप दे दूं. . . .पर तुम इतने क्रोधित क्यों लग रहे हो ?' चित्र की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर गौतमी ने देवराज की ओर देखा तो चौंक पड़ी।

'मैं जानता नहीं था गौतमी, कि तुम्हें भी झूठ बोलने की बान है।' देवराज ने अपनी चढ़ी हुई भौंहों को नीचे उतारते हुए कहा।

'देखो, मुझे झूठी कहा तो मेरी भौंहें भी चढ़ जायेंगी, हाँ !' गौतमी ने हँसते-हँसते कहा।

'तो तुम क्यों कह रही हो कि यह कृष्ण का चित्र है ? जैसे मैं जानता ही नहीं कि यह चित्र किसका है ?'

'मैंने तुम्हें कृष्ण का मुकुट दिखाया, पीताम्बर दिखाया, माला और मुरली भी दिखा दी। मुरली को अन्तिम रूप दे दूं और राधा को आलेखित कर लूं।'

'अब राधा के स्थान पर तुम अपने को ही चित्रित कर लो।'

'ओह! कितना सच कहा तुमने। कौन नारी कृष्ण की राधा बनना न चाहेगी ?'

'परन्तु तुम तो कृष्ण की राधा बनती नहीं। तुम्हें तो भटकते हुए भिखारी की राधा बनना पसन्द है।'

'तुमने मेवाड़ में ऐसे किस भटकते हुए भिखारी को देखा जो मेरी दृष्टि में कृष्ण बन सके ?'

'मेवाड़ तो सदियों से ऐसे भिखारियों को आश्रय देता और मुंह लगाता आया है।'

'उसका नाम तो बताओ ?'

'उसी का तो तुम चित्र बना रही हो। क्या तुम स्वयं नाम नहीं जानती जो मैं बताऊँ !'

'मैंने तो नाम बता दिया। यह चित्र मेरे कृष्ण का है। यदि तुम्हें कृष्ण दिखाई नहीं देते तो जो दिखाई देता है उसी का नाम बता दो। यह आवश्यक नहीं कि मीराँ के कृष्ण सभी को कृष्ण दीखें; या नाम बताते तुम्हें डर तो नहीं लग रहा ?'

'डर ? तुम क्या कह रही हो गौतमी ? डर और देवराज को ? मैं डर सकता हूँ ऐसा अपमानजनक विचार एक तुम्हें छोड़कर आज तक तो किसी के मस्तिष्क में उठा नहीं, शालिवाहन के मस्तिष्क में भी नहीं।'

'तुम शालिवाहन को बीच में क्यों घसीट लाये ?'

'और सुनो, मैं उसी के पिता को भटकता हुआ भिखारी कहता हूँ। ग्वालियर का अपना राज्य छोड़कर वह यहाँ भाग जो आया है।'

'तो यह सब तुम मुझको क्यों सुना रहे हो ? सुनाओ जाकर उन्हीं को।'

'समय आने पर उन्हें भी सुनाऊँगा। अभी तो मैं तुम्हें तुम्हारी मूर्खता से रोकना चाहता हूँ।'

'मूर्खता कैसी ?'

'कृष्ण के नाम पर शालिवाहन को चित्रित कर रही हो, यह मूर्खता नहीं तो और क्या है ?'

'ओह, अब समझी। मेरे कृष्ण में तुम्हें शालिवाहन दिखाई दे रहा है और यह भी समझ गई कि शालिवाहन को तुम अपना विरोधी समझते हो।' देवराज के क्रोध और व्यंग्य का गौतमी पर किंचिन्मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा था।

'मैं तुम्हारे साथ गम्भीर चर्चा करने आया हूँ।'

'यह तुमने बहुत अच्छा किया। युद्ध समीप आता जा रहा है। ऐसे समय सभी को गम्भीरता से ही बातें करनी चाहिए।'

'तुम यह तो जानती ही होगी कि मानसिंह कछवाह मुगलों की विशाल सेना लेकर हम पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा चला आ रहा है!'

'इस बात को मैं नहीं जानूंगी तो और कौन जानेगा ? रानीजी क्या मुझे यों ही अपनी बेटी मानती हैं ? और फिर मैं तो एक सैनिक के रूप में युद्धक्षेत्र में भी जा रही हूँ।'

'तुम युद्ध में जा रही हो ? किसकी अनुमति से ?'

'जो मरने को तैयार हो उसे किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता ही क्या है ? जिद तो महारानीजी ने भी युद्धक्षेत्र में चलने की की थी। लेकिन बाद में मान गईं। अब वह नहीं जा रहीं हैं, यहीं रहेंगी। परन्तु मैं तो अवश्य जाऊँगी। मेरी जिद अभी कायम है।'

'तो कहूँ राणाजी से ? या रानीजी से ?'

'तुम चाहे कहो या न कहो.... परन्तु तुम तो नहीं चल रहे हो न ?'

'मैं भला कैसे चल सकता हूँ ? इस कुम्भलगढ़ की रक्षा का सारा भार मुझी पर है। महारानीजी का भी आदेश है कि मैं यहीं रहूँ और तुम सबकी रक्षा करूँ।'

'हम राजपूतनियों की रक्षा तुम क्या करोगे ? अग्निदेव ही हमारा रक्षक है।'

उसी समय नीचे की एक तलहटी में उल्लू की घू-घू सुनाई दी। गौतमी ने हँसकर कहा—सुनो देवराज, यह उल्लू दो-तीन दिन से अपनी अपशकुन-भरी वाणी में मुझसे कुम्भलगढ़ छोड़कर चले जाने को कह रहा है।

'जिसमें युद्ध के बहाने तुम और शालिवाहन यहाँ से भागकर जा सको!'

'भागकर जायें हमारे दुश्मन; हम क्यों भागें? यदि हम विवाह ही करना चाहें तो हमें कौन रोक सकता है?'

'रोकनेवाले को तो तुम भी जानती ही हो।'

'हाँ, जानती तो हूँ। रोकनेवाला स्वयं शालिवाहन ही है।'

'तो अपमानित होकर भी शालिवाहन का चित्र क्यों बनाया करती हो?'

'दुत्, शालिवाहन ने कभी मेरा अपमान नहीं किया।'

'कैसी बात करती हो गौतमी? विवाह करने की अस्वीकृति ही क्या राजपूतनी का सबसे बड़ा अपमान नहीं? गौतमी, अब भी समझ जाओ। मैं आज तुम्हारे समक्ष आत्म-समर्पण करने के ही लिए आया हूँ। शालिवाहन तुम्हें ठुकरा रहा है। मैं तुम्हें स्वीकार करने के लिए अपना हाथ बढ़ाता हूँ।'

'खबरदार, जो हाथ बढ़ाया। मैं सदैव कटार अपनी कमर में खोंसे रहती हूँ। और शालिवाहन क्यों अस्वीकार करता है, इसे तुम बेचारे क्या जानो!'

'गँवार है वह। प्रेम के बारे में वह जानता ही क्या है?'

'तुम्हारे गालियाँ देने से शालिवाहन का महत्व घटने का नहीं। वह मुझे अपमानित करने के लिए नहीं, गौरवान्वित करने के ही लिए विवाह करने से इनकार करता है।'

'यह गौरव तो मेरी समझ में आता नहीं।'

'ग्वालियर का राज्य पुनः प्राप्त कर लेगा उसी दिन मुझसे विवाह करेगा।'

'उससे पहले करने में बाधा ही क्या है?'

'उससे पहले वह अपने को विवाह करने का अधिकारी जो नहीं मानता।'

'समझ में आ गया उसका षड्यन्त्र।' देवराज ने आनन्द-विभोर होकर कहा।

'षड्यन्त्र? इस किले की अर्गलाएँ [illegible]-बन्द करते तुम्हें षड्यन्त्र शब्द से बहुत प्रेम हो गया है, क्यों?' गौतमी ने कुपित होकर कहा।

परन्तु देवराज ने मानो किसी गहन रहस्य का उद्घाटन कर लिया हो इस भाँति अपना एक हाथ दूसरे हाथ की हथेली पर फटकारकर कहा—सारा खेल मेरी समझ में आ गया। तो यह चाल है उसकी! इस तरह वह तेरे साथ अपना विवाह करने के मनसूबे बाँध रहा है।

'कैसी चाल और कैसे मनसूबे ? मैं तो आजीवन कुमारी रहने को तैयार हूँ।'

'अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं रही। इधर मेवाड़ में मुगल गुप्तचरों का आवागमन बहुत बढ़ गया है। ईरानी कालीनों के उस सौदागर के आने की बात तो तुम्हें भी मालूम ही होगी। नाम आया बेचारे अमरसिंह का, परन्तु वास्तव में उसे प्रविष्ट होने दिया था सीमान्त के प्रहरी शालिवाहन ने। यही क्यों, राजा मानसिंह ने शालिवाहन और उसके पिता को ग्वालियर लौटाने का जो अभिवचन दिया है, उसे कौन नहीं जानता ?'

'लेकिन इसे भी सभी जानते हैं कि पिता-पुत्र दोनो ने मानसिंह के प्रलोभन को स्पष्ट शब्दों में ठुकरा दिया है।'

'जिसे पहले ठुकराया उसी को अब गले लगाने जा रहे हैं। इस युद्ध में सब-कुछ मालूम हो जायेगा।' कहते-कहते देवराज की आँखें चमकने लगीं।

'क्या तुम यह कहना चाहते हो कि वृद्ध तोमर राजा और शालिवाहन महाराणा के साथ विश्वासघात करके मुगल सेना से जा मिलेंगे ?'

'हाँ, मैं ऐसा अवश्य मानता हूँ। और मुझे इसके संकेत भी दिख रहे हैं।'

'तो क्या तुम्हारा यह कर्त्तव्य नहीं कि महाराणा को सचेत करो ?'

'राणाजी सब-कुछ जानते हैं। और यदि नहीं भी जानते तो इस युद्ध में उन्हें सब-कुछ मालूम हो जायेगा।'

'तो तुम भी मेरा यह निश्चय सुन लो कि मैं इस युद्ध में अवश्य सम्मिलित होऊँगी।

'यह तो तुमने कहा ही है।'

'लेकिन जो अभी तक मेरा विचार था वह अब निश्चय और प्रतिज्ञा में परिवर्तित हो गया है।'

'होना ही चाहिए।' देवराज ने एक विकराल हँसी हँसकर कहा।

और गौतमी ने पीड़ा के साथ अनुभव किया कि किसी का सुन्दर मुख कितना भद्दा और असुन्दर भी हो सकता है। क्या उसके हृदय में कुरूपता की कालिमा लहरा रही थी, जिसने उस सुन्दर मुख को इतना असुन्दर और विकृत कर दिया था !

'तुम क्या कहना चाहते हो ?' गौतमी तूलिका पटककर उठ खड़ी हुई।

'तुम इतनी बच्ची तो नहीं हो कि मेरे कथन के अभिप्राय को समझ न सको।'

'नहीं, तुम्हें अपना अभिप्राय बताना ही होगा।'

'जैसे तुम जानती ही नहीं। यह चाल है तुम्हारी और शालिवाहन की रण-भूमि से सीधे ग्वालियर पहुँच जाने की।'

'देवराज, मैं मेवाड़ की कन्या हूँ। विवाह के लिए मुझे ग्वालियर जाने की आवश्यकता नहीं। मेरा विवाह तो माता मेवाड़-भूमि की गोद में ही होगा।'

'हाँ, यह भी सम्भव है। हो सकता है कि मुगल सेना अपना विजयोत्सव तुम्हारे विवाह-समारम्भ के द्वारा ही मनाये।'

'कितने शोक और दुर्भाग्य की बात है कि मेवाड़ का एक सुन्दर राजपूत युवक इस प्रकार कीचड़ में सनता जा रहा है?'

'तो तुम्हीं बताओ कि लड़ाई के मैदान में जाकर क्या करोगी?'

'क्या करूँगी, बताऊँ? जब देखूंगी कि शालिवाहन विश्वासघात कर रहा है तो अपनी तलवार से उसके दो टुकड़े कर डालूंगी।' कहते-कहते गौतमी के नेत्र अद्भुत आलोक से दीप्त हो उठे। एक क्षण के लिए तो देवराज् निश्चय नहीं कर पाया कि वह आलोक गौनमी के नेत्रों का था या समीप रखी दो दीपिकाओं का। उसकी आँखें चौंधिया गईं और उसने अपना मुंह फेर लिया।

'और साथ ही यह भी सुन लो कि यदि तुम्हारी बात असत्य सिद्ध हुई तो उसी तलवार से तुम्हारे भी दो टुकड़े कर दूंगी।'

मारे भय के देवराज को पसीना छूट आया।

'चले जाओ यहाँ से....मुझे अपना चित्र पूरा करने दो।' यह कहकर गौतमी ने तूलिका उठा ली और चित्रांकन में संलग्न हो गई। देवराज वहाँ खड़ा था, लेकिन गौतमी तो जैसे उसके अस्तित्व को ही भूल गई थी।

देवराज थोड़ी देर तक खड़ा रहा और फिर वहाँ से दुतकारे हुए कुत्ते की भाँति चल दिया। गौतमी को अपनी ओर आकर्षित करने का भला-बुरा सभी तरह का प्रयास उसने कर देखा था। अब भी उसे अपनी सफलता की आशा थी। जाते हुए भी वह यही सोचता जा रहा था—कितनी सुन्दर है यह गौतमी और कितना अद्भुत है इसका सौन्दर्य!

जब देवराज चला गया तो गौतमी ने मन-ही-मन कहा—रूप पर मँडराने-

वाले पतिंगे ! बल्कि पतिंगे से भी निकृष्ट ! रूप पर मर नहीं सकते, और जो रूप पर नहीं मर सकता वह मेवाड़ के लिए, देश और धर्म के लिए क्या मरेगा ?

:: ६ ::

सारे मेवाड़ में सैनिक हलचल आरम्भ हो गई। सारे मेवाड़ की जवानी ने मेवाड़ी सेना को उल्लसित कर दिया। [illegible] का पहला मोरचा। मेवाड़ में एक भी युवक एसा नहीं बचा जो सेना में सम्मिलित न हुआ हो।

कुम्भलमेर दुर्ग के कोट-कंगूरे वीरों की युद्ध-घोषणा से गूंजने लगे। समुद्र की विशाल लहर की भाँति बढ़ी आती मुगल सेना को रोकने और उसे मेवाड़ से बाहर ढकेलने के लिए सैनिक तैयारियाँ अपना अन्तिम रूप ग्रहण कर चुकी थीं। जैसे-जैसे युद्ध का दिन निकट आता गया, राणा प्रताप के चेहरे पर वीर-श्री सोलह कलाओं के साथ खिलती गई। रानी पद्मावती बार-बार वीर-श्री से मंडित उस मुख को देखतीं और देखकर अघातीं नहीं थीं। जितना ही वह देखतीं उनका विश्वास दृढ़ होता जाता था कि राणा प्रताप मुगल सेना को खदेड़ देंगे।

एक बार जब वह राणाजी के चेहरे की ओर देख रही थीं तो प्रताप ने उनसे कहा—अब तो युद्ध में मेरे साथ चलने का तुम्हारा हठ नहीं रहा न ?

'यह हठ तो जीवन-भर बना रहेगा नाथ !'

रानी पद्मावती अपने महाराणा के साथ युद्धक्षेत्र में जाना चाहती थीं और उनका यह आग्रह जग-जाहिर हो चुका था। अपनी देह अग्नि को अर्पित करने की अपेक्षा युद्ध को अर्पित करना इस वीर क्षत्राणी को अधिक उपयुक्त जान पड़ा था। राणा प्रताप और अन्य सामन्तों ने बड़ी कठिनाई से समझा-बुझाकर उनके इस हठ का निवारण किया था। कहने को वह मान गई थीं, परन्तु उनका मन नहीं मान रहा था। अन्त में विवश होकर प्रताप को उन्हें यह वचन देना पड़ा कि मुगलों के साथ इस प्रथम भिड़न्त का जो भी परिणाम हो, बाद की प्रत्येक विजय और पराजय में वह महारानी को सतत अपने साथ रखेंगे। राणा के इस प्रकार वचन देने के पश्चात् ही महारानी ने महाराणा को शस्त्रास्त्रों से सजाना आरम्भ किया था। आज सवेरे महाराणा का अपनी सेना सहित कुम्भलमेर का दुर्ग छोड़कर रण-भूमि की ओर प्रयाण करने का मंगल मुहूर्त था।

'रानीजी, जिस दिन विश्व में पुरुष का पौरुष मात खा जाये उसी दिन नारियों को रणभूमि देखना चाहिए।' महाराणा प्रताप ने अपनी महारानी से कहा।

'नहीं नाथ, आपकी यह बात सच नहीं है। नारी के साथ के बिना पुरुष एक भी खेल नहीं खेल सकता—चाहे वह खेल रनिवास का हो या रणभूमि का।' रानी ने कहा।

'परन्तु जानती हो इस बार रणभूमि कहाँ तक फैली हुई है? कुम्भलमेर की सिहपौर से लेकर वह मेवाड़ की समस्त सीमा तक फैलती चली गई है।'

'इसी लिए तो नाथ, मैं यहाँ रुक गई हूँ। एक साथ हिरावल और पिछाये को सँभालती रहूँगी। परन्तु किस क्षण मोरचे पर आ पहुंचूंगी यह कह नहीं सकती।'

वीर-शिरोमणि राणा प्रताप अपनी वीरांगना पत्नी की ओर देखते और सोचते रहे—पुरुष की शक्ति का स्रोत क्या है—तलवार या नारी? पति को अपने सामने इस प्रकार टक लगाये देख रानी पद्मावती लज्जित हो गई और उन्होंने प्रताप की आँखों पर अपना हाथ रख दिया। प्रताप ने बड़ी ही कोमलता से अपना हाथ रानी के उस हाथ पर रख दिया और उनकी सुकोमल उँगलियो को सहलाने लगे। फिर रानी के हाथ को अपनी आँखों पर से हटाकर उन्होंने उसे अपनी छाती से लगा लिया।

रानी ने मानपूर्वक कहा—अमर की जिद आपने मान ली पर मेरी जिद को नहीं माना।

'अरे, अमर तैयार हुआ या नहीं? अब उसे भी युद्ध का अग्निस्नान करना चाहिए।'

'अभी तो छोटा है। कितना कोमल है मेरा कुमार!'

'माता को तो सदा ही अपनी सन्तान छोटी और कोमल लगती है....शायद वह अमर ही चला आ रहा है....अब मुझे आगे बढ़ना चाहिए।'

'जाओ, जिस तरह पीठ दिखा रहे हो उसी तरह मुंह भी दिखाना। अपने लाल को तुम्हारे हाथों सौंपती हूँ। वह आज पहली ही वार युद्ध में जा रहा है ....जाओ बेटा, कुल का नाम उजागर करो! आज से मेवाड़ तुम्हारी माता है। अब तुम्हें मेवाड़ के ही लिए जीना और मरना भी है। मेवाड़ के ही लिए मैंने तुम्हें जन्म दिया है।' समीप आये हुए अमर से रानी ने कहा।

बाहर नौबत और नगारे बज रहे थे; रणभेरी के स्वर वातावरण को वीर-रस से भर रहे थे, घोड़े हिनहिना रहे थे और योद्धागण जय एकलिंग के भैरव-नाद से दसों दिशाओं को गुंजा रहे थे। उधर भगवान भुवन-भास्कर ने अपनी प्रथम किरण का तोरण किले की सिंहपौर पर बाँधा और इधर रानी ने अपने हाथों प्रताप और अमर के कपाल पर कुंकुम और केशर का तिलक लगाया। राणा प्रताप सीढ़ियाँ उतरकर राजमहल के विस्तृत प्रांगण में आये। थिरकते हुए नीले रंग के घोड़े चेतक ने अपने स्वामी को देखा और उसका रोम-रोम आनन्द से पुलकित हो उठा। जैसे ही राणा ने उस पर सवारी की वह मारे खुशी के नाचने लगा और तब थिरकता हुआ उन्हें सैनिकों के समीप ले आया। राणा को अपने सामने देखते ही सैनिकों ने हर्षध्वनि की। जैसे ही सैनिकों की हर्षध्वनि शान्त हुई महाराणा ने अपनी तलवार को म्यान से निकालकर बादलों-जैसे गम्भीर स्वर में सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा :

'मेरी यह तलवार अब तभी म्यान में जायेगी जब मेवाड़ की भूमि पर एक भी आक्रमणकारी नहीं रहेगा। आज मातृभूमि हम सभी के देशप्रेम को तराजू के दो पलड़ों पर तौल रही है। एक पलड़े में मस्तक है, दूसरे में स्वाधीनता। जिसे मस्तक प्यारा हो वह खुशी से सेना छोड़कर जा सकता है। यह कोई न भूले कि हम मुगल सेना के बढ़ते हुए महासागर को रोकने और उसे मेवाड़ की सीमा से बाहर ढकेलने के लिए जा रहे हैं। जिसमें आसमान से दो-दो हाथ करने की हिम्मत न हो वह खुशी से जा सकता है।'

लेकिन सैनिकों में से एक भी जाने के लिए आगे नहीं आया। सैनिकों ने जयनाद के द्वारा ही राणा की इस ललकार का जवाब दिया; फिर वृद्ध झाला राणा अपने घोड़े पर सवार आगे आये और बोले :

'आगे बढ़ो, बापा रावल के ओ कुलदीपक, आगे बढ़ो! सिर को सलामत रखनेवाला कोई भी हमारे बीच नहीं है। आसमान से दो-दो हाथ करने के लिए सभी तैयार हैं। मेवाड़ी योद्धा खम ठोक चुके हैं। राणाजी की तलवार के साथ हमारी भी तलवारें म्यान से निकल आई हैं। जिसकी तलवार म्यान से बाहर नहीं निकलेगी उसे लौटना होगा।' और युवकों को लज्जित करनेवाले उस बूढ़े योद्धा ने शपाक से अपनी तलवार म्यान से निकाली। साथ ही सभी सैनिकों

की तलवारें खिच गईं और सबने राणाजी को सलामी दी। फिर नगारों पर डंके पड़े। अमरसिंह से लेकर आखिरी कतार के आखिरी सैनिक तक सभी की तलवारें म्यान से बाहर निकल चुकी था।

राणा प्रताप का चेहरा गम्भीर और कठोर हो गया। वह एक महान कार्य को पूरा करने के लिए, जो उतना ही भीषण भी था, पाँव आगे बढ़ा रहे थे। यह युद्ध केवल मरने के लिए या तलवार-भालों के पैंतरे दिखाने के लिए नहीं था। इस युद्ध के द्वारा प्रताप को मेवाड़ की स्वतंत्रता की रक्षा का उत्तरदायित्व पूरा करना था। सामने अकबरशाह-जैसा विश्व-विजेता सम्राट् पूरी सन्नद्धता से खड़ा था। जैसे ही राणा ने बाग मोड़ी, चेतक ने अपनी गरदन को मोर की तरह खम दिया और आगे बढ़ चला। उसके पीछे अमर का घोड़ा चला और स्थिर खड़ी हुई सारी सेना गतिशील हो गई।

जब सवारी राजमहल के झरोखे के नीचे आई तो ऊपर से फूल बरसने लगे। राणा ने सिर उठाकर ऊपर देखा। रानी पद्मावती अपनी सहेलियों के साथ अक्षत, कुंकुम और फूलों की वर्षा कर रही थीं। एक क्षण के लिए राणाजी और रानी की आँखें चार हुईं। उन चार आँखों की एक दृष्टि में कितना प्रम और एक-दूसरे के लिए कितना सम्मान था! एक क्षण के लिए मिली हुई उन आँखों में कितनी ही कही और अनकही बातें थीं। तब उस पद्मिनी पत्नी ने अपने पति की बलैया लीं। एक क्षण के लिए तो राणा प्रताप का हृदय भी धड़क उठा।

लेकिन किस वीर योद्धा को नारी के नेत्रों की भाव-कहानी पढ़ने और बूझने का अवकाश होता है? एकान्त ध्येय में मग्न कौन योगी सिद्धियों के सौन्दर्य की ओर देखता है? योद्धा और योगी दोनो को ही भावुकता और सौन्दर्य के बीच होकर आगे बढ़ना होता है। प्रताप भी आगे बढ़े। उनका घोड़ा कुम्भलमेर के दरवाजों को एक-एक कर पार करता गया। किले के तंग और घुमावदार रास्ते से नीचे उतरते हुए प्रताप ने देखा कि रानी पद्मावती अभी तक झरोखे में खड़ी मेवाड़ी सेना के प्रत्येक सैनिक पर पुष्प-वर्षा कर रही थी। उन्होंने यह भी देखा कि महारानी के कर-कमलों द्वारा बरसाये जाते अक्षत-कुंकुम और फूलों को प्रत्येक सैनिक मूल्यवान सम्पदा की भाँति सिर-माथे चढ़ाता और सहेजकर पगड़ी के छोर में बाँधता जाता था। प्रताप के जयजयकार के साथ ही सैनिक

महारानी का जयकारा भी लगाते जा रहे थे। प्रताप धन्य-धन्य हो उठे। झाला-राणा ने सहज भाव से मुस्कराते हुए कहा—अन्नदाता के जयनाद में आज तो महारानीजी ने भी आधा हिस्सा बँटा लिया।

प्रताप ने भी मुस्कराकर कहा—आधा ही क्यों, मैं तो रानीजी को जयनाद का पूरा अधिकार देने को तैयार हूँ। दे तो सकता हूँ न ?

'जरूर दे सकते हैं, महाराज! और ऐसा मेवाड़ में ही सम्भव है। वास्तविक विजय स्त्री की ही होती है, पुरुष की नहीं।' झालाराणा ने प्रत्युत्तर दिया।

कुम्भलगढ़ से उतरकर प्रताप अब नीचे मैदान में आ गये थे। झालाराणा से बातें करते हुए उन्होंने एक बार फिर किले की ओर मुड़कर देखा। किले के ऊँचे झरोखे में खड़ी हुई सुन्दरियाँ आलोकमयी पुतलियों के समान दिखाई दे रही थीं। प्रताप को लगा जैसे रानीजी उँगलियों से अपनी आँखों को छू रही थीं। उन्होंने सोचा, कहीं रानी की आँखों से आँसू की बूंदे तो नहीं टपक पड़ीं ?

लेकिन आँसुओं से युद्ध कभी रुकते नहीं। आँसुओं के समुद्र को पार करके भी आदमी युद्ध के लिए बढ़ता है। किस लिए! क्या उन आँसुओं के उपयुक्त बनने के लिए ? प्रताप का हृदय जोरों से धड़कने लगा। लेकिन उस समय यदि प्रताप पद्मावती के पास लौट आते तो रानी की आँखों के वे आँसू आग के अंगारे बन जाते, क्योंकि प्रताप पद्मावती के पति और प्रेमी ही नहीं, मेवाड़ की लाज रखनेवाले वीर सिपाही भी थे। किसी के भी आँसू उसे रोक नहीं सकते थे। प्रताप और उनकी सेना आगे बढ़ती चली गई। मार्ग में और भी कई सैनिक टुकड़ियाँ उनके साथ मिलती गईं। राणा ने कुछ सैनिक टुकड़ियाँ आगे और चारों दिशाओं में शत्रु सेना की गतिविधि का पता लगाने के लिए भेज दीं। मुगल सेना अजमेर से रवाना हो चुकी थी। चरों ने आकर राणा को समाचार दिया कि मानसिंह को उस सेना का सिपहसालार बनाया गया है और कई कुशल हिन्दू-मुस्लिम सेनानायक मेवाड़ के उठे हुए सिर को कुचलने के लिए मानसिंह के साथ आ रहे हैं।

'मुकाबिले पर फौज तो बहुत बड़ी आ रही है।' झालाराणा ने कहा।

'कोई चिन्ता की बात नहीं। यदि अकबरशाह स्वयं सेना के साथ होते तो और भी अच्छा रहता।' प्रताप ने कहा। वीर कभी कठिनाइयों की परवाह

नहीं करते। संकट को सामने देखकर वीरता शान पर चढ़ती है। प्रताप की अनुपम वीरता मानसिंह से लड़कर सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी। विशाल मुगल सेना में मार-काट करके भी उन्हें सन्तोष नहीं हो सकता था। उनकी हार्दिक अभिलाषा तो थी मुगल सेना के अधिपति शहन्शाह अकबर से दो-दो हाथ करने की—उस अकबर से जिसे मानसिंह भी सलाम करता और सिर झुकाता था; उस अकबर से जिसने चित्तौड़ को जीता और बरबाद कर दिया था। युद्ध के विचारों में मग्न राणा प्रताप ने एक टेकरी से नीचे उतरते हुए देखा कि एक छोटी-सी सेना मार्ग रोके खड़ी है। राणा ने अपनी सेना को रुक जाने का आदेश दिया। मुगल सेना तो इतनी छोटी हो नहीं सकती, परन्तु उस सेना में मुगल सैनिक भी थे। यदि राजपूत हमला कर देते तो उस छोटी-सी सेना की बोटी-बोटी नुच जाती। अभी राणा प्रताप सोच ही रहे थे कि दो घुड़सवार उस सेना में से बाहर निकल आये और प्रताप की ओर बढ़ने लगे। उन दोनो की तलवारें म्यान में थीं। और एक घुड़सवार के हाथ में शान्ति और सन्धि की सूचक सफेद पताका फहरा रही थी। सभी लोग सोचने लगे कि शान्ति और सन्धि चाहने-वाले ये मुस्लिम कौन हैं?

समीप आकर दोनो घुड़सवार नीचे उतर पड़े। प्रताप के सैनिकों ने उन्हें घेर लिया।

राणा ने गम्भीर स्वर में पूछा—कौन हैं आप लोग? राह रोककर क्यों खड़े हैं? और सुलह का झण्डा क्यों लिये हैं?

कहीं मुगल सैनिकों द्वारा भुलावे में डालने की कोई चाल तो नहीं? यही खयाल सबके मन में आ रहा था।

तभी एक घुड़सवार ने कोरनिश बजाकर कहा—जनाब, इस नाचीज को हकीमखाँ सूर कहते हैं। मैं राह रोकने के लिए नहीं, साथ चलने के लिए हाजिर हुआ हूँ।

शेरशाह सूर ने अकबर के पिता हुमायूं को पराजित कर दिल्ली के सिहांसन पर पुनः अफगानों का आधिपत्य स्थापित किया था। उसी शेरशाह का वंशज हकीमखाँ अपने अधिकार से वंचित अब अकबर के विरुद्ध लूट-पाट पर उतर आया था। उसकी इस लूट-पाट की मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति के आगे कोई

बिसात नहीं थी। अकबर के साम्राज्य को विध्वंस करने के स्वप्न देखता हुआ हकीमखाँ अपने कुछ वफादार साथियों के साथ मारा-मारा भटकता फिरता था। धीरे-धीरे सारा उत्तर भारत अकबर के अधिकार में चला गया। अकेला एक मेवाड़ और उसका महाराणा प्रताप बचा रह गया। मुगलों के जानी दुश्मन हकीमखाँ के मन में प्रताप के प्रति आदर और पूज्य बुद्धि उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। चारों ओर से निराश वह राणा प्रताप को अपनी सेवाएँ समर्पित करने के लिए मेवाड़ चला आया। राणा प्रताप ने भी उसका नाम और उसके कार्यों के बारे में सुन रखा था।

हकीमखाँ का नाम सुनते ही राणा चेतक से नीचे उतर पड़े और उसे छाती से लगाकर बोले—आपका और मेरा क्या साथ ? दिल्ली को जीतना मेरे बूते का नहीं।

'कोई हर्ज नहीं, परन्तु आप दिल्ली के आगे झुकेंगे तो नहीं ?'

'खान साहब, झुकने के लिए न तो मेरा यह शरीर बना है और न मेरी यह सेना ?'

'आफरीन ! मेरे लिए इतना ही काफी है। मुगलों के खिलाफ जो भी जंगजू हो उसे मेरी खिदमतें पेश हैं।'

'लेकिन अब सवाल जिन्दगी और मौत का है।'

'जिन्दगी और मौत का सवाल तो मेरे लिए जिन्दगी के पहले दिन से ही बना हुआ है। लेकिन देख रहा हूँ कि आपके सरदारों को मेरे ऊपर यकीन नहीं।' हकीमखाँ ने झालाराणा, रामसिंह तोमर आदि बूढ़ों के चेहरों की ओर देखते हुए कहा।

'आप ही बताइए तुर्कों ने आज तक ऐसा एक भी काम किया है कि हम उन पर विश्वास करें ?' रामसिंह के मुंह से अनचाहे भी ये शब्द निकल पड़े।

'मुझे साथ लेकर देख लीजिए। सभी मुसलमान नमकहराम और बेवफा नहीं होते। अपने कौल के एवज में मैं अपना यह सिर देता हूँ।'

'लेकिन धर्म की बात आते ही मुसलमान मनुष्यता को भूल जाते हैं।' झाला-राणा के शब्द कुछ कठोर हो गये थे।

प्रताप ने उन्हें रोकते हुए कहा—खान साहब, मैं एक मुस्लिम सत्ता से लड़ने

जा रहा हूँ। इस बात को समझकर यदि आप साथ आना चाहें तो खुशी से आ सकते हैं।

'जोर, जुल्म और बेइन्साफी का साथ देनेवाला कभी सच्चा मुसलमान नहीं होता। ज्यादा क्या कहूँ, मुझे साथ लेकर खुद इतमीनान कर लीजिए। मेरा तो यही यकीदा है कि मुगलों को मारते हुए मरूँ। आपकी खिदमत में इसी लिए हाजिर हुआ कि यहाँ मुझे वह मौका मिल सकेगा।'

प्रताप ने हकीमखाँ को अपनी सेना में सम्मिलित कर लिया और उसकी छोटी-सी टुकड़ी को अपनी सेना का एक विभाग बना दिया। कई राजपूतों को प्रताप का यह कार्य अच्छा नहीं लगा। मुसलमानों पर विश्वास करना उन्हें जरा भी नहीं सुहाया। प्रताप का यह निर्णय उन्हें गलत लग रहा था, परन्तु फिर भी कोई मुंह खोलकर कुछ कह न सका। प्रताप ने हकीमखाँ को अपनी सेना में सम्मिलित ही नहीं किया, उसे शालिवाहन के साथ शत्रु-सेना की गति-विधि का पता लगानेवाली टुकड़ी का नायक भी बना दिया।

मुगल सेना बड़े आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ती चली आ रही थी। उसे मेवाड़ की सीमा पर ही रोकने की सलाह कुछ लोगों ने राणा प्रताप को दी। परन्तु अनुभवी सेनानायकों की राय थी कि मुगलों को मेवाड़ की सीमा के अन्दर आने देकर पहाड़ी प्रदेश में फँसाकर तब युद्ध करना चाहिए। स्वयं प्रताप में लड़ने का अत्यधिक उत्साह था और वह जहाँ भी दुश्मन मिलता उससे लड़ सकते थे। परन्तु उत्साह में आकर किसी तरह की मूर्खता या जल्दबाजी कर बैठनेवाले योद्धा वह नहीं थे। मोरचेबन्दी में भी वह बड़े कुशल थे। इसी-लिए पहाड़ों की प्राकृतिक मोरचेबन्दी को छोड़कर मैदान में सैनिकों को व्यर्थ कटवाने की योजना उन्हें पसन्द नहीं आई। उन्होंने मुगल सेना को मेवाड़ की सीमा में बिना छेड़े प्रवेश करने दिया। यदि वह सेना उदयपुर की ओर बढ़ती तो निश्चय ही अरावली की उपत्यका में फँस जाती। परन्तु मुगल सेनापति भी इतना मूर्ख नहीं था। वह भी मेवाड़ी सेना की गति-विधि का बारीकी से अध्ययन कर रहा था। मानसिंह बड़ी सतर्कता से मुगल सेना को मेवाड़ के अन्दर बढ़ाये ला रहा था। पहाड़ी प्रदेश से वह यथासम्भव बचता रहा। क्योंकि वह जानता था कि मेवाड़ के पहाड़ पहाड़ नहीं पूरी-पूरी सेनाएँ थे। जब उसकी सेनाएँ मेवाड़ के मध्य भाग

में आ गई तो उसने वहीं डेरे डलवा दिये और लड़ने के लिए मोरचेबन्दी करने लगा।

इधर प्रताप की सेना भी पग-पग पर मुगल सेना की टोह लेती हुई आगे बढ़ रही थी। एक दिन हकीमखाँ ने आकर खबर दी कि मुगल सेना ने यहाँ से चार-पाँच कोस के फासले पर पड़ाव डाल दिया है और मोरचा बाँधे मेवाड़ी सेना का इन्तजार कर रही है। मुगल सेना की हलचल मालूम करने में हकीमखाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा था। यह सुना तो एकलिंगजी की जयजयकार के साथ मेवाड़ी सेना ने भी वहाँ से दो-एक कोस आगे बढ़कर अपना पड़ाव डाल दिया। दोनों सेनाओं के बीच हल्दीघाटी की पहाड़ी खड़ी हुई थी। यहाँ की हल्दी-जैसी पीली धरती सभी की परिचित थी। हल्दीघाटी के घाट के दोनों ओर दोनों सेनाएँ एक-दूसरे के आक्रमण की प्रतीक्षा करती हुई पड़ी थीं। दोनों ही सेनाएँ मौके की तलाश में थीं। कभी-कभी दोनों ओर के हाथी और ऊँट एक-दूसरे को दिख भी जाते थे। आक्रमण की अपेक्षा वातावरण तनाव से भरा रहता और सैनिक एक-दूसरे पर टूटने के लिए व्यग्र हुए रहते थे। कभी-कभी रात के सन्नाटे में दोनों सेनाओं के नारे और ललकारें भी एक-दूसरे को सुनाई दे जाती थीं।

एक दिन दोपहर ढलने के बाद राणा प्रताप अपने सरदारों के साथ एक छायादार वृक्ष के नीचे सलाह-मशविरा कर रहे थे। गरमियों के दिन थे और धूप में बड़ी तेजी थी, फिर भी कई छायादार वृक्ष वहाँ धूप को रोके हुए थे। पहाड़ी पत्थर तपकर अंगारे हो गये थे और उनको छूकर बहनेवाली हवा लपट की तरह लगती थी; परन्तु वृक्षों के नीचे पहुँचते-पहुँचते कुछ ठंडी हो जाती थी। सभी बैठे यही विचार कर रहे थे कि कौन कहाँ खड़ा रहेगा, किस तरह आक्रमण किया जायेगा, पिछाए का नियंत्रण कौन करेगा, दुश्मन के आक्रमण करने पर प्रतिरोध के लिए सैनिकों को कैसे आगे बढ़ाया जायेगा, राणाजी का कहाँ रहना ठीक होगा, कुँवर अमरसिंह को कहाँ रहना चाहिए, अंगरक्षक कितने हों और कहाँ रहें, आदि-आदि। इधर मुगल सेना में बन्दूकों का उपयोग बहुत बढ़ गया था, इसलिए चर्चा का एक विषय यह भी था कि बन्दूकचियों को किस तरह बेकार किया जा सकता है। किशोर अमरसिंह सबके पास बैठा बड़े मनोयोग से सारी चर्चा सुन रहा था। चारों ओर का वातावरण शान्त था और पहाड़ियों के छोटे-मोटे शिखर

ऐसे लगते थे मानो अपने सिर उठाये राजपूतों की युद्ध योजना को गुपचुप सुन रहे हों।

सहसा दो घुड़सवार एक टेकरी पर से नीचे की ओर दौड़कर आते दिखाई दिये। वहाँ बैठे सभी सूरमाओं के हाथ अपनी तलवारों पर पहुँच गये और कुछ सामन्त खड़े भी हो गये। लड़ाई के मैदान में वही सैनिक विजयी होता है जो सदा शस्त्रों से सज्ज और सतर्क रहे। मेवाड़ी सरदार एक क्षण के भी लिए निःशस्त्र और गाफिल नहीं रहते थे।

जब घोड़े कुछ समीप आ गये तो लोगों ने यह देखकर सन्तोष की साँस ली कि आगन्तुक और कोई नहीं हकीमखाँ और शालिवाहन थे। उनके इस तरह दौड़कर आने का कारण कोई महत्वपूर्ण समाचार ही हो सकता था। दोनो ही युवक बड़े चपल और कुशाग्र थे। उनके नायकत्व में जो टुकड़ी दी गई थी वह सारी सेना की रक्षा करने के साथ-साथ समाचार भी प्राप्त करने का काम करती थी। उनके प्रयत्नों से मुगलों के कई गुप्त रहस्य और संवाद हाथ लगे थे। हकीमखाँ की स्वामिभक्ति और निष्ठा के प्रमाण तो प्रतिदिन ही मिलते रहते थे। तेजी से आते हुए सवारों ने समीप आकर घोड़ों को रोका और नीचे उतर-कर महाराणा प्रताप का अभिवादन किया।

'यह भागम्-भाग क्यों? रात में हमला तो नहीं हो रहा?' महाराणा ने पूछा।

'जी नहीं, हालत कुछ ऐसी बन गई है कि अब हमला न दिन में हो सकता है न रात में।' हकीमखाँ ने कहा।

'क्या मतलब? मैं समझा नहीं। मुगल सेना हमसे लड़े बिना लौट जाये यह तो मेरे मानने में नहीं आता।' प्रताप ने कहा।

'मुगलों का प्रधान सेनापति हमारे चंगुल में फँस गया है।' शालिवाहन ने कहा।

'क्या?' प्रताप की समझ में फिर भी कुछ नहीं आया इसलिए उन्होंने पूछा।

'हुजूर घोड़े पर सवार होकर जरा-सी तकलीफ फरमायें। राजा मानसिंह को यों चुटकी बजाते गिरफ्तार किया जा सकता है।' हकीमखाँ बोला।

'क्या कहते हो? मानसिंह को? मुगल सेनापति को? बन्दी बनाया जा सकता है? कैसे?'

'शिकार की टोह में निकले हुए राजा मानसिंह एक झाड़ी में फँस गये हैं। लगभग अकेले ही हैं। हमने उनके चारों ओर अपनी एक टुकड़ी तैनात कर दी है। हम ही पकड़ लाते लेकिन आप पकड़कर लायें तो वह बात ही कुछ और होगी। और लड़ाई का भी यों बात-की-बात में निपटारा हो जायेगा।' शालिवाहन ने कहा।

'हुँ, तो यह बात है। मानसिंह को घमण्ड बहुत हो गया है। यह तो अच्छा मौका हाथ लगा। बस अन्नदाता उठकर चले ही चलिए।' एक युवक सामन्त ने प्रताप से साग्रह अनुरोध किया।

'राजा साहब को शिकार भी मिला या नहीं ?' झालाराणा ने पूछा।

'जी नहीं। शिकार तो भाग गया। मानसिंह साहब उसी की टोह में आगे निकल आये और हमारे पंजे में फँस गये।' हकीमखाँ ने कहा।

'किस जानवर का शिकार था ? शेर का तो नहीं ?' रामसिंह ने पूछा।

'जी नहीं, साँभर था।' शालिवाहन ने अपने पिता को उत्तर दिया।

'वाह भाई, वाह ! मेवाड़ के साँभर को भी मानसिंह मार न सके !' झालाराणा की इस बात को सुनकर सभी खिलखिलाकर हँस पड़े।

'हुजूर, वक्त हाथ से निकला जा रहा है। इधर हम बातें करते रह जायेंगे उधर फन्दे में फँसा दुश्मन निकलकर भाग जायेगा।' हकीमखाँ को देर बिलकुल सह्य नहीं हो रही थी।

महाराणा कुछ देर मन-ही-मन सोचते रहे और फिर उन्होंने बड़ी ही शान्ति से कहा—रामसिंहजी, झालाराणा, मैं आप दोनो सरदारों से पूछता हूँ कि उचित क्या होगा ? भूलकर भटके हुए मानसिंह से मिलना या शस्त्रास्त्रों से सज्जित मुगल सेनापति से लड़ाई के मैदान में मिलना ?

'मैं तो महाराज के मन की बात पहले ही समझ गया था। ऐसी ही मर्जी है तो जाने भी दीजिए।' रामसिंह ने कहा।

'जो शिकारी साँभर को भी न मार सका हम उसका बोझा कहाँ उठा पायेंगे ?' झालाराणा ने कहा।

'तो जाने ही दो। मानसिंह को पकड़ने की आवश्यकता नहीं। वह इस समय साँभर को मारने आये हैं, हमें मारने के लिए नहीं।' प्रताप ने कहा।

'लेकिन हुजूर यह नायाब मौका फिर हाथ आने का नहीं।' हकीमखाँ ने आग्रह किया।

'मौका तो खाँ साहब, जिन्दगी की आखरी घड़ी तक मिलता रहेगा। हम खुली लड़ाई लड़ने के लिए निकले हैं। हमारी यह लड़ाई मुगलाई हुकूमत के खिलाफ मेवाड़ की आजादी के लिए है। अकेले आदमी को, भूले हुए आदमी को, असफल शिकारी को पकड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। मानसिंह को चला जाने दीजिए।' यह कहकर प्रताप ने अस्तंगत सूर्य की ओर देखा।

'हुजूर को इस रहमतोकरम के लिए कहीं पछताना न पड़े।' हकीमखाँ ने कहा।

'जहाँ उदारता के लिए पछताना पड़े वहाँ हार-जीत का मूल्य ही क्या ? खान-साहब, हम कभी अपनी [illegible] गिरायेंगे।' प्रताप ने कहा।

शालिवाहन के मुंह से तो एक शब्द भी न निकला। प्रताप की आज्ञा का पालन करनेवाला वह युवक अत्यन्त उत्साह से दौड़ा आया था। मानसिंह-जैसे सेनापति को बन्दी करने का सौभाग्य ऐसा-वैसा सम्मान नहीं था, लेकिन हाथ में आये हुए उस महत्वपूर्ण बन्दी को यों ही छोड़ देना पड़ रहा था। यह स्थिति उसके लिए बड़ी ही दुस्सह थी, परन्तु राणा की आज्ञा पालने का अभ्यस्त वह युवक शान्त खड़ा रहा।

'जंग छेड़ने के बाद तो सिपाही को अपनी निगाह जीत पर ही रखना चाहिए। मेरा अब भी यही खयाल है कि हुजूर ने मानसिंह को पकड़ लिया होता तो आधा जंग हम जीत जाते।' हकीमखाँ का मन नहीं मान रहा था इसलिए उसने फिर दलील दी।

'खान साहब, लड़ाई को तो पूरा ही जीतना चाहिए, आधी जीत किस काम की ? खुदा की मर्जी हुई तो हम पूरी फतह और पूरी कामयाबी हासिल करेंगे। आप लौट जाइए और मानसिंहजी को आदरपूर्वक उनकी छावनी में पहुँचा दीजिए।' यह आदेश देकर राणा चुप हो गये।

वहाँ उपस्थित सभी सरदार चकित रह गये। हाथ में आये हुए मानसिंह को छोड़ा ही नहीं जा रहा था, उसे ससम्मान और सकुशल लौटाया भी जा रहा था। इसे क्या कहा जाये, उदारता या मूर्खता ? यदि कहीं प्रताप ही इस प्रकार

मानसिंह के फन्दे में फँस जाते, तो ? लेकिन राणा के अन्तिम आदेश के बाद किसी भी वाद-विवाद के लिए स्थान नहीं था। शालिवाहन और हकीमखाँ मन मारे लौट पड़े।

मानसिंह जिस झाड़ी में फँसा हुआ था उसमें दोनों ने प्रवेश किया। मेवाड़ी सैनिकों की जो टुकड़ी मानसिंह को घेरे हुए थी वह आशा तो यही लगाये थी कि मानसिंह को गिरफ्तार किया जायेगा। उसकी गिरफ्तारी कुछ मुश्किल भी नहीं थी। यदि राणा प्रताप को ही उसे बन्दी करने का अवसर देने की बात न होती तो सैनिकों ने उसे कभी का पकड़ लिया होता। लेकिन जब उनसे कहा गया कि मानसिंह को गिरफ्तार नहीं करना है, सकुशल मुगल छावनी में लौटा आना है तो उनके विस्मय की सीमा न रही। परन्तु वे स्वामिभक्त और आज्ञा-पालक थे, इसलिए मनोनुकूल न होते हुए भी उन्होंने राणा के आदेश को सिर-आँखों पर चढ़ाया।

'आखिर साँभर निकल ही गया.... बहुत पीछा किया पर हाथ न आया.... कौन है यहाँ.... अँधेरा घिर रहा है....चलो, लौटा जाये!' इस तरह कहते हुए और झाड़ी में रास्ता खोजते हुए मानसिंह ने ताली बजाई। वह अपने अंग-रक्षकों और शिकार के साथियों को बुला रहा था। शिकार में तल्लीन शिकारी को न स्थान का भान रहता है और न समय का ज्ञान।

लेकिन जब मानसिंह ने अपने-आपको साथियों तथा अंगरक्षकों के स्थान पर अपरिचित सैनिकों द्वारा घिरा पाया तो थोड़ी-सी घबड़ाहट उसे अवश्य हुई। वह वहीं ठिठककर खड़ा हो गया। घिरते आते अन्धकार में उसने आँखें फाड़-फाड़कर देखा और घेरनेवाली सैनिक टुकड़ी को पहचानने का प्रयत्न किया। कहीं मैं मेवाड़ी सैनिकों से घिर तो नहीं गया ? उसके मुंह से सहसा यह शब्द निकल पड़े।

'जी हाँ, राजा साहब, बात तो ऐसी ही है। अब लौट चलिए। अँधेरा घिर रहा है। रात में साँभर हाथ नहीं लग सकता।' शालिवाहन ने कहा।

'तुम कौन हो ? मुझे पहचानते हो ?' मानसिंह ने बड़े ही रोब से पूछा।

'जी, हम मेवाड़ के सैनिक हैं। आपको पहचानते हैं। कौन है जो राजा मानसिंह साहब को नहीं पहचानता।' शालिवाहन ने उत्तर दिया।

'मुझे पकड़ने आये हो?'

'जी हाँ, परन्तु अब नहीं पकड़ेंगे।'

जानते हो, पूरी मुगल सेना यहाँ से कोस-दो कोस के फासले पर ही है?'

'हम तो रोज मनाते हैं कि यह फासला भी न रहे; जल्दी-से-जल्दी मिट जाये। मुगल सेना का डर हमें दिखाने की जरूरत नहीं।'

'क्या इरादा है तुम्हारा?'

'इरादा तो आप समझ ही गये होंगे। परन्तु अब आपको गिरफ्तार करने का हमारा कोई इरादा नहीं है।'

'मुझे गिरफ्तार करने में कितना जोखिम है, यह भी जानते हो?'

'जोखिम नाम की किसी भी चीज को हम नहीं जानते। हम तो केवल अपने राणाजी की आज्ञा का पालन करना जानते हैं।'

'राणाजी कहाँ हैं?'

'पास ही हैं।'

'उनकी क्या आज्ञा है?'

'आपको गिरफ्तार करने के बदले हिफाजत और इज्जत के साथ आपकी छावनी में पहुँचा दिया जाये।'

मानसिंह यह तो जान ही गया था कि शिकार की धुन में अकेला आकर वह किस संकट में फँस गया है! उसके अंरक्षक और साथी उससे छूट गये थे, और पीछे रह गये थे। हो सकता है कि मेवाड़ी गुप्तचरों ने उनको मार भी डाला हो। इस समय वह अकेला शत्रु सैनिकों की टुकड़ी के बीच घिरा हुआ था। प्रताप उसे बन्दी बनाकर ले जा सकते थे। और यदि बन्दी बना ही लेते तो मुगलों को बुरी तरह मुंह की खानी पड़ती और अकबर की हार हो जाती। लेकिन वह यह क्या सुन रहा है? प्रताप नें उसे सही-सलामत मुगल शिविर तक पहुँचा आने का आदेश दिया है? सैनिक सच कह रहे हैं या धोखा है?

'सच कहते हो?' मानसिंह के मुंह से निकल पड़ा।

'शत्रु को भी झूठ बोलकर परेशान न किया जाये, यह शिक्षा हम मेवाड़ी सैनिकों को दी जाती है।'

'धोखा तो नहीं है?'

'मान लीजिए कि धोखा ही हो तो इस समय, ऐसी स्थिति में आप कर भी क्या सकते हैं ? लेकिन हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि धोखा या छल नहीं है। और आपको यह भी समझना चाहिए कि हमारे बिना आप इस जंगल और झाड़ी से निकलकर अपनी छावनी तक पहुँच नहीं सकते।' शालिवाहन ने कहा।

'देखते-ही-देखते गरमियों की लम्बी साँझ रात में परिवर्तित हो गई। वहाँ से बाहर निकलने के लिए मेवाड़ियों की सहायता लेने के अतिरिक्त मानसिंह के सामने सच हो दूसरा कोई मार्ग नहीं था। विवश होकर उसने शालिवाहन और हकीमखाँ के साथ चलना आरम्भ किया। जैसे-जेसे आगे बढ़ते गये मानसिंह को विश्वास होता गया कि शत्रु होते हुए भी मेवाड़ी सैनिक उसे सही मार्ग पर ही ले जा रहे थे। शालिवाहन को तो मानसिंह ने पहचान लिया परन्तु हकीमखाँ को वह नहीं पहचान पाया। मुगल सेना में किसी को भी यह पता नहीं था कि हकीमखाँ प्रताप के साथ मिल गया है। मानसिंह बड़ा ही कुशल राजनीतिज्ञ था। प्रतिकूल परिस्थिति को भी वह अपने अनुकूल बना लेने में चतुर था। अभी की विषम स्थिति को थोड़ा हल्का करने के लिए वह उन दोनो के साथ मीठी-मीठी बातें करने लगा।

'शालिवाहन, मेवाड़ की सेना में क्या मुस्लिम भी हैं ?'

'जी हाँ,।'

'लेकिन तुम तो मुस्लिमों के खिलाफ लड़ रहे हो ?'

'जी, मुस्लिमों के विरुद्ध नहीं, मुस्लिमों के आक्रमण के विरुद्ध।'

'यही सही, लेकिन तुम्हें भरती के लिए मुस्लिम सैनिक मिल जाते हैं ?'

'मिलेंगे क्यों नहीं ? मुस्लिम सत्ता को जिस प्रकार हिन्दू सैनिक मिलते हैं उसी प्रकार हिन्दू [illegible] मिल जाते हैं।'

'लेकिन मुस्लिम वफादार भी रहेंगे ?'

'राजा साहब ! वफादारी में हिन्दुओं ने भी कुछ बहुत अधिक नाम तो नहीं कमाया है। हिन्दू राज्य की रक्षा के लिए मुस्लिम तैयार हों तो उन्हें साथ लेने में हानि ही क्या है ? और हिन्दुओं का साथ देनेवाले मुस्लिमों की वफादारी के बारे में ही जानना चाहते हों तो पूछ देखिए इन खाँ साहब से।'

'कौन हैं ये ? तब से एक भी शब्द बोले बिना हमारे साथ चल रहे हैं।'

'इनका नाम है जनाब हकीमखाँ सूर।'

'हाँ-हाँ, पहचान गया। मुगल सल्तनत के खिलाफ बागी बनकर जो लूट-पाट करते रहते हैं वही न ? मैं नहीं जानता था कि मेवाड़ी सेना में लुटेरों को भी जगह दी जाती है।' मानसिंह बोला। उसकी छावनी के दीये दिखने लगे थे।

'सूर-वंश का राज्य छीनकर उसके उत्तराधिकारी को आप लुटेरा कहते हैं ? क्या राजनीति-कुशल राजा साहब को भी यह बताना होगा कि विजयी लुटेरा बादशाह कहलाता है और पराजित बादशाह लुटेरा ?' शालिवाहन ने कहा।

'आओ मेरे साथ। फिर तुम्हें लूट-पाट और डकैती करने की जरूरत ही नहीं रह जायेगी। मैं मुगल सेना में तुमको ऊँचा मनसब दूंगा।' मानसिंह ने हकीम खाँ की ओर देखते हुए कहा।

'पहले आप यह तो परख लीजिए कि ऊँचे मनसब की काबिलियत भी मुझे है या नहीं ?'

'आपकी इस काबिलियत को कहाँ और कैसे परखा जाये ?'

'आपके खिलाफ मेवाड़ी सरदारों की जो जंग हो रही है उसमें।' हकीमखाँ ने कहा।

एक क्षण तो मानसिंह उसकी ओर देखता ही रह गया। तभी सहसा मुगल सैनिकों की एक टुकड़ी ने उन लोगों को घेर लिया। टुकड़ी के नायक ने मानसिंह को देखा तो बड़ा विस्मित हुआ, फिर उसने आदाब बजाकर मानसिंह से कहा—शुक्र है खुदा का कि हुजूर से मुलाकात हो गई। वरना हमारे हाथ के तो तोते ही उड़ गये थे। मैंने जंगल का चप्पा-चप्पा छानने के लिए फौजी टुकड़ियाँ रवाना कर दी हैं।

'अब उनकी वापिसी का हुक्म दे दीजिए। मैं तो लौट ही आया हूँ।' मानसिंह ने कहा।

'अब हमें भी आज्ञा दीजिए राजा साहब !' शालिवाहन ने कहा।

'जरूर। क्या आभार मानना होगा ?'

'हमारा नहीं, राणाजी का।' हकीमखाँ ने कहा।

'कहिए तो किसी को साथ कर दूं। रास्ते में हमारी टुकड़ियाँ मिलेंगी।'

'जरूरत नहीं है राजा साहब ! जय एकलिंग !' यह कहकर शालिवाहन

ने अपने घोड़े की बाग मोड़ दी और देखते-ही-देखते वह और हकीमखाँ मानसिंह की आँखों से ओझल हो गये।

'गरीबपरवर! वे तो मेवाड़ी जासूस थे। उन्हें गिरफ्तार क्यों न कर लिया जाये?' नायक ने कहा।

'नहीं। वे दोनो मेरे रहनुमा थे। जाने दो उन्हें।' मानसिंह ने कहा।

मानसिंह को सकुशल लौटा देखकर सभी सैनिकों को बड़ी प्रसन्नता हुई। युद्ध से पहले ही सेनापति अदृश्य हो जाता तो मुगल सेना की पराजय मानी हुई बात थी। सरदारों और सिपहसालारों ने घेर लिया और मानसिंह ने उन्हें पूरा किस्सा सुनाया। जब लोगों को यह पता चला कि मेवाड़ी सेना के जासूसों ने रास्ता दिखाया और यहाँ तक पहुँचा गये तो एक मुस्लिम सरदार कह उठा—हुजूर का इकबाल ही ऐसा बुलन्द है। कौन है जो हुजूर को न पहचाने?

'मगर ताज्जुब तो यह है कि पहचानने के बाद भी पूरी हिफाजत से लौटा गये!' एक दूसरे सरदार ने कहा।

'लौटाते नहीं तो जाते कहाँ? मुगल सल्तनत की धाक कोई मामूली बात तो है नहीं।' तीसरे ने कहा।

'इसके माने तो यह हुए कि मेवाड़ की जो बड़ी-बड़ी बातें सुनते आये हैं वे सब ढोल की पोल हैं। हमारा खौफ उनके दिलों पर तारी हो चुका है।'

इस तरह की ठकुरसुहाती बातें सुनते हुए मानसिंह ने अपनी छोलदारी में प्रवेश किया और आराम करने के लिए बिस्तरे पर लेट गया। लेकिन थका हुआ होने पर भी उसे नींद नहीं आई। वह बड़ी रात तक यही सोचता रहा कि उसे छोड़कर प्रताप ने अपनी उदारता का प्रदर्शन किया है अथवा भय का? यदि मानसिंह को पकड़ लिया होता तो क्या मुगल सेना मेवाड़ पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस न कर देती? हो सकता है कि प्रताप का ऐसा कोई आदेश न रहा हो, शालिवाहन ने ही मानसिंह के भय के कारण उसे सही-सलामत पहुँचा दिया हो। लेकिन अगर सच ही प्रताप ने मानसिंह के प्रति उदारता प्रदर्शित की है तब तो यही मानना होगा कि प्रताप को अपना बड़प्पन प्रदर्शित करने का रोग हो गया हैं। वह हर बहाने मुगलों के साथ रिश्ता जोड़नेवाले क्षत्रिय राजाओं को अपमानित करने और नीचा दिखाने का अवसर ढूंढ़ता रहता है। यदि ऐसी

बात है तब तो प्रताप के अहंकार को मिट्टी में मिलाना ही होगा। इतना अहंकार कि मानसिंह के सन्धि-प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, मानसिंह के साथ एक पंगत में बैठकर भोजन नहीं किया, मुगल बादशाह का अपमान किया और आज हाथ में आये हुए मानसिंह को छोड़कर उदारता का एक और तमाशा दिखाया....

तभी शेर को दहाड़ से आसपास को पहाड़ियाँ गूंज उठीं। जिस साँभर को उसका भाला मार न सका उसे सम्भवतः इस समय इस दहाड़नेवाले शेर ने मार डाला है....लेकिन प्रताप को हराया न जा सका, लड़ाई के मैदान में जीत प्रताप को हुई तो हिन्द हो नहीं, सारे एशिया में जिसके नाम की दुंदुभी बज रही है उस मानसिंह के मुंह पर कालिख पुत जायेगी। अकबरशाह को मुंह दिखाना मुहाल हो जायेगा।

प्रताप और उनके सैनिकों का उदार व्यवहार मानसिंह के हृदय में रह-रहकर काँटे की भाँति खटकने लगा। वह बेचैन हो उठा। यह मुझे नीचा दिखाने की प्रताप की एक चाल ही थी। सबसे बुरी बात तो यह कि उसी के सिपाहियों ने मुझे रास्ता दिखाया....ओह क्या करूँ? प्रताप की मगरूरी को कैसे चूर करूँ? मेवाड़ के राणा-वंश को निर्दोषिता और पवित्रता मानसिंह के अपमान से घायल हृदय पर नमक छिड़क रही थी। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि अब तत्काल लड़ाई छेड़कर ही अपमान की इस आग को बुझाया जा सकता है। उसने बिछौने पर से उठकर अपने मंत्री को बुलाया और उसके आते ही पूछा—जानते हो प्रताप की सेना कहाँ है?

'जी हुजूर, हल्दीघाटी के उस पार। आज ही पक्की खबर मिली है।'

'तो कल ही हमारी सारी फौज उस पर हमला कर दे। और यह हुक्म एक-एक सिपाही को पहुँचा दिया जाये।'

'बहुत अच्छा जनाब!' मंत्री ने सलाम की और लौट गया।

आक्रमण का आदेश देने के बाद ही मानसिंह का हृदय कुछ शान्ति का अनुभव कर सका, यद्यपि शत्रु की उदारता घाव में फँसी नोक की तरह खटक रही थी। जब उसके सिपहसालार अगले दिन की मोरचाबन्दी के सम्बन्ध में सलाह-मशविरा करने के लिए आये तो उन्होंने देखा कि हुजूर मानसिंह साहब आँखें मूंदे मुस्कराहट-भरे चेहरे के साथ आराम फरमा रहे थे।

टीले-टीले पर युद्ध

: : १ : :

इधर प्रताप ने भी सोच लिया था कि मुगल सेना का आक्रमण कभी भी हो सकता है। युद्ध तो अनिवार्य था ही और मेवाड़ी सेना युद्ध के लिए प्रस्तुत भी थी। राणा रात-दिन में एक घड़ी भी आराम से नहीं बैठते थे। वह अपने सारे शिविर का चक्कर लगाया करते थे। रात का समय था। जेठ महीने की गरमी के कारण रात में भी हवा गरम थी। सभी छावनियों में सैनिक अपने शस्त्रास्त्रों को सहेज रहे थे। कहीं-कहीं हाथी-घोड़ों को जिरह-बख्तरों से सजाया जा रहा था। यहाँ भी आदेश दे दिया गया था कि सवेरा होते ही युद्ध छिड़ जायेगा। सभी नायकों की आँखों में वीरोचित उमंग थी। सारी मेवाड़ी सेना युद्धोत्साह से भरी लड़ाई की तैयारी में संलग्न थी। कहीं नायक आदेश दे रहे थे और कहीं सैनिक सलाह-मशविरा कर रहे थे।

जेठ की अँधेरी गरम रात में अपने सैनिक शिविर में घूमते हुए महाराणा प्रताप ने दो बूढ़ों को खिलखिलाकर हँसते सुना। युद्ध की अगली रात में खिलखिलाकर हँसनेवाले योद्धा मेरी सेना में हैं, यह जानकारी किसी भी सेनापति को आनन्द से विभोर कर सकती है। प्रताप को भी वह हँसी सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अन्दर की बातचीत सुनने के लिए छोलदारी के कपड़े से अपने कान लगा दिये। छोलदारी के अन्दर झाला मानसिंह और रामसिंह तोमर बातें कर रहे थे।

'क्यों होकम रामसिहजी, मौत भी बेचारी अपने से डरती है ?'

'हाँ होकम, तभी बेचारी को यह डर लगा रहता है कि झालाराणा के सामने चली गई तो कहीं वह मेरे झटके-बटके न कर दें।'

'इस बार राणाजी को हाथ में रखना बहुत मुश्किल दिखता है। मानसिंह ने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह मेवाड़ के राणा को जीवित या मृत पकड़कर ही रहेगा। सुना जाता है कि उसने अपने सरदारों के आगे ऐसी प्रतिज्ञा भी की है। देवताओं का अनुष्ठान और मनौतियाँ भी की जा रही हैं।' झालाराणा मानसिंह ने कहा।

इस लड़ाई में दो मानसिंह थे : एक थे राणा प्रताप के विश्वासपात्र और स्वामि-भक्त झालाराणा मानसिंह, जो उनके साथ थे; दूसरा मानसिंह मेवाड़ का द्रोही अम्बरपति मानसिंह, जो प्रताप के विरुद्ध था। नाम दोनों का मानसिंह था पर दोनों एक-दूसरे से कितने भिन्न और जुदा थे।

'क्या फरमा रहे हो आप ? मानसिंह और अनुष्ठान करे ! तुरकड़े का वह साला हिन्दू देवी-देवताओं को अनुष्ठान करके क्यों कष्ट दे रहा है ? उस नये मुल्ला को तो किसी पीर-औलिया की मनौती माननी चाहिए। फिजूल ही हिन्दू बनने का ढोंग करता है !' रामसिंह तोमर के स्वर में अकबर के सेनापति मानसिंह के प्रति तिरस्कार और उग्र आक्रोश था।

'होकम रामसिंहजी, हमारी ओर से जरा भी भूल नहीं होनी चाहिए। राणाजी का बाल भी बाँका हो गया तो हमारा जीना या मरना धूल बराबर हो जायेगा। आप तो जानते ही हैं कि राणाजी हमेशा जान छोड़कर दुश्मनों के बीच कूदते हैं। अपनी रक्षा का तो उन्हें कोई खयाल ही नहीं रहता। कल की लड़ाई देखने-जैसी होगी। मैंने तो तय कर लिया है कि राणाजी का साथ एक घड़ी के लिए भी नहीं छोड़ूंगा।' झालाराणा ने कहा।

'एक आदमी से क्या होगा ? आपका हुकुम हो तो मैं भी साथ रहूँ। यह बुढ़ापे की हड्डियाँ किस दिन काम आयेंगी ?'

'मैं गोपीनाथजी पुरोहित को भी अपने साथ रखूंगा। हैं तो वह ब्राह्मण-देवता, लेकिन जब तलवार हाथ में लेते हैं तो साक्षात् परशुराम ही बन जाते हैं।'

'अरे होकम, कहीं वह परशुराम हो नहीं बने रह जायें ? राणाजी की पूरी-

पूरी हिफ़ाजत करनी चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि राणाजी कल चारों चौगान तलवार के दाँव खेलेंगे।'

'पुरोहितजी महाराज को मैं पहचानता हूँ। उनके प्रति मुझे श्रद्धा भी है। चेतक का नस-नस के वह वाकिफ़गार हैं। मेरा तो विचार है कि....' आगे की बात झालाराणा ने इतने धीमे से कही कि बाहर खड़े प्रताप सुन न सके।

यह जानकर उनके आनन्द की सीमा न रही कि बड़े-बूढ़े सामन्त और सरदार भी उनकी सुरक्षा की इतनी चिन्ता करते हैं। वह चुपचाप छाया की भाँति वहाँ से खिसक गये। चलते हुए वह अपने शिविर के अन्तिम सिरे से भी आगे निकल गये। दो-एक सैनिकों ने ललकारकर उन्हें टोका तो राणाजी ने अपना परिचय देकर उन्हें आश्वस्त और उत्साहित किया। सेवक के लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है कि मालिक उसे सेवा में रत देखे।

परन्तु प्रताप को आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होंने लड़ाई के मैदान में एक छोटा-सा प्रेम-नाटक खेले जाते देखा। इस नाटक का नायक उनका विश्वासपात्र युवक शालिवाहन था। इस शालिवाहन को दुश्मनों की गति-विधि का पता लगाने का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा गया था। वृक्षों की ओट में खड़े रहकर प्रताप ने एक बड़ा ही अद्भुत वार्तालाप सुना। मेवाड़ी सेना के साथ स्त्रियों को न रखने का प्रताप का कड़ा आदेश था। लड़ाई के समय वह स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करते और सैनिकों से भी पूरी कट्टरता से उसका पालन करवाते थे। इसलिए जब उन्होंने एक युवती के कोमल और तीखे कंठस्वर को सुना तो बड़े ही आश्चर्य का अनुभव किया। वह जानते थे कि यौवन स्त्री और पुरुष के बीच अनेक कार्य-व्यापारों का कारण होता है। नारी-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों की वह जरा भी अवहेलना नहीं करते थे, और न उन्हें इस प्रकार के सम्बन्धों पर कोई आपत्ति ही थी। हाँ, जब इस प्रकार के सम्बन्ध युद्ध अथवा राज्य को हानि पहुँचाने की सीमा तक बढ़ जाते थे तो उन्हें बुरा लगता और वह विरोध करते थे। इसलिए लड़ाई के मैदान में शालिवाहन किसी स्त्री के साथ बोले-बतलाये और एकान्त में मिले-जुले, यह उन्हें जरा भी अच्छा नहीं लगा। वह छिपकर दोनों की बातें सुनने लगे। युद्ध के समय किसी भी सैनिक का कोई भी कार्य गुप्त और निजी नहीं होता; और फिर नारी का आकर्षण तो हमेशा ही युद्ध का पाँसा पलटता और

जय-पराजय का कारण बनता आया है। इसलिए भी वह छिपकर दोनो की बातें सुनने लगे।

'गौतमी, मैं नहीं जानता था कि तुम ऐसी नादानी करोगी! राणाजी को पता चल गया तो वह कभी क्षमा नहीं करेंगे और मुझे कड़ा दण्ड देंगे।' स्वर शालिवाहन का था और वह अपने समीप खड़ी हुई गौतमी को सम्बोधित कर कह रहा था।

'मैं सैनिक बनकर आई हूँ। क्या स्त्री सैनिक नहीं बन सकती? राणाजी को भले ही पता चल जाये।' यह गौतमी का स्वर था।

'तो सैनिक ही क्यों न बनी रही? स्त्री बनकर मेरे पास क्यों आई?'

'तुम हर बार संकटों के मुंह में कूद जाते हो शालिवाहन, और कल की लडाई कितनी भीषण और मार-काट से भरी होगी, यह तो जानते ही हो।'

'जानता क्यों नहीं! भीषण संग्राम के बिना कभी विजय प्राप्त हुई है? और फिर मुगल कितने साधन-सम्पन्न हैं!'

'सच है। परन्तु कल के युद्ध में कौन बचेगा और कौन मरेगा, इसे कोई बता सकता है?'

'नहीं। परन्तु चाहे सारी सेना कट जाये, राणाजी जीवित रहें, यह देखना और तदनुसार करना तुम्हारा, मेरा और सभी मेवाड़ी सैनिकों का परमधर्म है।'

'स्वीकार है शालिवाहन। और इसी लिए तो मैं आग्रह कर रही हूँ कि तुम्हारा और मेरा यहीं और इसी समय हथलेवा (विवाह) हो जाये।'

'पागल न बनो गौतमी! इस युद्ध के समाप्त होते ही हम अग्नि की साक्षी में एक-दूसरे का हाथ पकड़ेंगे। अब मैं ग्वालियर का राज्य पुनः प्राप्त करने की भी प्रतीक्षा नहीं करूँगा और तुम्हारे साथ विवाह कर लूंगा।'

'और यदि युद्ध में मैं मर गई?'

'तो मैं जीवन-भर कुँवारा रहूँगा।'

'लेकिन मैं कुँवारी रहकर मरना नहीं चाहती और....'

'रुक क्यों गई गौतमी! कह दो जो कुछ तुम्हारे मन में हो! अभी मुझे सारे शिविर का चक्कर लगाना है।'

'कहीं....कहीं....' गौतमी इससे अधिक कुछ न कह सकी।

शालिवाहन हँस दिया और गौतमी के अनपूछे प्रश्न को स्वयं उसी ने पूरा किया —कहीं मैं ही मर गया तो ? यही चिन्ता तुम्हें है न ?

'हाँ। तुम्हारे साथ चिता पर चढ़कर सती होने का अधिकार मैं चाहती हूँ ! विवाह के बिना मुझे यह अधिकार कैसे मिल सकता है ?'

'क्या तुम मुझे इतना स्वार्थी, नीच और असहिष्णु समझती हो कि मैं तुम्हारे साथ इसलिए विवाह कर लूं कि तुम मेरे पीछे जल मरो ?'

'मुझे विश्वास है शालिवाहन, कि नीच देवराज अवश्य विश्वासघात करेगा। वह तुम्हीं पर नहीं, मेवाड़ की स्वतंत्रता पर भी अवश्य हाथ उठायेगा। कुछ हो उसके पहले ही मुझसे विवाह कर लो शालिवाहन, एक बार मेरा हाथ पकड़ लो....'

'नहीं गौतमी, यह नहीं हो सकता। राणाजी का आदेश है कि सेना में युद्ध का ही कार्य-व्यापार चल सकता है, विवाह और प्रेम का नहीं।' शालिवाहन ने दृढ़तापूर्वक कहा।

तभी राणा प्रताप वृक्षों की ओट से बाहर निकल आये और उन्होंने आदेशात्मक स्वर में कहा—शालिवाहन, गौतमी का हाथ पकड़ लो और मुझसे मेरी छोलदारी में आकर मिलो।

यह आदेश देकर महाराणा पीठ मोड़कर वहाँ से चले गये।

शालिवाहन और गौतमी स्तब्ध रह गये। उन्हें अधिक आश्चर्य तो बाद में यह सुनकर हुआ कि महाराणा ने देवराज को सेना छोड़कर तत्काल चले जाने की आज्ञा दे दी थी।

अपने लिए सर्वस्व न्योछावर करने और प्राणों की बलि चढ़ाने की उत्सुकता का यह एक ही नहीं अनेक उदाहरण उस रात महाराणा ने स्वयं अपनी आँखों देखे। वह सोचने लगे कि क्या कारण है मेरे इस सौभाग्य का ? सवेरा होते ही युद्ध आरम्भ हो जायेगा। बड़ा भीषण युद्ध होगा इस बार। मुगल सेना संख्या में अधिक और साधन-सम्पन्न भी है। परिणाम मेवाड़ के लिए विनाश के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता। अकेले प्रताप को अपने प्राणों की बलि चढ़ानी होती तो कोई बात नहीं थी। परन्तु शालिवाहन और गौतमी-जैसे कई आशा और उछाह-भरे युवक इसमें प्रसन्नता से प्राणोत्सर्ग करने को प्रस्तुत थे।

और उनके अनुपमेय बलिदान व्यर्थ ही जाने को थे। क्यों बलिदान हो जाना चाहते थे वे ? क्यों और किसके लिए ? केवल प्रताप के लिए। पर कौन है यह प्रताप ?

सोचते-सोचते प्रताप का मन उनके शरीर की सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने आसपास की सभी वस्तुओं पर आच्छन्न हो गया। सारी रणभूमि पर वह छा गया। सेना के एक-एक सैनिक के हृदय में उसने प्रवेश किया। ऊँची-नीची पहाड़ी चोटियों पर दौड़ता हुआ प्रताप का वह मन सारे मेवाड़ की धरती पर फैल गया। प्रताप का मन मेवाड़मय हो उठा। अब प्रताप व्यक्ति नहीं, मेवाड़ का विराट रूप बन गये। मेवाड़ के वृक्ष, मेवाड़ के पहाड़, मेवाड़ के नदी-नाले और सरोवर, मेवाड़ के पशु-पक्षी और मनुष्य-प्राणी—सभी कुछ राणा के मन में समाने लगे। प्रताप का मन विराट् पुरुष के विराट् रूप की भाँति हो गया और उसमें मेवाड़ का एक-एक अणु समाने लगा। उनके लिए यह निश्चय करना कठिन हो गया कि वह मेवाड़ में है या सारा मेवाड़ उनके अन्दर है।

अभी वह इस बात का निर्णय कर ही नहीं पाये थे कि उन्हें अपने पूर्वज आँखों के आगे खड़े होते दिखाई दिये। बापा रावल, खुमाण, समरसिंह, पद्मिनी, हमीर, कुम्भा, संग्राम, मीराँ—सभी को प्रताप ने पहचाना और आदरपूर्वक प्रणाम किया। अब उनकी समझ में आया कि प्रताप एक व्यक्ति नहीं, इन परम योद्धा, पुण्यशाली पूर्वजों का उत्तराधिकारी है। उनकी धमनियों का रक्त मानव-शरीर-धारी इस प्रताप में भी बह रहा है। उनकी अर्जित सिद्धि का अंश इस प्रताप को भी उपलब्ध हुआ है। उनकी वीरोचित गौरवशाली परम्परा को आगे बढ़ाने-वाला मानव शरीर इस प्रताप को प्राप्त हुआ है। वह निरा मानव शरीर नहीं पूर्वजों के मेवाड़ का संचित सत्व भी है। मेवाड़ की भूमि के एक-एक रजकण ने उस शरीर का निर्माण किया है। सिसोदिया-वंश ने अपनी आत्मा के जागृत और गतिशील अंश से उसकी आत्मा का निर्माण किया है। मेवाड़ के सात सौ वर्ष के राणा-परिवार का अर्जित पुण्य उसे विरासत में मिला है। सात सौ वर्ष की वीरता ने उसके निर्माण में अपना योगदान किया है। आज के मेवाड़ का प्रतिनिधि सिसोदियों की सात सौ वर्ष की संस्कृति का प्रतिनिधि है।

मेवाड़ की प्रजा, सामन्त और सरदार, सैनिक और सामान्यजन हाड़-मांस

के प्रताप की नहीं, मेवाड़ के विराट् पुरुष, सिसोदियों के सात सौ वर्ष की संस्कृति के प्रतीक प्रताप की पूजा करते हैं। प्रताप का शरीर उन्हें मेवाड़ के जितना ही विशाल और बापा रावल तक चली जाती प्रकाश-रेखा के आलोक से जगमगाता प्रतीत हुआ।

सोचते-सोचते प्रताप का चेहरा आन्तरिक उल्लास से दीप्त हो उठा। वह व्यक्ति मिटकर प्रदेश, क्षणजीवी मानव शरीर मिटकर सात सौ वर्षों की सजीव जीवन-परम्परा बन गये।

आज उसी प्रकाश-रेखा को बुझाने के लिए, उसी जीवन-परम्परा को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए मुगल सेना दल बाँधकर आई हुई थी। बित्ता बराबर के मेवाड़ को उदरस्थ करने के लिए अकबरी आतंक अजगर का फन फैलाये फुँफकारता चला आता था। सत्ता, साधन और बुद्धि तीनों हों तो दूसरों का स्वतंत्र अस्तित्व कब अक्षुण्ण रह सकता है? मेवाड़ को मुगलाई हुकूमत लील ही गई तो मेवाड़ के लिए आँसू बहानेवाला कौन बचा रह जायेगा? कोई भी नहीं! फिर इस युद्ध का प्रयोजन ही क्या? हजारों सैनिकों को कटवाकर प्रताप किस उद्देश्य को सिद्ध करना चाहते थे?

मेवाड़ की रक्षा का उद्देश्य? क्या है मेवाड़? प्रतापसिंह का छोटा-सा पहाड़ी राज्य ही तो। उसी को बचाने के लिए हजारों सैनिकों को कटवाया जाये? हजारों जीवनों को खंड-खंड किया जाये? किस लिए? क्या सुख के लिए? लेकिन सुख पाने के इच्छुक तो अकबर के चरणों-तले सुख के फव्वारों में नहा रहे थे। फिर प्रताप ने अपने लिए सुख के उस स्नान को वर्जित क्यों माना? जब सारा भारत अकबर के पाँवों-तले लोट रहा था, छोटे-से मेवाड़ ने उसमें सम्मिलित होना अस्वीकार क्यों कर दिया?

उसी समय छोलदारी के आगे बँधा हुआ चेतक हिनहिना उठा। प्रताप का रोम-रोम पुलकित हो गया। मेवाड़ केवल भूमि का टुकड़ा ही न था। वह तो था धधकता हुआ ज्वालामुखी, जो अपने पर आक्रमण करनेवाली किसी भी शक्ति को अपनी अग्नि-शिखाओं से जलाकर भस्मीभूत कर देता। मेवाड़ था अपने पर आक्रमण करते आये सभी आक्रान्ताओं का प्रबल प्रतिरोध करनेवाला वज्र-खंड! चाहे सारा भारत मेवाड़ पर आक्रमण कर दे, परन्तु वह कभी किसी के अधीनस्थ

नहीं होगा। मेवाड़ का अर्थ ही है स्वाधीनता की भूमि। उसकी इच्छा के विरुद्ध विश्व-विजयी साम्राज्य भी उस पर अधिकार नहीं कर सकता। मेवाड़ उसका भी प्रतिरोध करने को प्रस्तुत था।

क्या हिन्दू प्रताप मुगल सल्तनत का इसलिए प्रतिरोध कर रहे थे कि वह इस्लाम के रंग में रँगी हुई थी? क्या सिसोदिया-कुल इस्लाम का शत्रु था? यह सच है, इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि सिसोदिया-वंश पिछले सात सौ वर्षों से इस्लाम के विरुद्ध लड़ता आया था। मेवाड़ के हिन्दू-कुल-सूर्य राणा हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध हुए तो उन्होंने अनुचित ही क्या किया? यह उन्होंने इस्लाम के प्रति वैर के कारण नहीं, अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रेरित होकर ही किया था।

स्वयं प्रताप को भी इस्लाम से कोई दुश्मनी नहीं थी; हो भी नहीं सकती थी। हकीमखाँ सूर और उसकी इस्लामी सेना को प्रताप ने आश्रय दिया था। प्रताप के पिता राणा उदयसिंह ने अपने सिर पर भयंकर संकट लेकर भी बाज-बहादुर की अकबर से रक्षा की थी। मालवा के सुलतान को कुम्भा राणा ने कैद से छुड़ाया ही नहीं था, उसका जीता हुआ राज्य भी लौटा दिया था। हिन्दू धर्मावलम्बी सिसोदियों को इस्लाम से वैर होता ही किस लिए? कबीर साहब कमाल, नानक आदि सूफी सन्तों की वाणी प्रताप ने भी सुनी थी। मुस्लिम फकीरों और औलियों ने प्रताप को भी कई बार दर्शन और आशीर्वाद दिये थे।

लेकिन जब इस्लाम आक्रान्ता वनकर मूर्ति-मन्दिरों को तोड़ने और लाठी दिखाकर हिन्दू धर्म को ठोकर लगाने लगे तो हिन्दू धर्म को भी खम ठोककर उसके मुकाविले के लिए मैदान में आना ही होगा। धर्म-सहिष्णुता कायरता का रूप धारण करे, इससे तो अच्छा है कि वह विलुप्त ही हो जाये। इस्लाम के तलुए सहला-कर जीवित रहनेवाला हिन्दू धर्म, धर्म नहीं, और न उसकी शोभा है। इससे तो अच्छा है कि वह इस्लाम से लड़कर मर मिटे। माना कि कई हिन्दू-धर्मावलम्वी राजाओं ने इस्लामी शासकों की दासता स्वीकार कर ली थी; लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना कि हिन्दू धर्म ही इस्लाम की शरण में चला गया, गलत होगा। प्रताप और उनके पूर्वज विधर्मियों की दासता स्वीकार करने की विचार-

धारा के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करते रहे। उनके संघर्ष पराये धर्म के विरुद्ध नहीं थे। जीवन और धर्म की रक्षा करने के लिए मुंह में तिनका लेकर विधर्मी को अपना धर्म और अपनी कन्या देनी पड़े, इससे तो अच्छा है कि वह धर्म और वह जीवन दोनों ही नष्ट हो जायें। ऐसी स्थिति में मरकर ही [illegible] है। दासता में रहकर जानेवाला तो जीवन्मृत ही होता है। और सिसोदिया कभी जीवन्मृत नहीं रह सकता। मेवाड़ और मेवाड़ी कभी इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता। हिन्दू धर्म के लिए भी यह स्थिति असहनीय है। और प्रताप तो कभी इस तरह की बात सोच ही नहीं सकते। प्रताप के निर्माण में मेवाड़ की धरती और सिसोदिया राजकुल की सात शताब्दियों का ही नहीं, हिन्दू धर्म का भी हाथ था। प्रताप मेवाड़ के ही नहीं, हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व के भी प्रतिनिधि थे। मेवाड़ के बाहर एक हिन्दू के रूप में भी उनका कुछ उत्तरदायित्व था। इसी लिए मुस्लिम धर्म और शासन-सत्ता को एक साथ मिलानेवाले राज्य का जीवन-भर सामना करना प्रताप का परमधर्म और एकान्त उद्देश्य बन गया था।

इस दृष्टि से देखें तो प्रताप का व्यक्तित्व विराट् ही नहीं अतिकाय विराट् स्वरूप का था। जगत् में राज्य और धर्म और सत्ता के नाम पर आक्रमण करनेवाली किसी भी प्रवृत्ति का प्रबल विरोध करने का वह प्रतीक बन गये थे। वह मेवाड़ के भूमिपालक थे। सिसोदियों की सात शताब्दियों के वे उत्तराधिकारी थे। विधर्मियों के पाँव-तले रौंदे जाते हिन्दू धर्म के अनन्य रक्षक और किसी भी विदेशी आक्रमणकारी के प्रबल विरोधी थे। किसी भी दृष्टि से देखें, प्रताप निरे व्यक्ति नहीं, अपने युग के प्रतीक ही बन गये थे।

युद्ध की लालसा और आक्रमण के लिए किसी का वध करने की उन्हें जरा भी इच्छा नहीं थी। अपने आदर्शों की रक्षा के ही लिए उन्हें संहारक का रूप धारण करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग भी तो नहीं था। इसे समझदारी भले ही न कहा जाये, परन्तु सच्चाई यही थी। मेवाड़ पर मुगल आक्रमण का प्रतिरोध करने का अर्थ उन दिनों अकबर की विश्वव्यापी आक्रमण नीति का प्रतिरोध करना था। और अब तो प्रताप के जीवन के साथ ही युद्ध जुड़ गया था। उन्हें हर समय और हर क्षण युद्ध करते रहना होगा। प्रताप के

झुकने का अर्थ होता मेवाड़ की भूमि का झुकना, स्वाधीनता का दासता के आगे सिर नवाना; प्रताप सम्राट् अकबर की सत्ता स्वीकार कर लेते तो उनकी सात-सात पीढ़ियों के बलिदान व्यर्थ हो जाते। हिन्दू प्रताप इस्लाम धर्मावलम्बी अकबर के पाँव पकड़ लेते तो सारा हिन्दुत्व—ऋषियों-मुनियों और योगियों द्वारा प्रतिपादित और निर्मित हिदुत्व मुस्लिम धर्म का चरण-सेवक वन जाता। प्रताप के पराजित होने का अर्थ होता दुनिया-भर के शोषितों के शोपण का स्थायी हो जाना। राणा काँप उठे। नहीं, ऐसा महापाप वह कभी नहीं कर सकते। प्रताप व्यक्ति बनकर भाग नहीं सकते। वह विराट् हैं और उन्हें विराट् ही रहना होगा। जहाँ भी शोषण होगा, आक्रमण होगा वहाँ उन्हें उसके प्रतिरोध में खड़ा होना ही होगा; और राणा की कर्मभूमि मेवाड़ ही होगा उसकी प्रयोग भूमि।

जोर से नगारे बजने लगे। प्रताप अपने विचारों से जागृत हुए। विचारों की कल्पना-भूमि से उतरकर वह कर्म की ठोस धरती पर आ खड़े हुए। हथियारों से लैस तो वह थे ही। अब मस्तक पर टोप धारण किया और अपनी छोलदारी से बाहर निकल आये। उन्हें देखते ही सारी सेना ने जयनाद किया—जय एकलिंग! जय महाराणा प्रताप! हर हर महादेव!

सारी सेना तैयार खड़ी थी। बस, आदेश मिलने की देर थी।

'अन्नदाता, हाथी पर विराजिए। रामप्रसाद हाथी तैयार खड़ा है।' शालिवाहन ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

'रामप्रसाद तैयार है तो उसे आने दिया जाये, लेकिन सवारी तो मैं चेतक पर ही करूँगा। आज उसे अप्रसन्न नहीं कर सकता।'

महाराणा को युद्ध में घोड़े की सवारी ही पसन्द थी। वैसे हाथी की सवारी अधिक उत्तम और अधिक सुरक्षित मानी जाती है। घोड़ा अधिक चपल होने के कारण सवार को संकट-भरी जगहों में ले जा सकता है, परन्तु राणा ने संकट के मुंह में जाना ही पसन्द किया।

'ऐसे समाचार मिले हैं कि मानसिंह हाथी पर ही आ रहे हैं।'

'वह भले ही हाथी पर आयें। वह हाथी पर आना गौरव की बात समझते हों तो समझें। मुझे तो मेरा चेतक ही पसन्द है। अच्छा, अब हम मुगल सेना के आक्रमण को दो दिशाओं से रोकेंगे। एक ओर की कमान जनाब हकीमखाँ

सँभालेंगे, दूसरे ओर की मैं।' यह कहकर प्रताप ने चेतक की गरदन थपथपाई और वह शत्रु-सेना को चुनौती देता हुआ-सा जोरों के साथ हिनहिना उठा।

प्रताप ने सवारी के लिए रकाव में पाँव रखा ही था कि पास खड़े हुए दो वृद्ध योद्धाओं में से एक ने कहा—अन्नदाता, सेना के आप स्वामी हैं, यह सच है; फिर भी आज आदेश देने का अधिकार हमें सौंपा जाये।

बोलनेवाले झालाराणा थे और बूढ़े रामसिंह तोमर उनके पास खड़े थे।

'और मैं क्या करूँगा झालाराणा?' प्रताप ने पूछा।

'हम आपको आज्ञा नहीं देंगे, लेकिन आपके अतिरिक्त सभी को हमारी आज्ञा माननी होगी।' रामसिंह ने कहा।

'आज्ञा तो मैं भी आपकी मानता हूँ। आप मेरे बुजुर्ग जो हैं।'

'यह सच है। परन्तु आज के युद्ध-संचालन का सारा उत्तरदायित्व, अथ से लेकर इति तक, हमारा ही हो।' झालाराणा ने अपनी माँग पेश की।

'क्या मेवाड़ के वयोवद्ध सरदारों को मेरा विश्वास नहीं?'

'आप पर विश्वास तो है, परन्तु आज के मरण-उत्सव में हम अपने बुढ़ापे को सार्थक करना चाहते हैं। और यह हमारी अन्तिम माँग है महाराज।' झाला-राणा ने आग्रह किया।

'अच्छी बात है, तो ऐसा ही हो। मैं स्वयं भी आपकी आज्ञा में ही रहूँगा।' प्रताप ने हँसकर कहा। उनकी समझ में नहीं आया कि दोनो बूढ़े सरदार क्यों ऐसा आग्रह कर रहे थे। उन्हें अप्रसन्न करना भी प्रताप को अच्छा न लगा।

'नहीं-नहीं, आपके आज्ञा में रहने की बात नहीं है। बात केवल इतनी-सी है कि मैं निरन्तर आपके साथ रहूँगा—अपने झाला वीरों के साथ, और रामसिंहजी रहेंगे कुँवर अमरसिंहजी के साथ।'

'और संकट दिखते ही आप मुझे भागने का हुकुम फरमायेंगे, क्यों?' अब प्रताप को इन दोनो वृद्ध वीरों के आग्रह का कारण समझ में आ गया था।

'नहीं महाराज, आज के दिन लड़ाई के मैदान से कोई लौट नहीं सकता, न भाग ही सकता है। हम भागने का आदेश दे ही कैसे सकते हैं? क्या सिसोदिया कभी लड़ाई के मैदान से भागा है? जीते-जी तो मेरे मुंह से किसी को लौटने का आदेश नहीं दिया जायेगा। और महाराज, राजपूत कभी पीठ के घाव से

नहीं मरा है; वह मरा है तो छाती पर घाव झेलकर ही। राजपूत वीरों की इसी रीति का हम आज भी निर्वाह करेंगे।' झालाराणा ने कहा।

तत्काल महाराणा प्रताप ने सारी सेना के नाम यह आदेश प्रसारित कर दिया कि युद्ध की मोरचेबन्दी का अन्तिम आदेश मानसिंह झाला अथवा रामसिंह तोमर का होगा।

'खमा अन्नदाता, घणी खमा। मेरे राणाजी ने हम बूढ़ों की लाज रख ली। आज हल्दीघाटी में ऐसा विकट संग्राम होगा कि मुगलों और मेवाड़ियों की सात-सात पीढ़ियाँ याद करती रहेंगी। जय एकलिंग ! महाराणा प्रताप की जय ! हर हर महादेव !' बूढ़े रामसिंह तोमर ने वीरोचित उल्लास से कहा और बड़ी शान से अपनी दाढ़ी पर हाथ फिराया।

जैसे ही सूर्य की पहली किरण पृथ्वी पर उतरी, सूर्यवंशी महाराणा की सेना के कूच का डंका बजा और मेवाड़ी सेना ने युद्ध के लिए प्रयाण किया। इधर से रणबाँकुरे राजपूत चले, उधर से मुगल सैनिक आगे बढ़े। इधर से हर हर महादेव का स्वर उठ रहा था, उधर से अल्लाहो अकबर का साद गूंज रहा था। महाप्रभु के नाम पर लड़ती हुई मनुष्यता को प्रभु ने हमेशा युद्धरत ही रखा है। ढोल-दमामों और भेरी-रणसिंघों का स्वर वातावरण में गूंज उठा। सूंड में पकड़ी तलवारों को नचाते हुए मदोन्मत्त हाथी झूमते-झूमते इस तरह चल रहे थे मानो छोटे-मोटे पहाड़ ही चले जा रहे हों। बिजली-जैसे चंचल घोड़े थिरकते, हिनहिनाते, बार-बार लगाम चबाते, अलिफ होते बढ़ रहे थे। पैदल सैनिकों और घुड़सवारों के शरीर से मानो ज्वालामुखी की लपटें निकल रही थीं। चारों ओर शस्त्रास्त्र अग्नि की लपटों की भाँति चमकते दिखाई दे रहे थे। आन-बान से चलती हुई दोनो सेनाएँ एक-दूसरे के सामने आकर खड़ी हो गईं। चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ थीं। बीच में विस्तृत समतल भूमि निकल आई थी। थोड़ी देर तक दोनो सेनाएँ एक-दूसरे के सामने अपने हथियारों को तौलती खड़ी रहीं। दोनो पक्ष के सैनिक आक्रमण के लिए उतावले हो रहे थे। केवल आदेश की प्रतीक्षा थी। मौत का डर किसी को भी नहीं था। सारे युद्धक्षेत्र को जैसे बिजली छुआ दी गई थी। न किसी के मन में भय था, न जीवन-रक्षा की चिन्ता। सब अपने प्राणों को हथेली पर लिये खड़े थे।

मेवाड़ी सेना की ओर से वृद्ध झालाराणा ने आगे आकर सामने खड़े सैनिकों को ललकारकर कहा—मेवाड़ के सपूतो ! मुगल सेना संख्या में अधिक है तो क्या ! लड़नेवाला वीर [illegible] करता। दो हाथों के बीस हाथ बनाओ। एक-एक जवान दस-दस से भिड़ जाओ। इतना ही ध्यान रहे कि एकलिंगजी का झण्डा न झुकनें पाये। कोई पीठ न दिखाये। मेवाड़ के राणा और राजकुमार का बाल भी बाँका न हो। सिर कट जाये तो धड़ से लड़ो। आज इस तरह तलवार के दाँव दिखाओ कि आकाश के देवता भी धन्य-धन्य कर उठें। राजपूतो, अपनी मा के दूध को सार्थक करो ! आगे बढ़ो ! खाँ साहब, आप दाहिनी ओर से हल्ला बोलिए। भाया रामसिंहजी, आप शत्रु की सफों को बीच से चीरते चलिए। मुगल हाथियों के किले को काटकर गिरा दो ! वीरो, मैं और राणाजी बायीं ओर से दुश्मन पर मिलते हैं। जय एकलिंग, महाराणा की जय, हर हर महादेव !

युवकों को भी लज्जित करनेवाले झालाराणा के इन उत्साहप्रद शब्दों ने सारी सेना में बिजली का संचार कर दिया। हर हर महादेव के गगनभेदी नारों के साथ मेवाड़ी सेना तीन भागों में बँट गई और शत्रु पर टूट पड़ी।

सामने से भी अल्लाहो अकबर का भीषण नाद सुनाई पड़ा और दोनों सेनाओं के सैनिक एक-दूसरे से गुथ गये। हाथी चिंघाड़ने, घोड़े हिनहिनाने, तलवारें झन-झनाने, धनुष टंकारने, भाले सनसनाने और सैनिक हुँकारने लगे। मौत का तांडव शुरू हो गया। चारों ओर धूल उड़ने लगी। उगते हुए सूर्य की किरणों का ताप असह-नीय हो उठा। 'शाबाश ! आगे बढ़ो ! पाँव पीछे न हटें ! अल्लाहो अकबर ! जय एकलिंग ! हर हर महादेव !' केवल यही शब्द और तलवारों की खटाखट सुनाई पड़ती थी। घमासान युद्ध होने लगा। दोनों सेनाएँ वज्र दीवाल की भाँति अड़ी हुई थीं। न कोई आगे बढ़ता था और न कोई पीछे हटता था। आगे बढ़ रहा था केवल एक सूर्य और वह भी बहुत दूर आकाश में।

'महाराज ! आप बहुत आगे बढ़-बढ़कर वार कर रहे हैं।' वृद्ध झालाराणा ने प्रताप को रोकते हुए कहा। प्रताप शत्रु सैनिकों पर चोटें करते हुए निरन्तर आगे ही बढ़ते जा रहे थे।

'चेतक रुकता नहीं झालाराणा !' प्रताप ने मार्ग रोककर खड़ी हुई एक मुगल टुकड़ी को साफ करते हुए कहा।

'रोकना चाहिए महाराज ! हमारे पीछे भी तो रक्षा-पंक्ति होनी चाहिए। हम अकेले आगे बढ़ते जा रहे हैं।'

'रक्षा करनेवाला तो वह सर्वव्यापी ईश्वर है।'

'लेकिन राणाजी, व्यर्थ संकट सिर पर लिया ही क्यों जाये ? विजय हमारी निश्चित है, यदि आप जरा चेतक की लगाम खींचे रहें।'

'लेकिन मैं तो जल्दी-जल्दी मेवाड़ के मेहमान मानसिंहजी से मिलना चाहता हूँ।'

'लेकिन मुगल सेनापति आपकी तरह तो आगे बढ़ेंगे नहीं; वह सेना के मध्य में होंगे या उसके पीछे।'

'मैं उसी को तो ढूंढ़ रहा हूँ झालाराणा। वह मुझे पकड़ने आया है। जीवित या मृत पकड़ना चाहता है। मैं जा खड़ा होता हूँ उसके सामने। हो हिम्मत तो पकड़े।' प्रताप ने कहा और चमकती तलवारों और उछलते भालों की झड़ी के बीच से मार्ग बनाते हुए आगे बढ़ गये। चेतक उन्हें इस तरह लिये जा रहा था मानो दुश्मनों के साथ आँख-मिचौनी खेल रहा हो। राणा की यह फुर्ती और जोश देखकर झालाराणा का कलेजा धड़कने लगा।

'मेवाड़ के सपूतो, बढ़ाओ अपने घोड़े! राणाजी को एक क्षण के लिए भी अकेला मत छोड़ो।' यह कहकर झालाराणा ने अपने घोड़े को एड़ लगाई।

ढेर-के-ढेर सैनिक कट-कटकर धरती पर गिरने लगे। हकीमखाँ ने दाहिनी ओर से मुगल सेना पर जबर्दस्त मार कर रखी थी। यहाँ तक कि शत्रु सेना के पाँव डगमगाने लगे। बीच में बूढ़े रामसिंह अपने तीनों बेटों के साथ हाथियों को खदेड़ रहे थे। युद्ध में उतरा हुआ हाथी बहुत ही वेगवान और संहारक होता है। रामसिंहजी अपने हाथियों से सामना कर रहे थे और ऐसा लग रहा था मानो दो तूफानी समुद्र एक-दूसरे से भिड़ गये हों। युद्धरत हाथियों की ही भाँति महावत और सैनिक भी उत्तेजित होकर लड़ रहे थे। बायीं ओर से झालाराणा और प्रताप शत्रु की सेना को दबाते बरछे की नोक की तरह आगे बढ़ते जा रहे थे।

मानसिंह का आदेश था कि राणा को जीवित या मृत पकड़कर उपस्थित किया जाये। इसलिए जहाँ भी राणाजी दिखाई देते उनके चारों ओर मुगल सैनिकों की भीड़ लग जाती थी। मानसिंह ने मोरचेबन्दी ही ऐसी की थी कि

ज्यादा-से-ज्यादा मुगल सैनिक राणा के पीछे लगाये जा सकें। मुगल सेना के मध्यवर्ती भाग में मानसिंह का हाथी खड़ा था और वह स्वयं लोहे के एक मजबूत हौदे में सुरक्षित बैठा दोनों सेनाओं का आगे बढ़ना और पीछे हटना देख रहा था।

मुगल सेना सुशिक्षित थी। संख्या में भी अधिक और युद्ध के सभी साधनों से सम्पन्न थी। आज की लड़ाई में कई मोरचे मारे हुए अनुभवी सेनानायक भी मानसिंह के साथ थे। उसे अपनी विजय का पूर्ण विश्वास था। वह जानता था कि लड़ाई में केवल वीरता से नहीं, संख्या-बल और साधनों की विपुलता से ही विजय-लाभ किया जा सकता है। उसके दाहिने पार्श्व, मध्य और बायें पार्श्व पर जो लड़ाइयाँ हो रही थीं उनसे वह सन्तुष्ट प्रतीत होता था। मेवाड़ी सैनिक बड़े जोश से लड़ रहे थे, पर वह जानता था कि वे व्यर्थ ही अपने को कटाये दे रहे हैं। उनका जोश निश्चय ही मुगल टुकड़ियों को पीछे हटा रहा था, परन्तु अकेला जोश कब तक काम देता? कटी हुई मुगल टुकड़ियों का स्थान लेने के लिए दूसरी टुकड़ियाँ आ उपस्थित होती थीं, परन्तु गिरे हुए राजपूत सैनिकों का स्थान लेने के लिए वहाँ कोई नहीं था। मानसिंह निश्चिन्त था कि जोश की यह काटती और स्वयं कटती लहर अन्त में समाप्त हो जायेगी और विजय का सेहरा उसी के सिर बँधेगा।

हकीमखाँ सूर को रोकने के लिए मानसिंह ने शियाबुद्दीन नामक अनुभवी सेनानायक को भेजा और रामसिंह तोमर के सामने के लिए अपने ही सगे भाई माधवसिंह तथा खेंगार को सुशिक्षित हाथियों की एक टुकड़ी के साथ आगे बढ़ाया। मेवाड़ी हाथियों को डराने और भड़काने के लिए बाणों की झड़ी और बारूद के धड़ाकों की योजना भी की गई, जिसमें भागते हुए मेवाड़ी हाथी मेवाड़ी सैनिकों को अपने पाँव-तले रौंद दें। मानसिंह को पूरा विश्वास था कि मेवाड़ी सैनिकों का पहला उभार शान्त होते ही मुगल सेना अवश्य आगे बढ़ेगी। वह सेना के मध्यवर्ती भाग से तीरों की लगातार वर्षा करवा रहा था। आवश्यकता पड़ने पर बन्दूकधारी सैनिकों को काम में लाने की भी उसकी योजना थी।

मुगल सेना के बायें पार्श्व पर भीषण और घमासान युद्ध हो रहा था। महाराणा प्रताप अपने बुजुर्ग सरदार झालाराणा के साथ इसी पार्श्व पर शत्रु सैनिकों

को काटते हुए आगे बढ़ रहे थे। मुगलों की पूरी शक्ति उन्हें आगे बढ़ने से रोकने और साथ ही घेरने के लिए लगी हुई थी। मानसिंह ने इस पार्श्व पर सैनिकों और सैनिक साधनों का इतना अधिक केन्द्रीयकरण कर दिया था कि किसी भी क्षण प्रताप के पकड़े जाने की उसे आशा थी और वह इन शुभ समाचारों को सुनने के लिए उत्सुक भी हो रहा था। लेकिन दोपहर होने आई और उसे अभी तक यह शुभ समाचार नहीं मिले। वह सोच ही रहा था कि क्या स्वयं मुझी को आगे बढ़ रहा होगा कि उसने बाये पार्श्व के सैनिकों को पीछे हटते और बिखरते देखा। और उसने यह भी देखा कि मेवाड़ी सैनिकों की एक छोटी-सी टुकड़ी मुगल सेना को काटती हुई उसी की ओर बढ़ती चली आ रही है।

क्या हुआ, मानसिंह सोचने लगा, क्या प्रताप पकड़ तो नहीं गया? मेवाड़ का राणा इसी ओर क्यों बढ़ता चला आ रहा है? घोड़ा भी वही नीले रंग का चेतक है। सवार भी वही राणा प्रताप है। लेकिन नहीं, महाराणा प्रताप पकड़कर नहीं आ रहे थे। [illegible] बढ़ रहे थे। चारों ओर तीरों की वर्षा हो रही थी। हथियार चमक रहे थे। तलवारें चल रही थीं। राह रोकने के लिए बहादुर मुगल सैनिक दीवाल बनकर खड़े हो जाते थे। परन्तु प्रताप का चेतक रुकता न था। वह किसी बाधा की परवाह ही नहीं करता था। प्रताप की तलवार भी बराबर चलती जा रही थी। एक क्षण का विश्राम और विराम भी वह नहीं कर रही थी। मुर्दों का ढेर लगाते, वेदकालीन मरुत की भाँति झंझा का प्रबल झोंका बने राणा प्रताप निरन्तर आगे और आगे ही बढ़ते जा रहे थे। अभी मानसिंह उन्हें बन्दी बनाने का आदेश देने की बात सोच ही रहा था कि चेतक हाथी के सामने आकर खड़ा हो गया। मानसिंह को लगा जैसे साक्षात् काल प्रताप का रूप धारण करके आ खड़ा हुआ हो। चेतक और प्रताप के शरीर से रुधिर की धाराएँ बह रही थीं। उस बहते हुए शोणित ने प्रताप के रूप को बहुत ही विकराल कर दिया था।

'कहाँ हैं मानसिंह?' प्रताप ललकार उठे, 'मैं उनसे मिलने आया हूँ।'

'वह तो हाथी पर विराजमान हैं।' प्रताप के ही एक सैनिक ने, जो उनका छत्र उठाये था, जवाब दिया।

'हाथी के ऊपर? हाथी पर तो शाहजादा बैठता है या राजकुमार। नौकर

वहाँ नहीं बैठ सकता। उसके बैठने की वह जगह नहीं।' प्रताप ने कहा।

हाथी के हौदे में से मानसिंह ने छिपकर देखा। प्रताप को मानसिंह के उस चेहरे में एक देशद्रोही, प्रजाद्रोही और राजद्रोही की मूर्ति दिखाई दी।

'पकड़ लो! हाथी की सूंड चलाओ।' मानसिंह ने कहा।

प्रताप ने भी मानसिंह के इस आदेश को सुना। आदेश मिलते ही हाथी ने अपनी सूंड में पकड़ी हुई तलवार से जोर का वार किया। एक क्षण प्रताप हाथी और मानसिंह की ओर देखते रहे और तब उन्होंने चेतक की गरदन थपथपाकर कहा—चेतक मेरे पवन-पंखी अश्व! उठा अपने पाँव! दबा हाथी का गंडस्थल! उड़ चल मानसिंह के पास! शाबाश!

यह सुनते ही चेतक ने छलांग भरी और हाथी की तलवारधारी सूंड के वार की परवाह न करते हुए अपने अगले दोनो पाँव उसके गंडस्थल पर रख दिये। इस अकस्मात आक्रमण ने हाथी को दिग्मूढ़ कर दिया। वह स्तम्भित रह गया। प्रताप ने अपना लम्बा भाला सँभाला और चेतक की रकाबों पर खड़े होकर गरज उठे—जय एकलिंग! मानसिंहजी, मुझे तो आप जब पकड़ सकेंगे तब पकड़िएगा। लेकिन मेवाड़ी भाले का जोर देखना हो तो एक सच्चे राजपूत की तरह हाथी के हौदे से बाहर निकल आइए। बेचारे सैनिकों को व्यर्थ ही क्यों कटवा रहे हैं? आइए हम दोनो लड़कर युद्ध का निर्णय कर लें।

चेतक अभी तक हाथी के गंडस्थल पर चिपका हुआ था। वह जोर से हिन-हिनाया। मानसिंह ने बाहर आना सुरक्षित नहीं समझा। नीचे भयंकर मार-काट मची हुई थी। सब यही सोच रहे थे कि महाराणा प्रताप अब मानसिंह को जरूर मार डालेंगे। क्षण-भर के लिए तो सबकी आँखें ऊपर का दृश्य देखने में लगी रह गईं। निमिष-भर को नीचे हो रहा युद्ध रुक गया।

'राजाजी, बाहर निकलने का साहस नहीं हो रहा है क्या? अच्छी बात है, छिपे रहिए लोहे की दीवालों के पीछे। लेकिन मेरा यह भाला लोहे की दीवालों को भेदकर भी आपको ढूंढ़ निकालेगा। अच्छा होता कि आप सामने आ जाते। खैर, जीवित रह गये तो जाकर कहिएगा अपने बहनोई अकबरशाह से कि मेवाड़ के अश्व ने मुगलों के मातंग के मदभरे मस्तक पर अपनी टापों के निशान लगा दिये हैं। जय एकलिंग!'

यह कहकर प्रताप ने पूरी ताकत से अपने भाले को खींचकर हौदे पर दे मारा। भाले का फल हौदे की लोहे की दीवालों को चीरता हुआ अन्दर धँसता चला गया। राणा ने लगाम के संकेत से चेतक को हाथी के गंडस्थल से नीचे उतारा। महावत तो कभी का मर चुका था। घोड़े के नीचे उतरते ही हाथी को लगा कि जो बला सिर पर चढ़ गई थी वह उतर गई है और मैं मुक्त हुआ! वह ऐसा बौखलाया कि उसी क्षण पीछे की ओर मुड़कर भाग चला।

'महाराणा प्रताप की जय! हर हर महादेव!' वहाँ उपस्थित सभी मेवाड़ी सैनिक विजयोल्लास में मस्त होकर पुकार उठे। राणा की इस वीरता ने, क्या मुगल और क्या मेवाड़ी, सभी सैनिकों को विस्मित कर दिया था। मानसिंह के हाथी को भागते देख मुगल सेना के पाँव उखड़ गये। सब यही समझे कि मानसिंह मारा गया और हमारी पराजय हुई। महाराणा प्रताप चाहते तो भागती हुई मुगल सेना को आनन-फानन पीटकर रख देते, लेकिन सिसोदिया वीर कभी भी पलायन करते हुए सैनिकों पर हाथ नहीं उठाता। पीठ पर वार करने की मेवाड़ियों की रीति हो नहीं थी।

प्रताप भागती हुई मुगल सेना की ओर देखते हुए खड़े थे और दम ले ही रहे थे कि बायें पार्श्व की ओर से झालाराणा वहाँ बवण्डर की भाँति दौड़े आये और बोले—महाराज, महाराज! आपने तो हद कर दी। अब आप अकेले एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते . . . .

'मुझे राजा मानसिंहजी से मिलना है। मेरे वह मेहमान भूखे गये, उन्हें तृप्त करना मेरा धर्म है।'

'जीत हमारी है महाराज। लेकिन आपको इस तरह अकेले और असुरक्षित आगे नहीं बढ़ने दिया जा सकता। मानसिह जीवित रहा तो फिर अवश्य लौटेगा।'

'मैं, चेतक और मेरा भाला अगवानी के लिए तैयार ही है।'

'आप और चेतक तो घावों से छलनी हो रहे हैं महाराज!'

'अरे, कहाँ? मुझे तो कुछ भी अनुभव नहीं होता।' महाराणा ने हँसकर उत्तर दिया।

: : २ : :

मानसिंह ने प्रताप के उस विकराल भाले को हौदे की दीवाल फोड़कर अन्दर धँसते देखा। उसे लगा कि साक्षात् मौत ही धँसती चली आ रही है। वह सिकुड़ गया। वास्तव में उसने अपनी देह को स्वयं नहीं सिकोड़ा, वह अपने-आप सिकुड़ गई। दूसरा भाला किस ओर से आ रहा है यह सोचने तक का मौका मानसिंह को नहीं मिला और उसने अनुभव किया कि हाथी भागा जा रहा है। अरे, यह क्या हो गया? मुगल सेना हार गई क्या? महावत तो जरूर ही मारा गया। फिर उसने राजपूतों का विजयोल्लास से भरा जयजयकार सुना। सैनिकों की भगदड़ की आवाज भी उसके कानों में पड़ी। उसने चोर की तरह सावधानी से गरदन निकालकर हौदे के बाहर देखा। सच में उसका अपना हाथी पीछे की ओर भागा जा रहा था और मुगल सैनिकों के पाँव भी उखड़ चले थे। मानसिंह को अपनी विजय और कीर्ति की कहानियाँ याद हो आईं। मुगलों के लिए अपने हाथों जीते हुए इलाके और प्रदेश याद हो आये। यह भी याद आया कि उसने आज तक कभी पाँव पीछे नहीं हटाया था। दाँत भींचकर और मुट्ठियाँ बाँधकर वह कह उठा, 'क्या छोटा-सा मेवाड़ मेरी कीर्ति को धूल में मिला देगा? क्या प्रताप के भाले से मैं डर गया। पराजित मानसिंह अकबर को क्या मुंह दिखायेगा! मान, तुम तो मौत से कभी डरे नहीं, आज यह दुर्बलता कैसी?'

वह फुर्ती से हौदे के बाहर निकल आया और हाथी के गंडस्थल पर महावत की जगह जमकर बैठ गया। अंकुश हाथ में लेकर उसने घायल और भागते हुए हाथी को वश में किया। मुगल सेना के कुछ दस्ते जान छोड़कर भागे जा रहे थे और कुछ अब भी जान की बाजी लगाये लड़ रहे थे। उसी समय एक नकारची अपने ऊँट पर बैठा भागता हुआ वहाँ से गुजरा। मानसिंह ने सोचा कि यदि भागती हुई सेना को रोका न गया तो सारी सेना के पाँव उखड़ जायेंगे। वह जानता था कि भय बड़ा संक्रामक होता है और एक को भागते देखकर बड़े-बड़े योद्धा भी भागने लगते हैं। उसने ऊँटवाले नकारची को डपटकर रुकने के लिए कहा, लेकिन नकारची को तो अपने प्राणों की पड़ी थी। वह जान छोड़कर भागता रहा। तब मानसिंह ने धनुष पर बाण चढ़ाकर उसे ललकारा—रुक जा! नहीं तो जान से हाथ धो बैठेगा।

और नकारची वहीं-का-वहीं रुक गया। मानसिंह ने उसे डंका बजाने की आज्ञा दी और वह जोर-जोर से नगाड़ा बजाने लगा, जिसे सुनते ही भागते हुए सैनिकों के पाँव रुक गये। सबने हाथी पर बैठे हुए मानसिंह को पहचाना। मानसिंह ने गरजकर कहा—बुजदिलो, भाग क्यों रहे हो ? जान क्या इतनी प्यारी है ? आगे बढ़कर मरो और मारो !

'हाथी भागा इसलिए हमने सोचा . . . .' एक नायक ने कहा।

'हाथी तो हैवान है, भाग भी सकता है, मगर तुम तो इन्सान हो, इन्सान कभी नहीं भागता। रुक जाओ ! लौटकर दुश्मन पर हमला करो। हारकर अकबर-शाह को क्या मुंह दिखाओगे ?'

अकबर का नाम सुनते ही एक भागते हुए सरदार को लगा मानो अकबर खुद ही लड़ाई के मैदान में चला आया है। वह चिल्ला पड़ा—अकबरशाह यहाँ ? क्या जहाँपनाह खुद ही जंग के मैदान में तशरीफ लाये हैं ?

अकबर के नाम का मुगल सैनिकों पर जादू का-सा असर हुआ। जो भागने की तैयारी में थे वे रुक गये। जो भागे जा रहे थे वे लौटने लगे। मानसिंह ने इस स्थिति से लाभ उठाने के लिए जोर से ललकारकर कहा—रुक जाओ। लौटो और हमला करो। शहन्शाह खुद मैदानेजंग में तशरीफ ला रहे हैं। देखो उस पहाड़ी की चोटी पर धूल उड़ती दिखाई दे रही है। जो भी भागकर जायेगा मौत के घाट उतार दिया जायेगा। खबरदार, आगे बढ़ो।

इस प्रकार मानसिंह ने भागते हुए मुगल सैनिकों को रोका, अनुप्राणित किया और पुनः आगे बढ़ाया। मुगलों की सेना वैसे भी संख्या में अधिक थी। खुद बादशाह सलामत दूसरी सेना लेकर मदद के लिए आ रहे हैं, इस विचार ने अब प्रत्येक मुगल सैनिक के हृदय में साहस और बल का संचार कर दिया। और साथ ही प्रत्येक मुगल सैनिक को अपने आगे-पीछे मौत भी खड़ी दिखाई दी। भागकर जानेवाला भी बच नहीं सकता था। इस विचार ने मुगल सैनिकों के मन से सारा भय और आतंक मिटा दिया और वे प्राणों का मोह छोड़कर मेवाड़ियों से भिड़ गये। अल्लाहो अकबर और हर हर महादेव के गगनभेदी नाद के साथ दोनों सेनाएँ फिर आपस में गुंथ गईं। फिर भयंकर मारकाट होने लगी। ऊपर सूर्य तेजी से चमक रहा था। लू अग्नि की लपट की भाँति चल रही थी। वहाँ सारा पर्वत-

प्रदेश अंगारों की भाँति धधक रहा था। लेकिन योद्धाओं को मरने और मारने के सिवा किसी ओर देखने की फुरसत नहीं थी।

लड़ते-लड़ते शालिवाहन के हाथ की तलवार छूटकर नीचे जा गिरी। वह बढ़ती आती एक मुगल टुकड़ी को रोकने का भगीरथ प्रयत्न कर रहा था। देवराज भी उसके साथ ही था। उसके पास एक अतिरिक्त तलवार भी थी। शालिवाहन ने उससे तलवार माँगी तो देवराज ने कहा—गौतमी को देना स्वीकार करे तो मैं तलवार दे दूं।

'मूर्ख ! यह समय गौतमी को याद करने का है ? ला, तलवार दे।'

'न दूं, तो ?'

'मैं नीचे उतरकर मैदान में गिरी हुई कोई भी तलवार ले लूंगा।' यह कहकर शालिवाहन घोड़े से नीचे कूद पड़ा। तभी देवराज ने अपने अश्व की बाग मोड़ दी।

शालिवाहन ने ललकारकर कहा—देवराज, इस समय पीठ न बता। आगे बढ़ !

शालिवाहन डरा कि मुझे नीचे उतरते और देवराज को पीछे हटते देख मेवाड़ी सैनिक कहीं यह न समझ बैठें कि हमारी हार हुई और वे पीछे हटने लगें। लेकिन देवराज ने शालिवाहन की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। सामने की ओर से मुगलों का दबाव बढ़ता जा रहा था। शालिवाहन जमीन पर पड़ी हुई एक तलवार को उठाने के लिए जैसे ही झुका एक हाथी की सूंड में झूलती हुई तलवार ने उस पर वार कर दिया। पास खड़े मेवाड़ी सैनिक ने अपनी तलवार पर उस वार को रोकने का प्रयत्न तो किया, लेकिन उसकी तलवार के टुकड़े उड़ गये और शालिवाहन का भी एक हाथ कटकर दूर जा गिरा।

सैनिक-वेशधारिणी गौतमी शालिवाहन के समीप ही लड़ रही थी। वह बोली —चलो, मैं तुम्हें यहाँ से ले चलती हूँ।

'नहीं, मेरा स्थान यहीं है। मेरे जीते-जी किसी की हिम्मत नहीं कि पाँव आगे बढ़ा सके।' शालिवाहन ने ललकारकर कहा। उसका सारा शरीर रुधिर से लाल हो गया था।

'एक हाथ तो गया शालिवाहन !'

'दूसरा हाथ अभी शेष है गौतमी ! जीवित रह भी गया तो बिना हाथ का शालिवाहन तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा। तुम हट जाओ।' शालिवाहन इतना ही कह पाया था कि मुगल सैनिकों की एक पूरी टुकड़ी उस पर टूट पड़ी। बायें हाथ से तलवार चलाता हुआ रणबाँकुरा शालिवाहन मुगल सेना में अदृश्य हो गया। इतने में घोड़ा दौड़ाता हुआ उसका पिता रामसिंह तोमर वहाँ आ पहुँचा और ललकार-कर बोला—कहाँ है शालिवाहन ? देवराज ने मुझे उसकी सहायता के लिए भेजा है।

गौतमी वहीं खड़ी थी। उसने कोई जवाब नहीं दिया। भागते हुए एक राज-पूत सैनिक ने कहा—महाराज, शालिवाहन तो नहीं रहे !

'क्या मतलब ?'

'मुगलों ने उनका वध कर दिया !'

'वाह मेरे लाल, वाह ! शाबाश है तुझे ! मेवाड़ के नमक को तूने हलाल कर दिया। बूढ़े बाप के मुख को उज्ज्वल किया पूत। लेकिन क्यों रे, तू भागा क्यों चला जा रहा है ?' रामसिंह ने सैनिक की ओर मुड़कर पूछा।

'मुगल बढ़ते चले आ रहे हैं।'

'कायर, भागता है ! राजपूत होकर पीठ दिखाता है ! चल, आगे बढ़। बोल, हर हर महादेव !' कहकर बूढ़ा रामसिंह शेर की भाँति मुगल सैनिकों के बीच कूद पड़ा। उसने इतने जोर से मारकाट मचाई कि मुगल सैनिकों के पाँव उखड़ने लगे। राजपूत आगे बढ़ ही रहे थे कि अकस्मात गौतमी ने देखा कि बूढ़े रामसिंह एक हाथी की सूंड द्वारा ऊपर उठाकर जमीन पर पटक दिये गये। उनके पछाड़े जाने की आवाज के साथ ही हाथी की चिंघाड़ सुनाई दी। रामसिंह तोमर के शरीर के टुकड़े-टुकड़े उड़ गये थे।

देवराज ने तलवार न दी और भाग गया; कहीं उसका यह कुकृत्य हमारी पराजय का कारण न बन जाये—यह सोचकर गौतमी प्रताप को पिता-पुत्र के बलिदान का समाचार सुनाने के लिए सेना के दूसरे पार्श्व की ओर चल दी। उसका अनुमान ठीक ही था। यहाँ से मेवाड़ी सैनिक धीरे-धीरे पीछे हटने लगे थे।

प्रताप अपने घोड़े पर बैठे लड़ भी रहे थे और चारों ओर देखते भी जा रहे थे। उन्होंने शालिवाहन की टुकड़ी को आगे बढते हुए देखा। थोड़ी देर बाद वही

टुकड़ी पीछे हटती दिखाई दी। ऐसा होना तो नहीं चाहिए, फिर भी हो रहा था। प्रताप सोच ही रहे थे कि क्या करना उचित होगा—सहायता के लिए स्वयं जायें या सहायक टुकड़ी उस ओर भेजें। अभी वह निर्णय नहीं कर पाये थे कि गौतमी ने आकर पिता-पुत्र के वीरगति प्राप्त करने और देवराज के विश्वासघात के समाचार सुनाये। एक क्षण के लिए तो महाराणा प्रताप स्तम्भित रह गये। पिता-पुत्र की वह जोड़ी उनके मन अपनी दो भुजाओं के समान थी। लेकिन शोक करने के लिए समय कहाँ था ?

'झालाराणा, सुना ?' प्रताप ने कहा।

'जी, बूढ़े के जाने का तो शोक नहीं, लेकिन शालिवाहन को नहीं जाना चाहिए था।'

'वहाँ से हमारे सैनिक पीछे हट रहे हैं। आप जाइए, नहीं तो मैं ही जाता हूँ।'

'आपको तो मैं एक क्षण भी अकेला नहीं रहने दे सकता। देखिए, हमारे सामने तो दुश्मन हैं ही, अब पीछे की ओर से भी एक टुकड़ी बढ़ती चली आ रही है।'

'कोई चिन्ता नहीं। चेतक, इधर, इस ओर।' अभी राणा के मुख से शब्द भी नहीं निकले थे कि चेतक उछला और पीछे से घेरनेवाली टुकड़ी के सामने जा पहुँचा और राणा उसका विध्वंस करने लगे। झालाराणा, गोपीनाथ पुरोहित और राणा के अंगरक्षक भी उनके साथ ही मुड़ गये थे।

सहसा मुगल सेनापति मानसिंह ने विजय-सूचक बाजे बजाने का आदेश दे दिया, मानो मुगलों की जीत ही हो गई हो। यह उसकी दूसरी चाल थी। पहली चाल के द्वारा उसने भागती हुई मुगल सेना को यह कहकर रोका था कि बादशाह अकबर स्वयं सेना लेकर चले आ रहे हैं। अब जो उसने प्रताप को आगे बढ़ते देखा तो विजय के बाजे बजवा दिये, जिसमें प्रताप अपनी टूटती हुई मोरचेबन्दी को सँभाल न सकें, और इधर मुगलों की कमजोर टुकड़ियों के पाँव थम जायें।

प्रताप ने दाँत पीसकर कहा, 'विजय के बाजे बजाना इतना आसान नहीं।' और वह जोर-शोर से तलवार चलाने लगे। पीछे से बढ़ी चली आ रही मुगल टुकड़ी के सैनिक बड़े जोश में थे। प्रताप को घेरने और पकड़ने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व उन्हें सौंपा गया था। वे अकबरशाह के आने से पहले ही राणा को पकड़कर वाहवाही लूटना चाहते थे। देखते-ही-देखते उन्होंने राणा प्रताप को घेर लिया।

उन पर शस्त्रास्त्रों की झड़ी लग गई। लेकिन प्रताप बिजली की फुर्ती से तलवार चला रहे थे। मुगल सैनिकों की दीवार ढहाते, हाहाकार मचाते वह निरन्तर आगे और आगे बढ़ते चले जा रहे थे। जिस ओर उनकी तलवार मुड़ जाती लोथों के ढेर लग जाते थे। उनकी बाढ़ को रोकने की सामर्थ्य उस समय किसी में नहीं थी।

सहसा जोर की आवाज के साथ एक तोप गरज उठी। चेतक की कनौतियाँ तन गईं। एक क्षण रुके रहने के बाद प्रताप ने चेतक को एड़ लगाई और वह बवण्डर की भाँति शत्रु-दल में गहरा और गहरा धँसता चला गया। तोप के गोले ने प्रताप के साथवाली सैनिक टुकड़ी को दो भागों में विभक्त कर दिया था। यह देख मारे चिन्ता के झालाराणा का कलेजा मुंह को आने लगा। इस प्रकार प्रताप और उनके अंगरक्षक अकेले कब तक लड़ेंगे? मानसिंह ने अपनी सेना का पूरा जोर इसी ओर लगा दिया था। दूसरी ओर से टुकड़ियाँ खींच-खींचकर इसी ओर झोंकी जा रही थीं। झालाराणा ने यह सब देखा और यह भी देखा कि शालिवाहन और रामसिंह की वीरगति ने राजपूत सैनिकों को शोकमग्न कर दिया है, यद्यपि अभी तक किसी राजपूत सैनिक टुकड़ी ने पाँव पीछे नहीं हटाया था। प्रताप का प्रबल आक्रमण मेवाड़ियों की विजय के लिए नितान्त आवश्यक था और सब सैनिक अनुप्राणित होकर पूरी शक्ति के साथ लड़ रहे थे। और इसी लिए मानसिंह ने अपनी सेना की पूरी शक्ति प्रताप को रोकने और पकड़ने के लिए केन्द्रित कर दी थी।

'महाराज, जरा धीरे। हमारी ओर देखकर आगे बढ़िए।' पुरोहित गोपीनाथ ने कहा।

'अब किसी ओर देखने की जरूरत नहीं। जो मेरी दृष्टि और विजय के बीच आयेगा मौत के घाट उतार दिया जायेगा।' प्रताप ने कहा और पुरोहित गोपीनाथ ने अपनी ढाल पर उन तीरों और भालों को रोक लिया जो मुगल सैनिकों ने प्रताप पर चलाये थे।

'महाराज! मैं अपने कुछ चुने हुए सेनानायकों को लेकर यहाँ के आक्रमण को रोकता हूँ। यहाँ आपकी आवश्यकता नहीं। मुगलों का सारा लक्ष्य आप पर है। आप यहाँ से हट जाइए।' गोपीनाथ ने कहा।

'मैं हट जाऊँ? पाँव पीछे हटाऊँ? अब या तो विजय या मौत!' आगे बढ़ते हुए प्रताप ने कहा।

'मौत के आने में तो अभी बड़ी देर है। पहले हम, आपके सेवक मृत्यु से गले मिलेंगे, उसके बाद ही वह आप तक पहुँच पायेगी। महाराज, जरा आप एक ओर हट जाइए। महाराज इस बात को न भूलें कि आप केवल महाराणा नहीं, मेवाड़ के प्राण और स्वयं मेवाड़ हैं।' जब प्रताप ने गोपीनाथ की सलाह को नहीं माना तो बूढ़े झालाराणा ने आगे बढ़ते हुए कहा।

'वृद्धवर, आप मुझे हट जाने के लिए कह रहे हैं? बापा रावल आसमान में बैठे इस युद्ध को देख रहे हैं। मैं हट जाऊँगा तो क्या मेरे पूर्वज और मेरी पीढ़ियाँ मुझ पर हँसेंगी नहीं?' प्रताप ने अडिगता से कहा।

'नहीं राणाजी, कभी नहीं हँसेगी। आप लाखों वर्ष जीयें और मेवाड़ को जीवित रखें। पर मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, कहिए तो आपके पाँवों में नाक भी रगड़ लूं कि आप यहाँ से हट ....'

लेकिन झालाराणा की सारी अनुनय-विनय व्यर्थ गई। राणा ने उनकी ओर ध्यान ही नही दिया। वह तो शत्रु-दल के एक हाथी की सूंड काटने में व्यस्त थे। एक ही झटके में हाथी की सूंड कट गई और वह चिंघाड़ता हुआ भागा।

'महाराज, आपने वचन दिया था कि इस युद्ध में आप मेरा कहना मानेंगे।' झालाराणा प्रताप को रोकते हुए आगे बढ़े। अब युद्ध की तीव्रता बहुत बढ़ गई थी। चारों ओर घमासान मचा हुआ था। मुगल सेनापति सब ओर से खींच-खांचकर मुगल सैनिकों को प्रताप के आस-पास जमा करता जा रहा था। प्रताप को जीवित या मृत पकड़ने का यह बहुत ही उपयुक्त अवसर था। लेकिन प्रताप की वीरता और फुर्ती के कारण किसी का उनके पास पहुँचने का साहस नहीं हो रहा था। तलवार, भाले, गदा, गोफन आदि शस्त्रास्त्रों की झड़ी लग रही थी और शत्रु के प्रत्येक वार को राणा प्रताप और उनके अंगरक्षक अपनी ढाल पर झेलकर विफल किये दे रहे थे। सहसा एक बाण प्रताप के शरीर में घुस गया। एक हाथ से उन्होंने उसे खींचकर निकाल फेंका और दाँत पीसकर जय एकलिंग के निनाद के साथ चेतक को आगे बढ़ाया। भाला खींचकर वह सीधे तोप के मुंह की ओर बढ़े। तोप को कील देने का उनका इरादा बिलकुल स्पष्ट था। लेकिन अब तक राणा के शरीर पर सात घाव लग चुके थे। झालाराणा ने देखा कि इस तरह तो महाराणा के प्राणों पर ही आ बीतेगी। एक ओर विजय थी

और दूसरी ओर राणा प्रताप का जीवन। झालाराणा कभी भी विजयश्री के लिए राणा प्रताप को जीवन की बाजी लगाने नहीं दे सकते थे।

'बहादुरो! महाराज को तो मैं कोई आज्ञा नहीं दे सकता, उन्हें आज्ञा देने का मुझे अधिकार भी नहीं है, परन्तु तुम्हें मैं जरूर आज्ञा दे सकता हूँ। मेरी आज्ञा है कि महाराज के सिर पर से राजचिह्न और राजछत्र उतारकर उन्हें मेरे सिर पर रख दो। देख क्या रहे हो? देर मत करो! गोपीनाथ, तुम चेतक के कान में जाकर कहो कि वह महाराणा को जल्दी-से-जल्दी लड़ाई के मैदान से बाहर ले जाये। बिलकुल देर मत करो। इस तोप को मैं कीलता हूँ। लाओ, राजछत्र इधर लाओ!'

प्रताप को मुगल सैनिकों से घिरा और संकट में पड़ा देखकर झालाराणा ने राजमुकुट और छत्र अपने सिर पर धारण कर लिया। मुगल सैनिकों की पंक्तियाँ समुद्र की लहरों की भाँति एक-पर-एक बढ़ती चली आ रही थीं। प्रताप के प्राणों का संकट प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। दुश्मन को धोखे में डालने और अपने प्यारे प्रताप के प्राण बचाने के लिए झालाराणा ने यह चाल चली थी। उन्होंने राजमुकुट और राजछत्र ही नहीं, प्रताप के प्राणों का सारा संकट भी अपने माथे पर ले लिया। एक क्षण तो प्रताप भी विस्मित होकर झालाराणा की ओर देखते रह गये। राजमुकुट और राजछत्र झालाराणा के मस्तक पर आते ही मुगल सैनिक उन्हीं को महाराणा समझकर उन पर टूट पड़े। उनके चारों ओर राजपूतों और मुगलों में भयंकर मार-काट होने लगी।

अपने स्वामिभक्त सरदार का यह अपूर्व स्वार्थ-त्याग देखकर राणा प्रताप भी धन्य-धन्य कर उठे। अब उनके चारों ओर की जगह शत्रु सैनिकों से खाली हो गई थी। गोपीनाथ घोड़े से उतर पड़ा और उनके समीप आकर बोला—महाराज, अब आप यहाँ खड़े न रहें।

'क्यों? क्या मुझे युद्ध नहीं करना है?' प्रताप ने पूछा।

'युद्ध क्यों नहीं करना है? अब तो सारा जीवन ही युद्ध करते रहना है। लेकिन यहाँ के युद्ध का भार हमें सौंपिए, हम निपट लेंगे, आप चले जाइए।'

'गोपीनाथ, हट जाओ सामने से।'

'महाराज! मैं नहीं हट सकता। झालाराणा की यही आज्ञा है।'

'नहीं, विजय के बिना मैं एक पाँव भी पीछे नहीं हटा सकता।'

'चेतक, चलता बन। एक क्षण के लिए भी मत रुक। राणाजी को यहाँ से दूर, बहुत दूर ले जा। जा! चल!' यह कहकर गोपीनाथ ने चेतक के पुट्ठों पर जोर से एक डंडा जमा दिया।

घायल चेतक मारे गुस्से के आगबबूला हो गया। आज तक कभी उसने किसी के हाथ की मार नहीं खायी थी। इसलिए गोपीनाथ के हाथ का डंडा पड़ते ही उसके तन-वदन में जैसे बिजली दौड़ गई और वह राणा को लिये हुए लड़ाई के मैदान से बाहर की ओर भाग चला। वह तीर या बन्दूक से छूटी हुई गोली की भाँति बगटूट भागा जा रहा था। तभी चारों दिशाओं को कँपाती हुई तोप छूटने की आवाज सुनाई दी! प्रताप ने मुड़कर देखा तो तोप के मुंह को कीलने के लिए झालाराणा के नेतृत्व में आगे बढ़ती हुई राजपूत टुकड़ी के सैनिकों के अंग-प्रत्यंग आकाश में उड़ रहे थे। मरते-मरते भी मेवाड़ी सैनिक जय एकलिंग और जय प्रताप की ललकारों से दुश्मनों के कलेजे दहला रहे थे।

झालाराणा ने आखिर तोप को कील ही तो दिया; लेकिन अपने इस भगीरथ प्रयत्न में कहीं वह बूढ़े मेवाड़ी भीष्म पितामह स्वयं भी तो भस्म नहीं हो गये हैं? चेतक को रोकने का प्रयत्न करते हुए महाराणा प्रताप के मन में विचार उत्पन्न हुआ। एक निमिष के लिए उनका सारा शरीर काँप उठा। उन्होंने पूरी ताकत से चेतक की बाग खींची। लेकिन चेतक रुका नहीं। प्रताप के छोटे-से-छोटे संकेत का अनुसरण करनेवाला चेतक आज बेकाबू हो गया था और प्रताप को युद्ध-भूमि से दूर और दूर लिये चला जा रहा था।

युद्ध का पाँसा पलट चुका था। अकबर के आने की झूटी खबर ने मुगल सेना के उखड़ते हुए पाँवों को रोक ही नहीं दिया था उन्हें नये जोश से भी भर दिया था। प्रताप के मन में बड़ी साध थी कि वह अकबर से दो-दो हाथ कर लें, चेतक को अकबर के हाथी के गंडस्थल पर खड़ा करके उस मुगल सम्राट् से आमना-सामना करें। इसी अभिलाषा से अनुप्राणित वह मुगल सैनिकों का संहार करते, उनकी मोरचेबन्दी को छिन्न-भिन्न करते आगे बढ़े चले जा रहे थे। जिस तरह उन्होंने मानसिंह के हाथी को भागने पर विवश किया, मानसिंह के हौदे को अपने भाले से भेदा उसी भाँति अकबर के हाथी को भी भगाना और उसके

हौदे को विदीर्ण करना चाहते थे। लेकिन धूर्त मानसिंह ने अकबर के नाम का उपयोग करके हारी बाजी को जीत में बदल लिया था। अकबर आया नहीं था, केवल उसके आने की झूठी अफ़वाह उड़ाई गई थी।

प्रताप को मानसिंह या अकबर-जैसे लोगों से लड़ना ही क्यों चाहिए था? क्योंकि एक राजा के नाते उनका धर्म था कि वह अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए विजय-श्री का वरण करें। वह अपने इसी कर्तव्य का पालन कर रहे थे, लेकिन झालाराणा ने उनके इस कर्तव्यपालन में भी बाधा पहुँचाई। एक तरह से उस अनुभवी बूढ़े सरदार ने ठीक ही किया। जब उन्होंने देखा कि राणा प्रताप आवश्यकता से अधिक संकट सिर पर लेकर आगे बढ़ रहे हैं तो ठीक समय पर गोपीनाथ की सहायता से घायल प्रताप को रणभूमि से बाहर निकल जाने पर विवश किया। राणा जाना नहीं चाहते थे, परन्तु उन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध जाना पड़ा। जो चेतक उनके इशारों का गुलाम था उसी ने उनकी बात न मानी। प्रताप के पराक्रम में कोई कसर नहीं थी। वीरता उनकी अद्वितीय थी। लेकिन अकेली वीरता किस काम की? युद्ध में तो सारा खेल संयम का होता है।

हाँ, संयम तो युद्ध में भी आवश्यक है। अकेली मार-काट और धींगा-मुश्तीवाली वीरता से काम नहीं बनता। झालाराणा ने सच ही कहा था। उनकी सलाह निरर्थक नहीं हो सकती। प्रताप ने निश्चय किया कि भविष्य में वह कभी संयम को हाथ से न जाने देंगे, व्यर्थ का संकट सिर पर न लेंगे। लेकिन कहीं मेवाड़ी सेना हार तो नहीं गई? यह चेतक तो रुकता ही नहीं! चेतक, रुक जा बेटा, रुक जा! लेकिन चेतक ने राणा की इस आज्ञा को भी नहीं सुना। वह तो गोपीनाथ की आज्ञा का अनुसरण किये भागा चला जा रहा था। राणा जितना ही उसकी लगाम खींचते उसकी गति उतनी ही बढ़ती जाती थी। उसने न देखी राह-बाट, न देखे टीले-टेकरियाँ और न देखा जंगल-मैदान। ग्रीष्मऋतु की गरम हवा में वह झंझावात की तरह भागा चला जा रहा था। एक सीधी टेकरी पर जब वह दौड़कर चढ़ रहा था तो राणा प्रताप ने मुड़कर हल्दीघाटी के युद्ध-क्षेत्र की ओर देखा। लड़ाई अभी बन्द नहीं हुई थी। सैनिक अब भी मार-काट कर रहे थे। इतनी दूर और ऊँचाई से वे खिलौने-जैसे लगते थे। प्रताप को यह देखकर सन्तोष हुआ कि उनकी मेवाड़ी सेना अभी भी डटकर लड़ रही थी।

किसी ने पाँव पीछे नहीं हटाये थे। सहसा उन्हें दो मुगल घुड़सवार अपने पीछे आते दिखाई दिये। वे चेतक से होड़ लगाये दौड़े चले आ रहे थे। चेतक के शरीर से रुधिर बह रहा था। प्रताप के घावों से भी रक्त बह रहा था। ओह! तो चेतक अपने प्यारे राणा को इन दो शत्रु घुड़सवारों से बचाने के लिए भागा जा रहा था! घायल प्रताप में अब भी इतनी शक्ति थी कि अकेले उन दो मुगल सैनिकों से लड़ लेते। परन्तु चेतक अपने राणा के संकट को समझता था। वह उन्हें किसी भी तरह के खतरे में डालना नहीं चाहता था। वह बराबर इतनी दूरी बनाये रहा कि उन मुगल सैनिकों का भाला या तीर प्रताप तक पहुँच न सके। लेकिन वह घायल अश्व कब तक इस भाँति दौड़ता रह सकेगा?

मार्ग अधिक दुर्गम और विकट होता जा रहा था। चढ़ाई और उतराई बढ़ती जा रही थी। चेतक की सार-सँभाल आवश्यक होती जा रही थी। प्रताप और चेतक वर्षों के पुराने मित्र थे। दोनों एक-दूसरे के हृदय के भावों को अच्छी तरह समझते थे। चेतक जानता था कि उसका राणा घायल है। खाई-खन्दक और टीले-टेकरियों से भरा मार्ग होते हुए भी चेतक इस तरह दौड़ रहा था कि राणाजी को जरा भी कष्ट न हो, उनका शरीर हिलने न पाये, घावों में कसक न हो। इस समय चेतक मानो घोड़ा नहीं राणा के लिए सुखपाल बन गया था। और राणा भी जानते थे कि चेतक का सारा अंग घावों से भरा हुआ है। उन्हें यही आश्चर्य था कि वह साँस कैसे ले पा रहा है? लेकिन चेतक साँस ही नहीं ले रहा था, पवन-पंखी घोड़े की भाँति दौड़ा भी जा रहा था।

पीछे लगे मुगल सैनिक उसी तीव्र गति से दौड़े आ रहे थे। प्रताप को जीवित या मृत पकड़ने की अभिलाषा किस मुगल सैनिक को न होती? जब झालाराणा ने राजमुकुट और राजछत्र राणा प्रताप के सिर से उतारकर अपने मस्तक पर धारण कर लिये और गोपीनाथ ने चेतक को लड़ाई के मैदान से बाहर भगा दिया तो मुगलों की एक सैनिक टुकड़ी ने इस रहस्य को भाँप लिया। वह पूरी-की-पूरी टुकड़ी प्रताप के पीछे लग गई। पहले तो राणा प्रताप का ध्यान पीछा करनेवाली टुकड़ी की ओर गया ही नहीं। उनका सारा लक्ष्य चेतक को रोकने में ही लगा रहा। और चेतक भी इतनी तेजी से दौड़ रहा था कि मुगल टुकड़ी के घुड़सवार एक-एक कर पिछड़ते चले गये। जब राणा प्रताप ने मुड़कर पीछे देखा तो केवल

दो घुड़सवार पीछा करते हुए रह गये थे। दो सैनिकों की तो प्रताप के मन कोई गिनती ही नहीं थी। परन्तु घायल प्रताप और घायल चेतक को इस समय युद्ध से अधिक विश्राम की आवश्यकता थी। लेकिन चेतक था कि रुकने का नाम ही नहीं लेता था।

सहसा राणा प्रताप को सुनाई दिया—ओ नीला घोड़ारा असवार, ऊभा रहो, ऊभा रहो !

चेतक की कनौतियाँ तन गईं। वह जोर से हिनहिनाया। रुकने के बदले उसने अपनी गति को और भी बढ़ा दिया। सामने एक बरसाती नाला था। पानी जोर से बहा जा रहा था। चेतक एक क्षण ठिठका। उसकी पशु-बुद्धि ने समझ लिया कि धारा में उतरकर पार जाने का प्रयत्न निरापद नहीं। घायल शरीर तेज धारा का सामना करके शीघ्रता से उस पार नहीं पहुँच सकेगा। इस बीच मुगल सैनिक आ पहुँचेंगे और वार कर देंगे। वह फिर हिनहिनाया। अड़ोस-पड़ोस की पहाड़ियाँ प्रतिध्वनित हो उठीं। राणा उसके निश्चय को समझ गये। उन्होंने उसको चुमकारते और थपथपाते हुए कहा—शाबाश चेतक, शाबाश ! रुको बेटा, रुको !

लेकिन प्रताप का वाक्य पूरा भी नहीं होने पाया था कि चेतक ने जस्त भरी और कूदकर नाले के उस पार पहुँच गया।

'वाह चेतक, वाह ! धन्य है तुझे ! अब रुक जा बेटा ! सूर्य के सतरंगी अश्व भी आकाश में कदम-कदम करके आगे बढ़ते हैं, परन्तु मेरे अश्वराज, तू तो एक ही छलाँग में नाला पार कर गया। वाह बेटा, वाह !' कहते हुए प्रताप चेतक से नीचे कूद पड़े। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि अब चेतक को एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने देंगे। नीचे उतरकर वह चेतक के सामने आ खड़े हुए। देखा तो चेतक का शरीर काँप रहा था, दम फूल आया था और उसकी टाँगें लड़खड़ा रही थीं। वे टाँगें मुड़ने लगीं। प्रताप ने एक हाथ से टाँग पकड़कर उसे सीधा करने का प्रयत्न किया, पर वह सीधी न हो सकी। यह देख राणा प्रताप का हृदय भयाकुल हो गया। उन्होंने ध्यान से चेतक की आँखों की ओर देखा। चेतक की वे आँखें मुस्करा रही थीं। सारे जीवन में चेतक ने आजही अपने स्वामी की आज्ञा का पालन नहीं किया था। आदेश की अवहेलना कर वह अपने स्वामी को सुरक्षित स्थान पर ले आया था। उसने प्रताप की ओर देखने के लिए अपनी

गरदन उठाने का प्रयत्न किया। जो गरदन मोर के गले की तरह कमान बन जाती थी वह उठ न सकी। प्रताप प्रेमपूर्वक उसकी देह पर हाथ फेरते हुए कहने लगे— शान्त हो जा बेटा, शान्त हो जा! जरा दम ले ले, ठंडा हो ले, तो तुझे पानी पिलाऊँ। क्या हो रहा है तुझे मेरे दोस्त? चेतक! बेटा चेतक!

चेतक के मुड़ते हुए पाँव जोर से लड़खड़ाये। उसने सँभलने का अन्तिम प्रयत्न किया परन्तु सहसा भर्राकर जमीन पर बैठ गया। प्रताप की छाती जोरों से धड़कने लगी। उन्होंने फुर्ती से घोड़े का साज-सामान खोला और उसके मुंह के पास आ बैठे। चेतक अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से प्रताप की ओर देख रहा था। प्रताप ने अपने दोनो हाथों में चेतक की घायल गरदन को उठाकर छाती से लगा लिया और उसकी ओर टक लगाकर देखने लगे। राणा का स्पर्श पाते ही हिनहिनाने के अभ्यस्त चेतक ने हिनहिनाने का प्रयत्न किया, पर आवाज उसके मुंह से निकल न सकी। प्रताप की ओर देखते-देखते ही वे बड़ी-बड़ी आँखें मुंद गईं और वह प्राणवान अश्व एक ही क्षण में निश्चेष्ट हो गया।

'चेतक! चेतक! मेरे दोस्त चेतक! ओ मेरे भाई! क्या हो गया है तुझे?' राणा के सम्बोधन को सुनकर चेतक ने मुंदती हुई आँखों को जरा-सा खोला, जीवन का सारा प्यार, सारी स्वामिभक्ति उन आँखों में सँजोकर राणा को स्नेह और सन्तोष से अन्तिम बार देखा और सदा के लिए उन्हें मूंद लिया। अपने राणा की प्रेम-भरी वाणी को सुनते-सुनते चेतक की आत्मा पंचमहाभूतों में विलीन हो गई।

'चेतक! ओ मेरे भाई! ओ मेरे प्यारे, तू मुझे छोड़कर कहाँ चला?' वह बहादुर राणा चेतक के गले से लिपटकर नन्हें बालक की भाँति फूट-फूटकर रोने लगा। सगे भाइयों-जैसे वीर सरदारों को अपनी आँखों के सामने मरते देखकर भी जो कभी नहीं रोया, अपने शरीर पर सात-सात घाव सहकर भी जिसकी आँख से एक बूंद आँसू न गिरा, वही वीर-शिरोमणि इस समय अपने प्यारे घोड़े के मृत शरीर से लिपटकर आँसू बहा रहा था। मुगल सैनिक पीछे दौड़े चले आ रहे थे। हल्दीघाटी में अभी भी भयंकर मार-काट मची हुई थी। प्रताप के प्राण अब भी संकट में थे, उनके सिर की बाजी लगी हुई थी, लेकिन उन्हें किसी बात का भान नहीं था। वह सब-कुछ भूल गये थे, याद रह गया था केवल रुदन-भरा यह सत्य कि उनका परम मित्र चेतक उन्हें अकेला छोड़कर चला गया है!

'राणाजी !' प्रताप के कानों ने किसी का सम्बोधन सुना। वह अब भी आँखें मूंदे चेतक के गले से लिपटे आँसू बहा रहे थे।

'गया, चेतक भी गया! मेरा सच्चा और अकेला भाई चेतक भी मुझे छोड़कर आज चला गया!' प्रताप सिसक उठे। और इसी सिसकी के बीच उन्हें लगा कि जैसे कोई 'राणाजी' कहकर उन्हें पुकार रहा है। प्रताप ने अपना सिर उठाया। आँखें पोंछकर सामने देखा तो उनका सगा भाई शक्तिसिंह खड़ा था। राणा की आँसू-भरी आँखों से अंगारे बरस उठे।

'शक्तिसिंह, तुम आये हो मुझे पकड़ने ?'

'राणाजी . . . .'

शक्तिसिंह के इस विनम्र सम्बोधन को रोकते हुए प्रताप उठकर खड़े हो गये और बोले——मुझे जीवित तो पकड़ नहीं सकोगे शक्तिसिंह !

'घणी खमा म्हारा राणाजी ने। भगवान एकलिंगजी आपको मेरी सारी आयु प्रदान करें। आप सौ वर्ष जीयें।' शक्तिसिंह ने दो कदम आगे बढ़कर प्रणाम करते हुए कहा।

'शक्तिसिंह, मेरे हाथ में अब भी हथियार हैं। खबरदार जो पाँव आगे बढ़ाया! मैं तैयार हूँ। हिम्मत हो तो पकड़ देखो। जीवित तो मैं किसी के हाथ आने का नहीं।' प्रताप ने यही समझा कि शिष्टाचार का प्रदर्शन कर शक्तिसिंह उन्हें पकड़ने के लिए आगे बढ़ रहा है। जो भाई मुगलों का सेवक हो जाये उस पर किसे विश्वास होगा ?

'राणाजी, पहले अपने ये शस्त्र आपके चरणों में समर्पित करता हूँ और फिर अपना यह शीश।' यह कहकर शक्तिसिंह ने अपने हथियार राणा प्रताप के पाँवों में रख दिये और फिर उनके चरणों में सिर रखकर साष्टांग प्रणाम किया।

प्रताप के आश्चर्य का पार न रहा। जो भाई दुश्मन हो गया था वही इस समय आँसुओं से पाँव पखार रहा था! राणाजी निर्णय नहीं कर पाये कि जो देख रहे हैं वह सच है या स्वप्न!

'शक्तिसिंह, भावावेश में अपने धर्म से विमुख न होओ। मुझ पर दया दिखाने की आवश्यकता नहीं। घायल हो गया हूँ तो क्या हुआ, अब भी लड़ सकता हूँ। मुगलों का सामना करने के लिए जो तलवार म्यान से निकाली थी

वह अभी म्यान के अन्दर गई नहीं। यह मत भूलो कि तुम दिल्लीपति के सेवक हो।' प्रताप ने अत्यन्त गम्भीरता से कहा। जो वीर होते हैं वे कभी भी अपनी विवशता से लाभ उठाना पसन्द नहीं करते।

'ओ भाई! ओ एकलिंगजी के अवतार! मुगलों के सामने निकली हुई मेवाड़ी तलवार कभी म्यान में न जाये। अपने धर्म को मैं आज तक भूला हुआ था। हल्दी-घाटी के मैदान में आपकी तलवार और भाले के जौहर को देखकर सूर्य का प्रकाश भी मन्द हो गया और मुझे अपना धर्म—सच्चा धर्म याद हो आया। आज से मैं मेवाड़-भूमि का सेवक हुआ। चेतक ने मरकर आपकी अपने दूसरे भाई से भेंट कराई। आप के मुंह से मैं भाई शब्द सुनने के लिए तरस रहा हूँ। खमा मेरे राणा-जी को। मेवाड़ के मुकुटधारी राणा को घणी खमा!' शक्तिसिंह के नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बह रही थी।

'उठो शक्त! उठो भाई! खड़े हो जाओ! मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। आ भाई, तुझे छाती से लगा लूं। आज मेरा रूठा भाई मुझे मिल गया। कितना भाग्यवान हूँ मैं।' प्रताप ने कहा, और शक्तिसिंह का हाथ पकड़कर उठाया और अपनी छाती से लगा लिया। बरसों के बिछुड़े हुए भाइयों का वह मिलन देवदुर्लभ दृश्य था। प्रकृति भी धन्य-धन्य हो उठी। सन्ध्या के आरक्त मुख पर स्वर्णिम सौन्दर्य की आभा फैल गई। बरसाती नाले की कलकल-छलछल में जलतरंग की मंगल रागिनी गूंज उठी। ग्रीष्म का उत्तप्त पवन भी शीतल हो गया। वृक्ष पंखा झलने लगे। एक-दूसरे की बाँहों में बँधे हुए भाइयों ने नवजीवन की स्फूर्ति का अनुभव किया।

'भया, मेवाड़ के जीवन-प्राण, जरा नीचे बैठ जाइए। आपके शरीर को विश्राम की आवश्यकता है। लाइए मैं घावों की मरहम-पट्टी कर दूं।' दोनो योद्धा चेतक के मृत शरीर के समीप बैठ गये। उधर आसमान में एक-एक कर तारे उगने लगे।

प्रताप ने बैठते हुए कहा—यह घाव तो भर जायेंगे, परन्तु जिस घाव के कभी भरने की आशा नहीं थी वह भी आज भर गया है।

शक्तिसिंह नाले से पानी ले आया और प्रतापसिंह के घावों को धोने लगा। कुछ घावों पर रुधिर जम गया था और कुछ अब भी बह रहे थे। दोनों भाई

पिछले दिनों के संस्मरण एक-दूसरे को सुनाने लगे। अकबर की राजनीति से प्रभावित होकर जिस प्रकार दूसरे कई राजकुमार अकबर के सहयोगी बन गये थे उसी भाँति शक्तिसिंह भी अपनी ही जन्मभूमि को जीतने के लिए शत्रुओं से मिल गया था। परन्तु आज हल्दीघाटी के रणक्षेत्र में मेवाड़ियों की वीरता, पराक्रम और आत्म-बलिदान को देखकर वह लज्जित हुआ। मुगल सैनिकों के बीच सिंह की भाँति निर्भय घूम रहे अपने बड़े भाई प्रताप को उसने देखा और देखता ही रह गया। उसका हृदय भ्रातृ-प्रेम से छलक उठा। लड़ाई के मैदान में उसने राणा के प्रत्येक पराक्रम को देखा और उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। उसका हृदय बार-बार धिक्कारने लगा—धिक्कार है तुझे ! जो स्वदेश के लिए प्राणों की बाजी लगाकर इस भाँति लड़ रहा है उसी का तू शत्रु बना और विधर्मियों के साथ मिलकर उसी को पराजित करने के लिए दौड़ा चला आया ! डूब मर शक्त, डूब मर !

फिर उसने मानसिंह के हाथी पर चेतक को चढ़ते और प्रताप को अपने भाले से हाथी के हौदे को विदीर्ण करते देखा; सशस्त्र सैनिकों की वज्र-जैसी दीवाल को ढहाते देखा; मुगलों की मजबूत मोरचेबन्दी को तिनके की भाँति छिन्न-भिन्न करते देखा। उसने यह भी देखा कि प्रताप तोप को कीलने के लिए प्रबल झंझावात की भाँति आगे बढ़ रहे हैं। शक्तिसिंह का हृदय भय-विकंपित हो उठा। और जब उसने देखा कि संकट में पड़े राणा के प्राण बचाने के लिए झालाराणा ने मेवाड़ के राजचिह्नों को अपने सिर पर धारण कर लिया है तब तो मारे लज्जा के उसकी गरदन ही न उठ सकी। राणा को पीठ पर लिये चेतक को लड़ाई के मैदान से बाहर भागते हुए उसने देखा और यह भी देखा कि मुगल सैनिकों की एक चुनी हुई टुकड़ी राणा का पीछा कर रही है। यह देखकर शक्तिसिंह काँप उठा। अकेले घायल प्रताप के पीछे इतने सैनिक ! परन्तु शक्तिसिंह जानता था कि प्रताप जीवित तो कभी पकड़े नहीं जा सकेंगे। कुछ सोचकर वह भी उस टुकड़ी के साथ हो लिया। मुगल सनिकों ने यही समझा कि मानसिंह ने उसे प्रताप को पकड़ लाने का आदेश दिया होगा; क्योंकि शक्तिसिंह मुगल सेना का एक महत्वपूर्ण सेनानायक था। आगे-आगे चेतक बिजली की गति से दौड़ा चला जा रहा था। मुगल टुकड़ी के सैनिक एक-एक कर पिछड़ने लगे। अन्त

में केवल दो घुड़सवार रह गये। चेतक के शरीर से खून बराबर बह रहा था। पीछा करनेवाले दोनो मुगल सैनिकों को विश्वास हो गया कि घायल चेतक दस-बारह कोस से अधिक नहीं जा सकेगा। कब चेतक गिरे और कब हम राणा को दबोचें, यह सोचते हुए दोनो मुगल घुड़सवार पीछा करते रहे। शक्तिसिंह भी उन दोनो के पीछे लगा चला आ रहा था। जब रास्ता दुर्गम, विकट, नदी-नालों और टीले-टेकरियोंवाला हो गया तो शक्तिसिंह ने राणा को रुकने के लिए आवाज लगाई। राणा को इस तरह रोकने की बात मुगल सैनिकों की समझ में नहीं आई। उनमें से एक सैनिक ने पूछा—शक्तिसिंहजी, इस तरह आवाज देने से प्रताप रुक जायेंगे?

'यदि प्रताप न रुके तो हमीं को रुकना होगा।' शक्तिसिंह ने कहा।

'हम क्यों रुकेंगे? अब तो प्रताप जल्दी ही गिरफ्तार हो जायेंगे।'

'मैं प्रताप को पकड़ना नहीं चाहता।'

'आप अपनी जानें। हमें तो मानसिंह साहब का हुक्म मिला है। प्रताप को गिरफ्तार किये बगैर हम लौट नहीं सकते।'

'बदजातो! चुप रहो! मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह की ओर से मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ कि यहां रुक जाओ। खबरदार जो एक कदम भी आगे बढ़ाया!'

यह कहकर शक्तिसिंह ने तलवार खींच ली और उन दोनो मुगल सनिकों को वहीं काटकर फेंक दिया। नाले पर पहुँचकर शक्तिसिंह ने देखा तो राणा प्रताप चेतक के गले से लिपटकर रो रहे थे। उसके हृदय में भ्रातृ-प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। नाला पार करके वह प्रताप के समीप पहुँचा और उनके चरणों पर गिर पड़ा।

दोनो भाई बहुत देर तक बैठे बातें करते रहे। हल्दीघाटी का मैदान बहुत पीछे छूट गया था। अब उस दिशा से कोई स्वर भी नहीं सुनाई देता था। रात बिखरती जा रही थी। विश्व की वेदना के सनातन अश्रुबिन्दु-जैसे तारे ऊपर आसमान में चमक रहे थे। नाले के किनारे लकड़ियों की एक चिता बनाकर रातोंरात चेतक के शव का मानव-शव की भाँति दाह-संस्कार किया गया। दाह करते समय प्रताप की छाती पुनः भर आई। शक्तिसिंह ने घायल प्रताप का मस्तक अपनी गोद में रखकर उन्हें सुलाया। प्रताप निर्भर और निश्चिन्त सो

भी गये। उनका घायल और थका हुआ शरीर विश्राम चाहता था। यह दृश्य देखकर शक्तिसिंह को राम-लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम की याद हो आई।

'यह है मेरा भाई और मैं इसी का शत्रु हो गया था। मेरी गोद में निश्चिन्त लेटा है; मेरा विश्वास करके सोया पड़ा है। चाहूँ तो इसका सिर काटकर अकबर की सेवा में ले जा सकता हूँ। बदले में मेवाड़ का सिंहासन मिल जायेगा। राज्य मिलेगा, सुख और वैभव भी मिलेगा। लेकिन आत्मा सदा दुतकारती रहेगी। सुख-वैभव अंगारे हो जायेंगे। राजसिंहासन काँटों की सेज बन जायेगा। नहीं, अब शक्त विश्वासघात नहीं करेगा, न शक्त देशद्रोह करेगा, न भ्रातृद्रोह। और मेवाड़-द्रोह की बात तो सपने में भी नहीं सोची जा सकती। अजर-अमर रहे मेरा राणा, युग-युग जीयें महाराणा प्रताप।'

शक्तिसिंह सारी रात पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर शुद्ध होता रहा। सहसा राणा प्रताप ने जागकर कहा—शक्त, सवेरा होने को है। क्या तुम सोये नहीं?

:: ३ ::

शक्तिसिंह की नींद उड़ गई थी। उसका हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में दग्ध हो रहा था। हाय, वह मेवाड़ के किसी काम नहीं आया! सारी रात बैठा यही सोचता रहा कि अब किस तरह मेवाड़ और उसके राणा की अधिक-से-अधिक सेवा करे? प्रताप की बात सुनकर वह चौंक पड़ा और बोला—राणाजी, अब मैं जाऊँगा।

'जाओगे? मुझे छोड़कर चले जाओगे?'

'जी नहीं, जा रहा हूँ लौट आने के लिए। जाकर राजा मानसिंह को समाचार दे आऊँ कि महाराणा प्रताप सकुशल हैं, सुखपूर्वक हैं और मुगलों को फिर सेना लेकर आने का निमंत्रण देते हैं।'

प्रताप को हँसी आ गई। उनकी उस हँसी में विषाद था। बोले—सच कहा तुमने। मानसिंह से यह भी कह देना कि प्रताप को खोजना हो तो हाथी की पीठ पर, हौदे में छिपकर नहीं, घोड़े की खुली पीठ पर बैठकर आयें। लेकिन भाई, मेरा चेतक तो चला गया!

'महाराज, मैं अपना अश्व आपको समर्पित करता हूँ। आप इस पहाड़ी की ओट में चले जाइए। मेवाड़ी सेना वहीं आपसे आ मिलेगी।'

'लेकिन तुम कैसे लौटोगे?'

'मृत सैनिकों के दो घोड़े मैंने बाँध रखे हैं। यहाँ से अधिक दूर नहीं हैं।'

'तुम्हें लौटने देंगे?'

'लौटने न दिया तो मैं मुगलों के बन्दीगृह में हूँगा या फिर जीवित ही न रहूँगा। अब मैं अकबर का सेवक शक्तिसिंह नहीं, मेवाड़ के महाराणा का भाई शक्तिसिंह हूँ। जरा देख तो आऊँ कि हल्दीघाटी के युद्ध ने मानसिंह में कितना साहस और कितनी चतुराई रहने दी है!'

सूर्योदय हो चुका था। दोनों भाइयों ने नाला पार किया और वहाँ आये जहाँ शक्तिसिंह का अश्व एक वृक्ष के साथ बँधा हुआ था। उसे छोड़कर शक्तिसिंह ने लगाम प्रताप के हाथ में सौंप दी। दोनों भाई फिर गले मिले। प्रताप शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार हो गये और उगते हुए सूर्य की दिशा में धीरे-धीरे चल पड़े। उनकी गति में इस समय न वेग था, न उत्साह।

'महाराज, आप हैं तो मेवाड़ भी है और उसकी विजय भी है। झालाराणा मूर्ख न थे। उनका बलिदान व्यर्थ न था। आपके साथ मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेवाड़ सदा मेवाड़ियों के ही हाथ में रहेगा, कभी दूसरों के हाथ में नहीं जाने पायेगा। जय एकलिंग! जय महाराणा प्रताप!' शक्तिसिंह ने उच्च स्वर से जय-निनाद किया।

प्रताप के घोड़े की गति बढ़ी और थोड़ी ही देर में वह एक पहाड़ी की ओट में अदृश्य हो गये। जब तक आँखों से ओझल न हो गये शक्तिसिंह उन्हीं की ओर देखता रहा।

'मजाल नहीं किसी की कि हमसे मेवाड़ छीने।' यह कहकर शक्तिसिंह विपरीत दिशा की ओर मुड़ गया। कुछ दूर चलने पर, मरे हुए मुगल सैनिकों के घोड़ों में से एक उसने अपने लिए पसन्द किया और सवार होकर आगे बढ़ा। कुछ ही दूर गया था कि सामने से एक मेवाड़ी घुड़सवार दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया। वह अपने घोड़े पर एक दूसरे घायल सैनिक को लिये हुए था। वह दूसरा घायल सैनिक अचेत मालूम पड़ता था।

'कौन है तू ?' शक्तिसिंह ने पूछा।

'देवराज—कुम्भलगढ़ का दुर्गपाल। आपने मुझे पहचाना नहीं ?' देवराज ने कहा।

'अरे हाँ, अब पहचाना। तुम तो बहुत बड़े हो गये देवराज ! तुम्हारे पिता के स्वर्गवास के बाद मैंने तुम्हें देखा ही कब था ? अब आज देख रहा हूँ।'

'जी हाँ, उसके बाद तो आप दिल्ली पधार गये थे।'

'अब दिल्ली से लौटा आ रहा हूँ। लेकिन तेरे घोड़े पर यह दूसरा सैनिक कौन है ?'

'एक घायल सैनिक है।'

'इसे उतार दे और मरहम-पट्टी कर।'

'जी, यह सैनिक पुरुष नहीं, नारी है।'

'खूब ! तू तो बिलकुल अपने बाप-जैसा निकला। जैसा वह औरतों का शौकीन था वैसा ही तू भी मालूम पड़ता है। आगे बढ़कर अपने महाराणा की खोज-खबर ले। वह भी घायल हो गये हैं।'

राजपूत जितने तलवार के उतने ही नारी-सौन्दर्य के भी भक्त होते थे। देवराज का पिता वीर था और साथ ही अत्यन्त विलासी भी, और यह बात सभी को मालूम थी।

शक्तिसिंह को यह जानने का अवकाश नहीं था कि देवराज के घोड़े पर वह घायल स्त्री सैनिक कौन है ? वह अपनी धुन में आगे बढ़ गया। मार्ग में इक्के-दुक्के मेवाड़ी योद्धा मिलने लगे। कोई लौट रहा था, कोई सेना के लिए रसद-पानी की फिक्र कर रहा था। किसी ने शक्तिसिंह को रोका-टोका नहीं। प्रत्याक्रमण या नयी मुठभेड़ की तैयारियाँ उसे कहीं दिखाई नहीं दीं। दिन चढ़ आया था और दोपहर होने को ही थी, परन्तु हल्दीघाटी का मैदान बिलकुल खाली पड़ा था। जहाँ कल घमासान लड़ाई हो रही थी वहाँ आज मनुष्यों और घोड़ों की लाशें पड़ी हुई थीं और उन्हें ठिकाने लगाने के लिए कुछ लोग डरते-डरते कभी आगे बढ़ते और फिर पीछे हट जाते थे। पक्षियों ने अभी मुर्दों पर मँडराना और उन्हें नोचना-खसोटना आरम्भ नहीं किया था। गिद्धों का एक पूरा दल वहाँ उतर आया था, परन्तु अभी चुपचाप दूर बैठा अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। मुर्दों

से पटे उस मैदान में से होकर शक्तिसिंह मुगल छावनी में पहुँचा। वहाँ उसे जीत के बदले हार का सन्नाटा दिखाई दिया। कई भागे हुए सैनिक अपने-अपने डेरों में लौटे चले आ रहे थे। लोगों ने शक्तिसिंह को भी लौटनेवाला एक भगोड़ा सैनिक ही समझा। वह सीधा सेनापति मानसिंह की छोलदारी की ओर गया। जब वहाँ पहुँचा तो मानसिंह किसी महत्वपूर्ण चर्चा में संलग्न था। शक्तिसिंह को आया देख मानसिंह ने कहा—आइए शक्तिसिंहजी, आइए। आप तो मेवाड़ की भूमि के चप्पे-चप्पे से वाकिफ हैं। बताइए, अब आगे हमें क्या करना चाहिए?

'क्यों? कल की लड़ाई में जीत तो हमारी हुई है न?' शक्तिसिंह ने पूछा।

'कुछ समझ में नहीं आता कि इसे जीत कहें या हार?'

'आप यह क्या फरमा रहे हैं? प्रताप को तो खुद मैंने अपनी आँखों भागते देखा है। बगटूट भागा जा रहा था चेतक।'

'प्रताप भागा भले ही, लेकिन यह खतरा तो बना ही हुआ है कि वह कभी भी हमला कर सकता है! कल रात देर तक मेवाड़ी सेना लड़ती रही। लड़ाई का अन्त किसी की हार या जीत में नहीं, रात के अँधेरे के कारण हुआ।' मानसिंह के कथन में बड़ी ही कटुता और निराशा थी।

'कोई नामांकित मेवाड़ी वीर भी हमारे हाथ लगे?'

'एक भी नहीं। सिर्फ मेवाड़ी सेना का एक हाथी भटककर हमारी तरफ आ गया। लेकिन आप तो प्रताप के पीछे गये थे न? जो टुकड़ी प्रताप के पीछे गई थी उसके सैनिकों का कहना था कि आप जरूर प्रताप को पकड़ लायेंगे।'

'वह तो हुआ नहीं राजा साहब।'

'हुआ नहीं या आपने खुद नहीं किया?'

'वह किया ही नहीं जा सकता था। प्रताप को पकड़ना उतना ही मुश्किल है जितना सूरज को हाथ लगाना। कभी सम्भव भी होता तो मैं उसे होने न देता।'

'क्या मतलब?'

'मतलब यह कि हल्दीघाटी की लड़ाई देखने के बाद मेरी रगों में फिर से मेवाड़ी खून दौड़ने लगा।'

'भाई की दया आ गई क्या?'

'भाई को एकलिंगजी के सिवाय किसी की भी दया नहीं चाहिए। हाँ, मुझे

अपने पर ग्लानि हुई। आप सेनापति हैं और मैं सैनिक हूँ इसलिए आपसे यह निवेदन करने आया हूँ कि अब मुगलों का वफादार नहीं रह सकता।'

'जानते हो इसका नतीजा क्या होगा?'

'जी हाँ। जानता हूँ और जानते हुए भी आपके सामने हाजिर हुआ हूँ। मेवाड़ के विरुद्ध अब मेरे हाथ कभी उठ नहीं सकते। हाँ, और किसी मोरचे पर लड़ना हो तो मैं तैयार हूँ।'

'यह भी याद है कि अकबरशाह ने किन संयोगों में आश्रय दिया था?'

'जी, भूला तो नहीं हूँ। अपनी वह बेवकूफी आज भी ठीक से याद है। अब उसी का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।' शक्तिसिंह ने कहा।

किशोरावस्था की बात है। एक बार प्रताप और शक्तिसिंह दोनो साथ-साथ शिकार खेलने गये थे। शक्तिसिंह का स्वभाव बचपन से ही बड़ा उग्र और निर्भय था। छुरी-कटारी की धार परखने के लिए यदि पास में कुछ न होता तो अपने शरीर पर ही चलाकर वह उन्हें आजमा लेता था। शिकार में सुअर सामने देखकर दोनो भाइयों ने एक साथ उस पर वार किया। सुअर मर गया। लेकिन दोनों भाइयों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि वह किसके वार से मरा और किसने पहले वार किया? दोनो अपनी ज़िद पर अड़ गये। मरा हुआ सुअर तो जीवित होकर गवाही दे नहीं सकता था। बात-बात में दोनो किशोरों का खून गरमा उठा और उन्होंने निपटारे के लिए हथियार खींच लिये। मनुष्य अपने जीवन की तीनों अवस्थाओं में कुछ-न-कुछ बेवकूफी करता ही रहता है। बाल्यावस्था और किशोरावस्था में मनुष्य का अहं बहुत बढ़ा हुआ और उग्र होता ही है। दोनो भाइयों में तलवारें चलने लगीं और हालत यहाँ तक पहुँच गई कि दोनो में से एक के भी जीवित बचने की आशा न रही। अनुचरों और साथियों ने उस भ्रातृ-युद्ध को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु किसी को सफलता नहीं मिली। राज-पुरोहित भी उस दिन आखेट में साथ थे। उन्होंने जब यह देखा कि भाइयों की इस लड़ाई में या तो युवराज प्रताप या वीरवर शक्तिसिंह की मृत्यु निश्चित है तो आगे बढ़कर दोनो को रोकने का प्रयत्न करने लगे। जब कहने-सुनने का कोई असर न हुआ तो वह राजभक्त ब्राह्मण चमचमाती तलवारों की परवाह न कर दोनो के बीच में जा कूदा और कटकर मर गया। पुरोहित की मृत्यु हुई! पवित्र

राजगुरु मारा गया ! ब्राह्मण का शरीर राजकुमारों के हाथों कट गया ! दोनों क्षत्रिय किशोर काँप उठे ! दोनों के शस्त्र म्यान में चले गये। उनके प्राण तो बच गये, परन्तु ब्राह्मण ने अपने को उत्सर्ग कर दिया। राज-परिवार में हाहाकार मच गया। पिता उदयसिंह उस समय जीवित थे। बड़े भाई के निर्णय की अवहेलना कर उसके सामने शस्त्र उठानेवाले छोटे भाई शक्तिसिंह को दंडस्वरूप देश से निर्वासित कर दिया गया। अपमानित और निर्वासित शक्तिसिंह अकबर की शरण में चला गया। जब मानसिंह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की तो शक्तिसिंह को मुगल सेना में ऊँचा पद देकर प्रताप के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा गया। इतने वर्षों के बाद भी प्रताप के प्रति शक्तिसिंह का क्रोध शान्त नहीं हुआ था।

लेकिन हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की वीरता और उत्सर्ग को देखकर शक्तिसिंह का क्रोध ही शान्त नहीं हुआ, राणा के प्रति स्नेह और पूज्य-भाव भी उत्पन्न हुआ। उसने वहीं अपनी मूर्खता का पश्चात्ताप करने और मुगलों से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निश्चय कर लिया। राजा मानसिंह ने उसे उसके अपमान की याद दिलाई, अकबर के अनुग्रहों का उल्लेख किया, परन्तु शक्तिसिंह किसी भी प्रकार राजी नहीं हुआ। उसने मानसिंह से सारी कहानी कह सुनाई और प्रताप के अश्व चेतक के आत्म-बलिदान का भी वर्णन किया।

सब-कुछ सुनकर मानसिंह ने साश्चर्य पूछा—आपको अपने भाई को बचाना ही था तो लौटकर क्यों आये ?

'सब-कुछ सच-सच बताने और आपसे आज्ञा लेने।' शक्तिसिंह ने कहा।

'क्या आप सोचते हैं कि मैं आपको चला जाने दूंगा ?'

'उम्मीद तो यही है। और अगर आप जाने नहीं देंगे तो सजा देंगे।'

'तो क्या आप सजा भुगतने के लिए लौट आये हैं ?'

'जी, मैं तो सच्चाईपसन्द आदमी हूँ। सजा का मुझे कोई डर नहीं।'

मानसिंह कुछ नहीं बोला। शक्तिसिंह इतना तो समझ ही गया था कि हल्दी-घाटी की लड़ाई में जीत मुगलों की नहीं हुई। राजपूतों के आक्रमण का भय अब भी बना हुआ था। यद्यपि यह सच था कि राजपूत सेना इस समय प्रत्याक्रमण करने के लिए प्रस्तुत नहीं थी। वहाँ से चार-पाँच कोस की दूरी पर सभी मेवाड़ी सैनिक जमा होकर युद्ध की थकान मिटा रहे थे।

सहसा मानसिंह ने पूछा—राणाजी का अब क्या करने का इरादा है ?

'इरादा तो मुझे मालूम नहीं। हाँ, इतना जरूर जानता हूँ कि उन्होंने अपनी तलवार को अभी म्यान नहीं किया है।' शक्तिसिंह ने कहा।

'मुगलों की ताकत और तैयारियों की जानकारी भी आपने उन्हें दी है ? कब तक म्यान से बाहर रहेगी उनकी तलवार ?'

'जी, यह तो उनसे पूछने पर ही मालूम होगा।'

'आप जा सकते हैं। जाना ही चाहते हैं तो कौन रोक सकता है ? लेकिन जब प्रताप से मिलें तो उन्हें इतना जरूर समझाइए कि अकबर के साथ दुश्मनी नहीं, दोस्ती में ही फायदा है।'

'जी, जरूर कहूँगा। परन्तु कोई फायदा नहीं होगा। उनका जवाब मैं जानता हूँ।'

'क्या ?'

'यही कि दोस्ती हो सकती है, लेकिन दासता नहीं। आपसे भी तो उन्होंने यही बात कही थी।'

मानसिंह ने शक्तिसिंह को मुगलों की सैनिक-सेवा से मुक्त कर दिया। मानसिंह को यह आशा थी कि शक्तिसिंह, जो मुगलों के साथ रहकर उनकी ताकत, शान-शौकत और दोस्ती के फायदों को समझ चुका था, राणा के पास जाकर उन्हें प्रभावित करने का अवश्य प्रयत्न करेगा। शायद इसी लिए मानसिंह ने शक्तिसिंह को चला जाने दिया था। फिर जो आदमी स्वयं ही रहना न चाहे उसे जोर-जबर्दस्ती रखने में कोई लाभ भी नहीं था। और मानसिंह यह भी दिखलाना चाहता था कि जिस तरह प्रताप ने दो-दो बार उसके साथ उदारता बरती उसी प्रकार की उदारता वह स्वयं भी बरत सकता है।

वह सारी रात मुगल सेना सशंक बनी रही। लोग यही सोचते रहे कि प्रताप अपनी बिखरी हुई सेना को समेटकर कभी भी आक्रमण कर देंगे। शाही छावनी में यह भी समाचार पहुँचे कि राणा प्रताप अपने घायल सैनिकों की सार-सँभाल में लगे हुए हैं। कई राजपूत सैनिक टुकड़ियाँ पहाड़ियों पर चढ़ती-उतरती भी दिखाई दीं। इस सबसे मुगलों को यह विश्वास तो हो ही गया कि राजपूतों ने हल्दीघाटी की लड़ाई में अपनी हार नहीं मानी है। अब सवाल यह था कि

सिसोदियों की जीवित सेना से कैसे मुठभेड़ की जाये और कैसे उसे हराया जाये ? मुगल सेना विजय-दुंदुभि बजाती हुई ही लौटकर अकबर के पास जा सकती थी। चुपचाप लौटकर जाने से अधिक अपमान और कोई नहीं था। राजा मानसिंह इसी तरह के विचारों में रात-भर वहीं पड़ा रह गया।

दूसरे दिन संवाददाताओं ने आकर खबर दी कि पास के ही एक गाँव गोगुंदा में जबर्दस्त सैनिक हलचल हो रही है। रात-भर के सोच-विचार ने हल्दीघाटी के युद्ध से उत्पन्न मानसिंह की निराशा और किंकर्तव्यविमूढ़ता को बहुत-कुछ कम कर दिया था। उसने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि प्रताप के अभिमान को चूर किये बिना मेवाड़ से हरगिज पाँव आगे नहीं बढ़ाऊँगा। हल्दीघाटी की लड़ाई में प्रताप का एक हाथी मुगलों के हाथ लगा था। उस हाथी का नाम रामप्रसाद था। राजा मानसिंह ने अपनी सेना को सम्बोधित करते हुए कहा कि राम का प्रसाद गिरफ्तार हो गया है और यह इस बात को जाहिर करता है कि दूसरी मुठभेड़ में राम का वंशज प्रताप भी जरूर गिरफ्तार होगा।

चित्तौड़ से भागने के बाद उदयसिंह ने गोगुंदा को अपनी राजधानी बनाया था, और मेवाड़ की राजधानी अभी तक वहीं थी। मानसिंह की बात सुनकर मुगल सेना के सिपहसालारों को लगा कि यदि गोगुंदा को जीत लिया तो सारा मेवाड़ कब्जे में आ जायेगा।

युद्धजीवी हमेशा युद्ध पर ही जीते हैं। सैनिकों को रणभूमि की आवश्यकता होती ही है। यदि कहीं रणभूमि नहीं मिली तो वे जहाँ खड़े होते हैं उसी धरती को रणभूमि बना डालते हैं। सैनिकों के लिए पराजय और पीछेहठ से अधिक अपमान तथा लज्जा की और कोई बात नहीं होती। उस युग की मुगल सेना को भी यही शिक्षा दी गई थी। यही उसका दृष्टिकोण था। युद्ध-कला में भी वह बड़ी निपुण थी। फिर मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए जो सेना भेजी गई थी वह तो अकबर की सर्वश्रेष्ठ सेना थी। उस सेना के सैनिक और सेना-नायकों ने कई मोरचे सर किये थे। बरफीले पहाड़ों और बंजर रेगिस्तानों में भी वे लड़कर विजय प्राप्त कर चुके थे। ऐसे सैनिकों के मन मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश और जंगलों को कोई गिनती नहीं थी। पहली मुठभेड़ के अनिर्णीत रह जाने से उन्हें कोई खास निराशा भी नहीं हुई थी। और जब मानसिंह ने उन्हें उत्तेजित

और उत्साहित किया तब तो सभी की बाहें फड़क उठीं। उन्होंने मेवाड़ की राजधानी पर हमला कर दिया। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि राजकुमार अमरसिंह को लेकर कुछ मेवाड़ी सरदार यहाँ छिपे हुए हैं। मानसिंह की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। न सही प्रताप, यदि अमर ही पकड़ लिया गया तो वह अकबर के सामने सिर उठाकर खड़ा तो रह सकेगा।

हल्दीघाटी की लड़ाई में अमर भी राणा प्रताप के साथ ही अपना जौहर दिखा रहा था। बचपन से ही वह पिता के शिकारों और युद्धों में साथ रहा था। बचपन से ही उसे युद्ध की कठिनाइयों और संकटों का अभ्यस्त रहने की शिक्षा दी गई थी। हल्दीघाटी की लड़ाई में अमर बड़ी वीरता से लड़ा था। लेकिन जब मुगलों ने जोर से हल्ला किया तो पिता-पुत्र एक दूसरे से विलग हो गये। अकेला अमर एक जगह मुगल सैनिकों से घिर गया। वैश्य मंत्री भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने जब अमर को घिरा देखा तो दोनो युवक राजकुमार के सहायतार्थ वहाँ आ पहुँचे। लड़ते-लड़ते जब साँझ हो गई तो झुटपुटे में वे अमर को रणभूमि से निकाल ले आये और मेवाड़ की राजधानी की ओर ले चले। यह तो पहले ही तय हो चुका था कि चाहे सभी मेवाड़ी सरदार मर-खप जायें, परन्तु प्रताप या अमर का बाल भी बाँका नहीं होने देंगे। सैकड़ों सरदारों ने अपने प्राण न्योछावर करके इस बात को पूरा किया। प्रताप और अमर दोनों ही बच गये। इस समय प्रताप अरावली की घाटियों में अपनी सेना को पुनः संगठित कर मानसिंह के लौटने के रास्तों को बन्द करने की योजना बना रहे थे। इधर भामाशाह की सलाह के अनुसार राजकुमार अमर गोगुंदा नगर को खाली करा रहा था। जब मानसिंह वहाँ पहुँचा तो सारा नगर खाली हो चुका था। केवल बीस सैनिक किले के बाहर एक मन्दिर के आगे द्वार की रक्षा के लिए खड़े थे।

इन बीस मेवाड़ी सैनिकों ने हजारों मुगल सैनिकों का सामना किया और अनुपम वीरता से लड़ते हुए खेत रहे। एक-एक मेवाड़ी सैनिक ने सौ-सौ मुगल सैनिकों [illegible]। जो मरना जानता है वह कभी हारता नहीं, अमर हो जाता है। जब बीसों सैनिक वीर गति को प्राप्त हुए तभी कहीं जाकर किले के दरवाजे खुले और मुगल सेना बाढ़ के पानी की तरह अन्दर घुस गई। परन्तु नगर तो सारा खाली पड़ा था। उन्हें कहीं एक भी आदमी नहीं मिला।

सभी नागरिक नगर खाली करके चले गये थे। लूटपाट के इच्छुक मुगल सैनिकों को वहाँ धन-दौलत तो ठीक तिनका भी नहीं मिला। तब झुंझलाहट से भरे सैनिक मन्दिरों और मकानों पर अपना गुस्सा उतारने लगे। जब वे एक मन्दिर को तोड़ रहे थे तो वहाँ छिपे हुए दो व्यक्ति उनके हाथ लगे। उनमें एक पुरुष था और दूसरी नारी। नारी का सारा शरीर घावों से क्षत-विक्षत हो रहा था। सैनिक दोनों को पकड़कर मानसिंह के समक्ष ले गये। पुरुष ने अपना परिचय देवराज के नाम से और नारी ने अपना परिचय गौतमी के नाम से दिया।

'देवराज ! पर तुम हो कौन ?' मानसिंह ने पूछा।

देवराज ने जवाब दिया—मैं कुम्भलढ़ का दुर्गपाल हूँ। राणाजी के साथ युद्ध में शरीक हुआ था।

'और यह युवती कौन है ?'

'यह है गौतमी, मेरी पत्नी।' देवराज ने कहा।

यह सुनते ही गौतमी गुस्से से तड़प उठी और बोली—झूठ ! नीच कहीं का ! मैं किसी की पत्नी नहीं। और किसी की पत्नी बनना चाहती भी नहीं।

'फिर तुम देवराज के साथ क्यों हो ?'

'मैं देवराज के साथ कभी नहीं रही। युद्ध में शत्रु पर वार करने के स्थान पर इस दुष्ट ने मुझी पर वार किया और जब मैं अचेत हो गई तो उठाकर यहाँ ले आया।' गौतमी ने कहा।

'तुम लड़ाई में गई थी ?'

'हाँ।'

'क्यों ? क्या लड़ाई में जाने के लिए आदमी नहीं थे ?' मानसिंह ने पूछा।

'राजा साहब, यह शालिवाहन के साथ भागकर जाना चाहती थी।' गौतमी के बदले देवराज ने उत्तर दिया।

'शालिवाहन ? वह सूरमा तो युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। गौतमी, तुम शायद यह जानती होगी कि लड़ाई में औरत यदि कैद हो जाती है तो उसे बन्धक की तरह रखा जाता है।' मानसिंह ने कहा।

'मुगलों में ऐसी प्रथा होगी। मेवाड़ में तो ऐसी प्रथा नहीं है।' गौतमी ने कहा।

मानसिंह कुछ देर चुप रहा और तब बोला—गौतमी को बाहर बिठाओ। उसकी मर्यादा का पूरा ध्यान रखा जाये। और देवराज, तुम यहीं खड़े रहो।

हुक्म मिलते ही मुगल सैनिक गौतमी को बाहर ले गये। मानसिंह वीर सेना-नायक ही नहीं, कुशल राजनीतिज्ञ भी था। वह इस प्रेम-प्रकरण का राजनीतिक उपयोग करना चाहता था। कुम्भलगढ़ बड़ा ही महत्वपूर्ण दुर्ग था। उसका दुर्गपाल भी उतना ही महत्वपूर्ण सामन्त होना चाहिए। मेवाड़ के किसी भी सामन्त को मुगल आज तक फोड़ नहीं पाये थे। लेकिन मानसिंह जानता था कि जहाँ धन, पद या सत्ता से काम नहीं बनता वहाँ स्त्री का प्रलोभन कारगर हो सकता है। स्त्री पुरुष का बड़े-से-बड़ा प्रलोभन रही है। जब गौतमी चली गई तो मानसिंह ने देवराज से पूछा—देवराज, सच-सच बताओ, क्या गौतमी तुम्हारी पत्नी है?

'अभी हमारा विवाह नहीं हुआ। बात चल ही रही थी कि शालिवाहन हम दोनो के बीच आ कूदा।' देवराज ने सच ही कहा था।

'यदि मैं तुम दोनो के विवाह की सहूलियत कर दूं, तो?'

'राजा साहब, मैं जीवन-भर आपका कृतज्ञ रहूँगा।'

'लेकिन तुम्हारा भरोसा ही क्या? कई मेवाड़ियों ने इसी तरह वचन दिये, हमारा आश्रय प्राप्त किया और इस लड़ाई में उन्हीं ने हमारे साथ दगा की।'

'राजा साहब, आप मेरी बात पर विश्वास करें। इसके बदले में मैं आपको कुम्भलगढ़ सौंप दूंगा।' देवराज ने चारों ओर देखकर यह इत्मीनान कर लिया कि कोई सुन तो नहीं रहा है और तब धीरे से उपर्युक्त बात कही।

'अच्छी बात है, जाओ। तुम्हारी शर्त कबूल है। मैं तुम्हें छोड़ता हूँ। बीच-बीच में अपनी खबर हमें भेजते रहना। जिस दिन तुम कुम्भलगढ़ को हमारे हवाले कर दोगे मैं तुम्हें शहन्शाह अकबर का मनसबदार और जागीरदार भी बना दूंगा। मुमकिन है कि कुम्भलगढ़ तुम्हीं को सौंप दिया जाये।'

'लेकिन गौतमी?'

'उसे तुम्हारे साथ लौटा दिया जायेगा। कहो तो मैं उसे समझाने की कोशिश करूँ?'

'जी नहीं। मुझे विश्वास है कि मैं उसे समझा सकूंगा।'

'नहीं देवराज, यह तुम्हारी भूल है। तुम उस लड़की को समझा नहीं सकोगे।'

'मेरे पास शस्त्र हैं, शक्ति है....'

'वह सब तो गौतमी के पास भी है। मैं अपने पाँच राजपूत सैनिक तुम्हारे

साथ किये देता हूँ। गोतमी को बाँधकर अपने साथ ले जाओ, नहीं तो वह तुम्हें बुत्ता देकर भाग जायेगी।'

मानसिंह ने देवराज को छोड़ दिया। गौतमी को भी आदरपूर्वक विदा करने का दिखावा किया; लेकिन साथ ही अपने कुछ सैनिक भी देवराज के हवाले कर दिये, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर वह गौतमी को बलपूर्वक अपने वश में कर सके। देवराज से ही मानसिंह को यह भी पक्का पता चल गया कि अमर और भामाशाह कुछ ही देर पहले नगर खाली करके चले गये हैं। अन्त में केवल एक विश्वासघाती मेवाड़ी को फोड़ने का सन्तोष ही मानसिंह के हाथ लगा।

देवराज और गौतमी वहाँ से सीधे कुम्भलगढ़ की ओर गये।

मानसिंह खुश था कि अब कुम्भलगढ़ उसे मिल जायेगा। लेकिन उसी रात मुगलों की सैनिक छावनी पर तीरों की वर्षा होने लगी। सैनिक घबरा उठे कि कहीं प्रताप चढ़ न आये हों। मुगल सैनिकों में भगदड़ मच गई। परन्तु तीरों की पहली बौछार जैसे ही रुकी मानसिंह ने अपने सैनिकों को शहर के चारों ओर खाई खोदकर धूल का परकोटा खड़ा करने की आज्ञा दी।

सैनिक जीवन का अर्थ है प्राण के बदले प्राण लेनेवाला जीवन। कब किस ओर से मृत्यु आ जायेगी इसे कोई सैनिक नहीं जानता। सैनिक को तो हर क्षण मृत्यु के लिए तैयार रहना पड़ता है, फिर वह किसी भी ओर से और किसी भी क्षण क्यों न आ जाये उसका काम है मौत का स्वागत करना। जो मौत से डरता है वह सैनिक नहीं। और मृत्यु भी कितने ही रूपों में आती है। वह भाले के फलक में चमकती है, बरछी की नोक पर बैठी होती है, हाथी की सूंड में झूलती रहती है, बन्दूक की नली में भरी रहती है, और फाँसी के फन्दे में लटकी रहती है।

बिजली की गति से आये और प्राणों को ले जाये तो मृत्यु का कोई भय नहीं। परन्तु कई बार वह अपंग कर देती है, रुधिर बहाती है और असहनीय शारीरिक यंत्रणा का कारण बनती हैं। उसे मनुष्य के साथ लुका-छिपी खेलने और उसे सताने में भी आनन्द आता है। जिसने मृत्यु के इस क्रूर रूप को समझ लिया वही सच्चा सैनिक हो सकता है।

लेकिन मृत्यु का स्वागत और आलिंगन ही सैनिक के जीवन का एकान्त

लक्ष्य नहीं होता। जिस प्रकार उसे प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करना पड़ता है उसी प्रकार रात-दिन लगातार जागरण भी करना होता है, भूख-प्यास सहनी पड़ती है, सर्दी-गर्मी बर्दाश्त करनी होती है। और जी-तोड़ मेहनत तो खैर करनी ही होती है। सैनिक को कभी रसोइया, कभी बढ़ई तो कभी चमार, कभी लोहार तो कभी राज और कभी शूद्र और मजूर भी बनना पड़ता है। अपने नायक और सेनापति की आज्ञा ही सैनिक के जीवन का ध्रुव सत्य है।

इसलिए मानसिंह की आज्ञा को शिरोधार्य कर मुगल सैनिकों को बरसते तीरों में भी खाई खोदना और धूल का परकोटा बनाना पड़ा। धूल का परकोटा बन गया। मेवाड़ी घुड़सवारों की बाढ़ को रोकने का साधन तो प्रस्तुत हो गया, लेकिन रक्षात्मक मोरचेबन्दी से ही तो प्राण नहीं बचते। मोरचाबन्दी करके भाले और तीर से तो बचा जा सकता है, परन्तु भूख का प्राकृतिक शस्त्र तो मोरचेबन्दी के अन्दर भी वार कर ही देता है। मानसिंह के सैनिक तात्कालिक आक्रमण से तो बच गये, परन्तु अब हजारों सैनिकों की रसद की व्यवस्था एक समस्या बन गई। शहर खाली हो गया था। वहाँ से जो अन्न प्राप्त हुआ वह इतना नहीं था कि उस पर अधिक समय तक गुजारा किया जा सके। जो मुगल टुकड़ियाँ अन्न की तलाश में जातीं उन पर मेवाड़ी राजपूत पहाड़ियों की ओट से निकलकर हमला कर देते और अन्न छीनकर भाग जाते। युद्ध में जो दया दिखाता है वह मार खा जाता है। जो मुगल सैनिक मेवाड़ की स्वतंत्रता का अपहरण करने के लिए आये थे उन्हें मेवाड़ी सैनिक हर तरह से परेशान करने लगे।

धीरे-धीरे हालत यहाँ तक बिगड़ी कि मानसिंह की सेना घबरा उठी। आमने-सामने की लड़ाई होती तो आनन-फानन उसका निपटारा हो जाता। परन्तु आँख-मिचौनी-जैसी यह छापेमार लड़ाई मुगल सैनिकों के बस की नहीं थी। मुगल सैनिक संत्रस्त हो उठे। बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें राणा प्रताप की सैनिक शक्ति का विश्वस्त संवाद नहीं मिल पाता था। यही लगता था कि मेवाड़ी सैनिक मानो सब जगह छा गये हों। कभी नगर पर तीरों की झड़ी लग जाती, कभी हजारों मेवाड़ी सैनिक पहाड़ियों पर चढ़ते-उतरते दिखाई देते और जो भी मुगल टुकड़ी समाचार पाने या अनाज का प्रबन्ध करने के लिए निकलती उसके प्राणों के लाले पड़ जाते थे। बाहर मैदान में निकलकर लड़ने की मानसिंह

की हिम्मत नहीं हो रही थी। और इधर राजपूतों के छापे मुगलों की हिम्मत को तोड़े दे रहे थे।

प्रताप का जो हाथी हल्दीघाटी की लड़ाई में पकड़ा गया था उसे मानसिंह ने बादशाह की सेवा में भेज दिया था। यह सौगात पाकर बादशाह सलामत बहुत ही खुश हुए। हाथी देखने में बहुत ही शानदार और समझदार भी था। बादशाह ने उसका नाम बदलकर पीरप्रसाद कर दिया था। परन्तु बादशाह तो हाथी की नहीं प्रताप के झुके हुए सिर की सौगात चाहता था। और मानसिंह को अभी तक इसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। अकबर की ही भाँति मानसिंह भी इस बात को जानता था कि प्रताप के हाथी को पकड़कर प्रताप को पकड़ने का सन्तोष नहीं किया जा सकता। जैसे-जैसे दिन बीतते गये अकबर को यह सन्देह होने लगा कि कहीं मानसिंह के मन में राजपूत जाति का प्रेम तो नहीं जाग उठा है और कहीं इसी लिए वह प्रताप को पकड़ने में देर तो नहीं कर रहा है। अकबर का सारा दबदबा उसके हिन्दू मित्रों की निष्ठा पर ही अवलम्बित था। यदि वह निष्ठा डिग जाती, हिन्दुओं में जात्याभिमान जागृत हो उठता तो अकबरी प्रताप के पाये लड़खड़ा जाते और उसके आधिपत्य का गगनचुम्बी मिनारा धड़धड़ाकर गिर पड़ता। अकबर मन-ही-मन मानसिंह को वापस बुलाने के मनसूबे करने लगा, यद्यपि प्रकट रूप में तो वह मानसिंह के सैनिक साधनों की वृद्धि ही करता जा रहा था।

अन्त में मानसिंह ने घिरी हुई सेना को बाहर निकालकर हमला करने की आज्ञा प्रदान की। हुक्म मिलने की देर थी। सभी मुगल सैनिक मेवाड़-विजय के लिए बाहर निकल पड़े और पास-पड़ोस की पहाड़ियाँ उनकी रण-हुँकारों से गूंज उठीं। तभी वर्षाॠतु प्रारम्भ हो गई। नीचे सैनिक दल घूम रहे थे और ऊपर उनसे भी बड़े-बड़े काले-काले बादल आकाश में घूमने लगे। नीचे सैनिक टुकड़ियाँ टकरातीं और ऊपर आसमान में बादल टकराते, गरजते और उनकी भिड़न्तों से बिजलियाँ कौंध-कौंध जातीं। बादलों की गड़गड़ाहट से धरती-आकाश एक होने लगे, जिसे सुनकर गरदन उठाकर टहुकनेवाले मोर भी डरकर शान्त हो जाते और पंखों में अपना मुंह छिपा लेते थे। जोरों की झड़ी लग जाती और ऐसा प्रतीत होने लगता मानो प्रकृति ने हल्दीघाटी का घमासान युद्ध आरम्भ कर दिया हैं। मुगल सैनिक बड़ी मुसीबत में फँस गये। रास्ते रुक गये। आपस में सम्बन्ध-विच्छेद होने

लगा। कोई सैनिक टुकड़ी कहीं रह गई, कोई कहीं। आक्रमण तो दूर रहा आत्म-रक्षा भी मुश्किल हो गई। घाटियों में पानी भर गया। नदी-नालों में बाढ़ आ गई। पहाड़ी रास्ते रपटीले हो गये। मेवाड़ की भूमि वैसे भी भयंकर थी और अब तो अतीव भयंकर हो गई। वर्षा ने मेवाड़ की भूमि को ही गीला नहीं किया मुगल सैनिकों की हिम्मत को भी भिगो दिया। भीगी हुई मेवाड़ भूमि प्रफुल्लित होने लगी, लेकिन मुगल सैनिकों के भीगे हुए दिल संकुचित हो रहे थे।

तभी बादशाह का हुक्म आ पहुँचा कि मानसिंह मेवाड़ को छोड़कर तत्काल दिल्ली लौट जाये। यह हुक्म सुना तो मानसिंह के हाथों के तोते उड़ गये। जो सेनापति कभी नहीं हारा था आज उसने पहली बार पराजय के दुःख का अनुभव किया। लेकिन सैनिकों की खुशी का पार न रहा। मानसिंह के साथ आये हुए सेनानायक भी मन-ही-मन आनन्द का अनुभव करने लगे। मानसिंह के अभिमान को इस प्रकार चूर होते देख उन्हें ईर्ष्या-जनित प्रसन्नता हो रही थी यद्यपि वे स्वयं भी मेवाड़ को जीत न सकने के अपयश के भागी थे। मानसिंह तो चाहता था कि वर्षा-ऋतु के चार महीने अजमेर में रुककर फिर मेवाड़ पर हमला करे, परन्तु बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन करना उसके बस की बात नहीं थी। इस प्रकार हल्दीघाटी की लड़ाई मुगलों के लिए बेकार ही हुई। अकबर का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। यह सच है कि मानसिंह ने कुछ चौकियाँ वहाँ कायम कर दी थीं, परन्तु अभी वह मेवाड़ से जाने भी नहीं पाया था कि महाराणा प्रताप ने उनमें से कइयों को फिर अपने अधिकार में कर लिया।

दिल्ली पहुँचकर मानसिंह ने बादशाह का मुजरा करने की आज्ञा माँगी तो उसे अनुमति नहीं दी गई। अकबर मानसिंह से नाराज हो गया था। मानसिंह की बहिन बादशाह की बेगम थी, इसलिए अकबर की नाराजगी अधिक समय तक टिक न सकी। फिर मानसिंह की वीरता में, उसकी कार्यकुशलता और चतुराई में अकबर को पूरा विश्वास था। मानसिंह अकबर के लिए उपयोगी भी बहुत था। लेकिन हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप की कीर्ति और प्रतिष्ठा निरन्तर बढ़ती जा रही थी। अकबर को डर लगने लगा कि कहीं प्रताप की यह कीर्ति सारी हिन्दू जनता को मेरा विरोधी न बना दे। वह जैसे भी बने प्रताप की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को रोकना चाहता था। यदि उसके बस की बात होती तो वह प्रताप को कभी

न छेड़ता, मेवाड़ और प्रताप को स्वतंत्र ही रहने देता। लेकिन प्रश्न अकबर की व्यक्तिगत हैसियत का नहीं, मुगल-साम्राज्य का था। जब सारा भारतवर्ष मुगलों की छत्रछाया के नीचे हो तब अकेले प्रताप को स्वतंत्र और अलग रहने देना, मुगलई सल्तनत और अकबर की राजनीति के लिए भयंकर भूल होती। प्रताप को स्वतंत्र रहने देने का अर्थ था हिन्दू जनता और हिन्दू धर्म के बीच उसे एक आदर्श वीर के रूप में प्रतिष्ठित करना।

अकबर सारे भारतवर्ष को मुगल शासन के अन्तर्गत संगठित करना चाहता था। उसका खयाल था कि ऐसा हो जाने पर न तो कभी हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़े होंगे और न गृह-कलह की ही कोई सम्भावना रह जायेगी। वह हिन्दू-मुस्लिमों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर एक नवीन समाज-रचना का निर्माण करना चाहता था। गुण और योग्यता के आधार पर, हिन्दू-मुसलमानों को, विना किसी भेद-भाव के नौकरियाँ देने का वह पक्षपाती था। हिन्दू कलाकारों को उनकी कला के विकास का पूरा अवसर प्रदान कर राजा और प्रजा के आनन्द में वृद्धि का अभिलाषी था। पूर्व और पश्चिम के बीच वाणिज्य-व्यवसाय को पूरी तरह विकसित करना चाहता था। उसका लक्ष्य भारत की समृद्धि की वृद्धि और देश की सर्वांगीण उन्नति करना था। इसके लिए वह देश में सड़कें, कुएँ, तालाब, धर्मशालाएँ और बाग-बगीचों आदि का निर्माण करना चाहता था। सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना और देश-विदेश के हिन्दू-मुसलमान, पारसी-ईसाई, विद्वानों और सन्तों के सम्मेलनों ओर समागमों से स्वयं लाभान्वित होना और देश की समस्त जनता को लाभान्वित करना चाहता था। अकबर का ऐसा विश्वास था कि यह सब महत्वाकांक्षाएँ तभी फलीभूत हो सकती हैं जब उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम समूचा भारत देश उसके शासन के अन्तर्गत हो। समुद्र में द्वीप की भाँति, किसी भी छोटे-से राज्य का उसके साम्राज्य से अलग और स्वतंत्र रहना उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक ही होता। यह एक स्वतंत्र राज्य दूसरे राज्यों को भी स्वतंत्र और अलग होने के लिए प्रेरित कर सकता था। यदि एक को स्वतंत्र रहने दिया जाता तो ऐसे अनेक छोटे-छोटे द्वीप खड़े हो जाते और उसके साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर देते। इसलिए व्यक्ति के रूप में मेवाड़ और प्रताप से अकबर को कोई शिकायत न होते हुए भी सम्राट् के

रूप में स्वतंत्र मेवाड़ और वहाँ का स्वाभिमानी राणा उसकी आँखों में सोने की थाली में लोहे की कील की तरह खटकता रहता था।

अकबर की यही राजनीति उसे मेवाड़ के विरुद्ध युद्ध के लिए सतत प्रेरित करती रहती थी। यह बात सदैव उसके मन में खटकती रहती थी कि एक छोटा-सा मेवाड़, मुट्ठी-भर सैनिकों की सहायता से उसके विशाल साम्राज्य और सुसज्जित सेना का सामना ही न करे, अनेकों संग्रामों के विजयी सेनानायकों को पराजित भी कर दे। यही कारण था कि जब मानसिंह प्रताप को पराजित किये बिना दिल्ली लौटकर आया तो बादशाह उससे नाराज हो गया और उसे अपने दरबार में आने की इजाजत नहीं दी। मानसिंह को उसने पदच्युत भी कर दिया और प्रधान सेनापति का पद शाहबाजखाँ नाम के एक वीर मुगल सेनानायक को प्रदान किया। बादशाह ने स्वयं उससे कहा कि या तो तुम्हें प्रताप का सिर काटकर लाना होगा या फिर स्वयं अपना सिर कटवाना होगा। अकबर ने निश्चय कर लिया था कि अब जैसे भी बने मेवाड़ के उन्नत सिर को कुचलना ही होगा।

इस प्रकार स्वतंत्र मेवाड़ पर फिर से अकबरी आतंक का भय मँडराने लगा।

जब मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए शाहबाजखाँ के नेतृत्व में अकबर ने दूसरी बार विशाल सेना भेज दी तो मानसिंह के प्रति उसका रोष कम हो गया। कहाँ तो उसने मानसिंह की सलामी बन्द कर दी थी और अब स्वयं ही उसे बुला भेजा। मानसिंह को बुलाकर अकबर उससे मेवाड़ के बारे में और उन कारणों के बारे में विस्तारपूर्वक जानना चाहता था जिससे मुगल सेना की पराजय हुई थी।

बादशाह का आदेश मिलते ही मानसिंह शाही महल की ओर चल पड़ा। जैसे ही उसने महल में पाँव रखा पृथ्वीराज की उससे मुलाकात हो गई। पृथ्वीराज ने छूटते ही उससे कहा—राजा साहब, हल्दीघाटी ने हमें नहीं, प्रताप को ही गौरवान्वित किया है।

'जब तक आप-जैसे कवि और कविता-प्रेमी भारतवर्ष में रहेंगे हार को जीत और जीत को हार बनाते रहेंगे।' मानसिंह ने जवाब दिया।

यह पृथ्वीराज बीकानेर के राजा का छोटा भाई और कवियों का आश्रय-दाता ही नहीं, स्वयं भी बहुत अच्छा कवि था। भारतीय संस्कृति, हिन्दू धर्म और क्षत्रियत्व के प्रति इसके हृदय में बड़े आदर और अभिमान की भावना थी। अकबर

का दरबारी होकर भी यह सदैव अपने स्वतंत्र मत को व्यक्त करता रहता था। उसकी पत्नी भी बड़ी ही वीर और निर्भीक क्षत्राणी थी। कहा जाता है कि एक बार उसने अकबर पर ही कटार तान दी थी। किस्सा यों बताया जाता है कि अकबर ने हिन्दू और मुस्लिम राज-परिवारों का पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़तर करने के लिए दिल्ली में नौरोज के मेले का आयोजन किया था। यह मेला प्रतिवर्ष नौ दिनों के लिए लगता था और इसमें शाही हरम की बेगमें और राजपूत राजाओं की रानियाँ हिस्सा लेती थीं। पुरुषों का प्रवेश इस मेले में वर्जित था। मेले की सारी खरीद-फरोख्त महिलाओं के द्वारा ही की जाती थी। रानियाँ और बेगमें दुकानें लगातीं और सभी अमीर-उमरावों, सामन्तों-सरदारों और राजा-नवाबों के घर की महिलाएँ खरीदारी के लिए वहाँ आती थीं। कई बार कुछ दुष्ट प्रकृतिके व्यभिचारी पुरुष महिलाओं के वेश में मेले में अनधिकृत रूप से प्रविष्ट होकर दुराचार भी कर बैठते थे। एक बार ऐसे ही बुरकाधारी पुरुष ने पृथ्वीराज की असाधारण रूप से सुन्दरी पत्नी को नौरोज के मेले में छेड़ दिया। वह क्षत्राणी नागिन की भाँति फुफकारकर कटार हाथ में लिये उस पर टूट पड़ी। वह नारी-वेशधारी पुरुष और कोई नहीं स्वयं बादशाह अकबर ही था। बड़ी कठिनाई से उस दिन वह अपने प्राण बचा सका। ऐसी वीर पत्नी का पति यह पृथ्वीराज स्वयं भी बड़ा ही वीर, स्वाभिमानी, निर्भीक और दबंग राजपूत था। उसने मानसिंह से कहा—हार को कोई क्या जीत बनायेगा! विजयी मेवाड़ तो अभी तक अपनी विजय-पताका फहरा रहा है। और प्रताप जब तक जीवित हैं यह पताका फहराती रहेगी और मेवाड़ कभी झुक न सकेगा।

'प्रताप को झुका न दिया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।'

'मैं तो यही चाहता हूँ राजा साहब, कि प्रताप कभी न झुकें। आपका नाम रहे, न रहे, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं।'

'तो आप प्रताप के साथ क्यों नहीं हो जाते?'

'प्रताप को किसी के साथ की आवश्यकता ही कहाँ है? बाकी, आप मेरी यह बात लिख लीजिए कि प्रताप कभी मुगलों के सामने झुकेंगे नहीं।'

'जहाँपनाह को मैं आपकी इस राय की इत्तिला दे दूंगा।'

'बादशाह सलामत तो मेरी राय से वाकिफ हैं। मैं केवल आपसे प्रार्थना कर

रहा हूँ कि आप और अकबरशाह प्रताप को अकेला ही रहने दें।'

'आप फिक्र न करें, वह अकेले ही रहेंगे।' यह कहकर मानसिंह मुस्कराया और शीघ्रतापूर्वक अकबरशाह को ताजीम देने के लिए अन्दर चला गया।

इधर पृथ्वीराज सचिन्त भाव से यह सोच रहा था कि कहीं मानसिंह ने मेवाड़ी सरदारों को फोड़ तो नहीं लिया!

::४::

मुगल सेना लौट गई थी, परन्तु जाते-जाते वह अपनी कुछ चौकियाँ मेवाड़ में छोड़ती गई थी। मेवाड़ के सभी लोगों का यही खयाल था कि मुगल सेना शीघ्र ही लौट आयेगी। घायल सैनिकों की सार-सँभाल और अपनी मोर्चाबन्दी को मजबूत करते हुए महाराणा प्रताप कुम्भलगढ़ के दुर्ग की ओर लौटे चले आ रहे थे। कुम्भलगढ़ का दुर्गपाल देवराज तो हल्दीघाटी के मैदान से पहले ही लौट आया था और अपने गढ़ में बैठा हुआ था। परन्तु इस समय उसका सारा ध्यान किले की रक्षा के बदले प्रेम की रक्षा और उसकी प्राप्ति में लगा हुआ था।

लड़ाई के मैदान में शालिवाहन के एक तीर लगा और वह घोड़े से गिर पड़ा। गौतमी सैनिक वेष में उसके साथ ही थी। शालिवाहन के तीर को खींचने के लिए जैसे ही वह घोड़े से उतरी, उसके सिर पर जोर की चोट लगी और वह वहीं बेहोश हो गई। देवराज उसे बेहोशी की ही हालत में रणभूमि से उठाकर कुम्भलगढ़ ले आया। मानसिंह की छोलदारी में एक क्षण के लिए गौतमी को होश आया और वह फिर बेहोश हो गई। वहाँ उससे क्या कहा गया और उसने क्या जवाब दिया इसका उसे जरा भी खयाल नहीं था। जब वह होश में आई तो उसने अपने-आपको कुम्भलगढ़ दुर्ग के एक गुप्त स्थान में पड़ा पाया और देवराज को अपने चारों ओर मँडराते देखा। मनुष्य की जीवेषणा बड़ी प्रबल होती है। सांघातिक रूप से घायल व्यक्ति भी यदि जीवित रहना चाहे तो मरता नहीं, जी जाता है। गौतमी के साथ भी यही हुआ। शालिवाहन को जो तीर लगा वह प्राण-लेवा था। गौतमी उसके साथ मरने के ही लिए घोड़े से कूदी थी। उसे विश्वास था कि दूसरा तीर स्वयं उसका काम तमाम कर देगा और वह अपने प्रियतम के साथ ही स्वर्ग-लोक की यात्रा करेगी। लेकिन तीर के बदले किसी ने उसके सिर पर चोट की

और वह बेहोश हो गई। बेहोश होते हुए भी उसे इतना अवश्य याद रहा कि वार करनेवाला और कोई नहीं स्वयं देवराज ही था।

अब होश में आकर सबसे पहले उसी देवराज को गौतमी ने अपने सामने खड़ा पाया। वह होश में ही नहीं आ रही थी, स्वस्थ भी हो रही थी। देवराज सुन्दर था, परन्तु गौतमी को न जाने क्यों वह भयंकर रूप से कुरूप दिखाई देता था। कई दिनों तक गौतमी ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। उसकी उपस्थिति में वह अपने नेत्र मूंदे रहती थी। लेकिन कब तक आँखों को मूंदे रखती? धीरे-धीरे वह देवराज की ओर देखने लगी। देखने ही नहीं, बड़ी बारीकी से उसका निरीक्षण भी करने लगी। फिर वह देवराज के साथ बातें करने लगी। वे बातें तिरस्कार और अपमान से भरी होती थीं। परन्तु देवराज को वे प्रेम की पुष्प-वर्षा के समान लगतीं; और वह स्वयं तो उससे प्रेमपूर्वक बोलता ही था।

एक दिन देवराज ने कहा—गौतमी, अब तो तुम जी गई।

'क्यों? और किसके लिए?' गौतमी ने उलटकर पूछा।

'यह तो स्वयं तुम्हारे समझने की बात है। जितना जल्दी समझ सको उतना ही अच्छा।'

'क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हारे लिए जी गई हूँ?'

'हाँ।'

'यह तुम्हारी भूल है देवराज।'

'मुझे तो ऐसा नहीं लगता। और गौतमी, यह न भूलो कि तुम मेरे कब्जे में और मेरे बन्धन में हो।'

'बन्धन में रखने से ही क्या होगा देवराज? मैं तुमसे प्रेम तो कर नहीं सकती।'

'शालिवाहन युद्ध में काम आया, यह बात मैं तुम्हें बार-बार बता चुका हूँ।'

'तो क्या तुम समझते हो कि मृत प्रेमी से प्यार नहीं किया जा सकता?'

'बेकार की बात से फायदा ही क्या? प्रेम तुमने अवश्य किया होगा, परन्तु विना विवाह के प्रेम को भूला जा सकता है और यदि प्रेमी जीवित न हो तब तो उसको याद रखने का प्रश्न ही नहीं उठता।'

'देवराज, चुप रह। बन्द कर अपनी जबान।'

'मैं तुम्हें फिर से याद दिला दूं कि तुम मेरे कब्जे में और मेरे बन्धन में हो।'

'मेवाड़ की बेटी को बन्धन में रखनेवाले शूरवीर पैदा होने लगेंगे तो सारा मेवाड़ ही बन्दी हो जायेगा।'

'बेकार की बातों से क्या फायदा, गौतमी? स्वीकार कर लो, दुर्गपाल की रानी बन जाओ और स्वतंत्र होकर सुखपूर्वक रहो।'

'नहीं तो?'

'जन्म-भर कैद में सड़ती रहोगी। और सारा जीवन असहनीय रूप से कष्ट-पूर्ण हो उठेगा।

'कोई चिन्ता नहीं। मैं उसके लिए तैयार हूँ। सता ले जितना तेरा जी चाहे।'

'अच्छा!' यह कहकर देवराज वहाँ से चला गया। उसे विश्वास था कि गोतमी अपना दुराग्रह आज नहीं तो कल अवश्य छोड़ने को विवश होगी। क्योंकि वह जानता था कि प्रेमी कभी पराजित नहीं होता। वह इस बात को भी जानता था कि सफल कामुक ही सफल प्रेमी होता है। कामुकता ही प्रेम है। फिर गौतमी-जैसी कोमलांगी को वश में करने के उपाय भी वह जानता था। शालिवाहन ही उसके मार्ग का एकमात्र कंटक था, जिसे वह निकाल ही चुका था। अब उसका प्रेम-पथ सर्वथा निष्कंटक हो गया था। गौतमी भी उसके कब्जे में थी। उसने उसकी सुख-सुविधा के सभी प्रबन्ध कर दिये थे और उसे बड़े आराम से रखता था। उसे मानसिक कष्ट पहुँचाने और व्याकुल करने के उपाय भी वह अकसर काम में लाता रहता था। महाराणा प्रताप अभी तक लौटकर कुम्भलगढ़ आ नहीं पाये थे। यद्यपि मुगल मेवाड़ के अधिकांश भाग को जीते बगैर ही चले जाने को विवश हुए थे, परन्तु देवराज जानता था कि वे शीघ्र ही लौट आयेंगे। उसे यह भी आशा थी कि सम्भवतः महाराणा कभी कुम्भलगढ़ लौट ही नहीं सकेंगे। लेकिन यदि लौट ही आये तो गौतमी के प्रश्न का निपटारा उसके पहले ही हो जाना चाहिए। इस लिए उसने गोतमी से एक दिन कहा—गौतमी, आज तो तुम्हें अन्तिम रूप से निप-टारा कर ही लेना होगा।

गोतमी ने अपनी बन्दी अवस्था और चारों ओर के कड़े-चौकी पहरे की ओर देखकर सहज भाव से मुस्कराते हुए कहा—आज तो मैं अन्तिम रूप से निर्णय करने की नहीं।

नारी की मुस्कराहट नारी की विजय की ही सूचक होती है; परन्तु मूर्ख पुरुष सदैव उसे अपनी ही विजय का परिचायक मान बैठता है। गौतमी को बहुत दिनों के बाद मुस्कराते देखकर देवराज निहाल हो उठा। उसने यही समझा कि अब तो मैदान मार लिया। उसने कहा—अन्तिम निर्णय के लिए यदि कोई अवधि निश्चित करनी हो तो कर सकती हो।

'जिस दिन मेवाड़ की अन्तिम रूप से पूर्ण विजय होगी उसी दिन मैं भी अन्तिम रूप से अपना निर्णय करूँगी।' गोतमी ने कहा।

'तो यह समझ लो गौतमी, कि अब मेवाड़ की कभी विजय हो ही नहीं सकती। इस बार मुगलों की सारी सेना मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए आ रही है और मेवाड़ एक वर्ष भी टिक न सकेगा।' देवराज ने अत्यन्त मन्द स्वर में गम्भीरता-पूर्वक कहा।

'तो जिस दिन मेवाड़ की अन्तिम रूप से पूर्ण पराजय होगी उसी दिन मैं भी अन्तिम रूप से अपना निर्णय कर लूंगी।' गौतमी ने कहा।

'इस तरह पागल न बनो गोतमी। मुझे क्यों दुःख दे रही हो?'

'क्या खूब? कैद में मैं पड़ी हूँ और दुःख का अनुभव तुम्हें हो रहा है? वाह!' गौतमी ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा।

'बन्धन-मुक्त होना तो तुम्हारे हाथ में है। दुर्गपाल को स्वीकार कर लो और मुक्त हो जाओ।'

गोतमी खिड़की के बाहर देखने लगी। सीखचोंवाली वह खिड़की दृष्टि-पथ को रोकती न थी। गौतमी के मुंह पर एक रंग आता और एक रंग जाता था। देवराज आशापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखता हुए सोच रहा था कि अब गौतमी अवश्य मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। तभी गौतमी ने चौंककर कहा—देखो देवराज, किले की ओर कोई छोटी-सी सेना लिये चला आ रहा है। कौन हो सकता है?

'किले की ओर आ रहा है? कहीं मुगलों की सेना न हो?' देवराज ने भी जाली की राह बाहर की ओर देखते हुए कहा।

सच ही एक छोटी-सी सेना इसी ओर चली आ रही थी। उसके आगे-पीछे धूल उड़ती दिखाई दे रही थी। वर्षा-ऋतु ने मेवाड़ की भूमि पर हरियाली का मखमली

गलीचा बिछा दिया था। किले के नीचे की पहाड़ियाँ भी हरी घास से शोभित थीं। परन्तु देवराज के नेत्रों को वह हरियाली शान्ति नहीं पहुँचा रही थी।

'मुझे तो महाराणा मालूम पड़ते हैं।' गौतमी ने आगन्तुक सेना को पहचानते हुए कहा।

'इतनी जल्दी ? मेरी धारणा तो थी कि अभी दस दिन तक नहीं पहुँच पायेंगे।'

'लेकिन उनको चैन कहाँ ?'

'यह तो हमारी जान को मुसीबत हो गई। हल्दीघाटी के घाव अभी सूखने भी नहीं पाये और राणाजी ने सीमाओं में पलीता लगा दिया।'

'क्या मतलब ? कैसी सीमाएँ और कैसा पलीता ?'

'सिरोही, डूंगरपुर और ईडर को उन्होंने मुगलों के सामने खड़ा कर दिया है।'

'तो बुरा क्या किया ? राजपूत राजा यदि मिलकर कुछ करें तो सारे मुगल-साम्राज्य को उलट सकते हैं।'

'यह भी कहीं हुआ है ? मुगलों से आज तक कोई जीता भी है ?'

'और तुम्हारा खयाल है कि अब भी नहीं जीत सकता ?'

'हाँ। युद्ध निरर्थक है। मुसलमानों से कोई नहीं जीत सकता।'

'तुम मुसलमान क्यों नहीं बन जाते ?'

'सिर्फ तुम्हारी खातिर।'

तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया। देवराज के एक विश्वस्त अनुचर को गौतमी के इस निवासस्थान का पता था। वह जानता था कि देवराज अपना अधिकांश समय यहीं व्यतीत करता है। अकेले उसी को यहाँ तक आने और आवश्यकता पड़ने पर दरवाजा खटखटाने की अनुमति थी। वह अनुचर इस समय दुर्गपाल को यही संवाद देने आया था कि महाराणा अपनी सेना के साथ पधार रहे हैं।

प्रेम का मार्ग कभी निष्कंटक नहीं होता। आज ही उसे गौतमी की सम्मति प्राप्त करनी थी, लेकिन विधि वाम हुआ और बिना सम्मति प्राप्त किये ही उसे लौटना पड़ा। दरवाजा खटखटाये जाते ही देवराज समझ गया कि सच में राणाजी आ पहुँचे हैं और उसे जाना ही होगा।

'जल्दी जाओ देवराज !' गौतमी ने असमंजस में खड़े देवराज से कहा।

'जाता तो हूँ लेकिन शीघ्र ही लौट भी आऊँगा।'

'हाँ, अवश्य लौटोगे। मेरा विश्वास तो है कि तुम भी शीघ्र ही यहाँ भेज दिये जाओगे।' गौतमी ने कहा।

आगन्तुक सेना बहुत ही समीप आ गई थी। दुर्गपाल के लिए आवश्यक था कि वह महाराणा को लेने के लिए दुर्ग के द्वार पर तत्काल पहुँच जाये। फिर अभी उसे शस्त्रास्त्र भी धारण करने थे। इसलिए इच्छा न रहते हुए भी उसे गौतमी को छोड़कर जाना पड़ा। आज गौतमी ने देवराज का तिरस्कार नहीं किया था, कड़ाई से पेश भी नहीं आई थी, देवराज को उसके शब्दों में प्रेम की प्रतिध्वनि भी सुनाई दी थी। वह मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ वहाँ से चल दिया—शीघ्र ही लौट आने के लिए।

जिस स्थान में गौतमी थी, वहीं लौट आने के लिए? गौतमी तो कुम्भलगढ़ के बन्दीगृह में थी। किले में राजमहल थे, शस्त्रागार थे और कारागार भी थे। गढ़पति देवराज एक ऐसी जगह रहता था जहाँ से वह किले के अन्दर और बाहर सभी स्थानों को एक साथ देख सकता था। सारे किले पर उसका आधिपत्य था। किले के प्रत्येक कमरे और दरवाजे की चाभी उसके पास रहती थी। उसने गौतमी को किले के एक निराले कोने में कैद कर रखा था और वहाँ तक पहुँचने का रास्ता भूल-भुलैया से भरा था। गौतमी को किसी भी प्रकार का शारीरिक कष्ट नहीं दिया जाता था। लेकिन उससे किसी को मिलने भी नहीं दिया जाता था। अकेला देवराज ही उसके पास आता-जाता और उससे बातें करता था। गौतमी वहाँ से बाहर निकल भी नहीं सकती थी। केवल एक झरोखा था और उसे भी सीखचों से बन्द कर दिया गया था। जब अन्दर बैठे-बैठे गौतमी का जी उकताने लगता तो वह झरोखे में आ बैठती और दूर-दूर का दृष्य देखा करती। कभी-कभी गौतमी के लिए यह बन्दी जीवन असह्य हो उठता था। लेकिन मुक्ति का कोई मार्ग नहीं था। केवल देवराज की पत्नी बनकर ही वह मुक्त हो सकती थी।

लेकिन ऐसा वह कैसे करे? जिस पुरुष को वह चाहती नहीं, उसे अपनी देह कैसे समर्पित करे? दैहिक समर्पण ही तो पति-पत्नी बनने का आद्य लक्षण होता है। गौतमी की माता चित्तौड़ के जौहर में जलकर सती हुई थीं। मीराँबाई के कृष्णमन्दिर की वह रखवाली करती थी और उसने मीराँ के विषपान

की बातें सुन रखी थीं और नन्दिनी को स्वयं अपनी आँखों विषपान करते देखा था। गौतमी के पिता ने भी चित्तौड़ की रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की थी। जब उदयसिंह अपने परिवार के साथ मुगल सेना का घेरा तोड़कर चित्तौड़ से भागा तो गौतमी उसके साथ निकल आई थी। तब से वह निरन्तर राज-परिवार के साथ ही रही। वहीं उसने शस्त्रास्त्र चलाना सीखा और माता के मुंह से सुने हुए मीराँ के पदों को गा-गाकर अपने सूने मन को बहलाया और भगवद्भक्ति का अनुभव किया। कई वर्षों तक उसके मन में पुरुष के प्रति आकर्षण ही उत्पन्न नहीं हुआ, यद्यपि उसके रूप और सौन्दर्य को देखकर अनेक युवक उसकी ओर आकर्षित हुए थे। चित्तौड़ के हाथ से निकल जाने के बाद मेवाड़ सतत युद्धरत ही रहा। एक दिन के लिए भी सामरिक परिस्थिति का अन्त न हुआ। जब युद्ध छिड़ा हुआ हो तो प्रेम ओर राग-रंग के लिए अवकाश नहीं होता। राजपूत योद्धा इस बात को मानते थे। लेकिन फिर भी राजपूत युवकों के हृदय में प्रेम का संचार होता ही था। और यदि युवकों के हृदय में प्रेम जाग ही उठे तो इसके लिए युवक-युवतियों को दोष देना निरर्थक होगा।

जब प्रताप ने कुम्भलगढ़ में निवास किया तो दुर्गपाल देवराज ने गौतमी को देखा और वह उसकी निगाहों में बस गई। लड़ाई में कई मेवाड़ी वीर मारे गये थे इसलिए बूढ़ों और प्रौढ़ों की संख्या अधिक नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि कई किशोरों को युवावस्था के पहले ही बहुत-से उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सँभालने पड़े। देवराज एक ऐसा ही किशोर था। उसका पिता भी लड़ाई में काम आया था। इसलिए कुम्भलगढ़ के दुर्गपाल का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य उसे सौंपा गया। वह कामदेव की भाँति स्वरूपवान और दिखनौटा था। अपनी इस विशिष्टता के प्रति वह सजग भी था। जब गौतमी उसे पसन्द आ गई तो वह यह मान बैठा कि गौतमी को भी मैं अवश्य पसन्द आया हूँगा। गौतमी युवकों के साथ ही शस्त्रास्त्र चलाना सीखती थी और प्रतियोगिताओं में भाग भी लेती थी। ऐसे ही एक प्रसंग पर देवराज ने गौतमी के समक्ष अपना प्रेम-निवेदन किया।

जीवन में प्रथम बार गौतमी का प्रेम से परिचय हुआ। अभी तक वह बालोचित क्रीड़ाओं और भजन-भाव में ही व्यस्त रहती आई थी। आज उसने प्रेम का पहली बार साक्षात्कार किया। दुर्गपाल-जैसा महत्वपूर्ण सामन्त उससे

अपना प्रेम-निवेदन कर रहा था। सुन्दर भी वह बहुत था। कृष्ण की तरह काला नहीं, बलराम की तरह गोरा था। लेकिन गौतमी ने मन में अपने पति की जो कल्पना कर रखी थी उसके अनुरूप देवराज नहीं था।

'देवराज, तू सुन्दर तो बहुत है।'

'जैसी जिसकी दृष्टि। वैसे मेवाड़ की दृष्टि तो मुझे गोरा और सुन्दर ही समझती है।' देवराज ने कहा।

'तुझसे अधिक सुन्दर और गोरा दूसरा कोई युवक मेवाड़ में नहीं ?'

'नहीं।'

'लेकिन तेरा तीर तो मेरे तीर से आगे कभी जाने ही नहीं पाता ?'

'तेरे तीर के आगे किसी का तीर जाता भी है कि मेरा जायेगा ?'

'जाता क्यों नहीं; एक आदमी का जाता तो है।'

'किसका ?'

'शालिवाहन का।' गौतमी ने कहा।

'अरे, वह उस भगोड़े राजा का बेटा! मेवाड़ ने आश्रय न दिया होता तो दोनों बाप-बेटे कुत्ते की मौत मर जाते। उस भगोड़े के साथ तुम मेरी तुलना करती हो ?' देवराज ने शालिवाहन के प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा।

ग्वालियर के राजा रामसिंह तोमर को भी मुस्लिमों से पराजित होकर ग्वालियर छोड़ना पड़ा था। अपना राज्य पुनः प्राप्त करने के जब उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गये तो वह अपने मेवाड़ी मित्र उदयसिंह के दरबार में रहने चला आया। जब चित्तौड़ पर आक्रमण हुआ और वहाँ से भागना पड़ा तो जयमल ने रामसिंह को भी उदयसिंह के साथ चले जाने का अनुरोध किया। रामसिंह तो वहीं मुगलों से दो-दो हाथ करना चाहता था, परन्तु जयमल के अनुरोध को उसे मानना पड़ा। दोनों पिता-पुत्र उदयसिंह के साथ चित्तौड़ से निकल आये। तब से वे बराबर प्रताप के साथ ही रहते थे। रामसिंह वीर ही नहीं समझदार और राजनीति-कुशल भी था। प्रताप हर प्रसंग पर उससे सलाह लेते थे। रामसिंह का पुत्र शालिवाहन भी बड़ा ही वीर और बचपन से ही अपने खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने के सपने देखता रहता था। छुटपन से ही उसके सारे प्रयत्न इसी

दिशा में केन्द्रित थे। वह अच्छा तीरन्दाज, कुशल घुड़सवार और कष्ट-सहिष्णु भी था। बिना थके मीलों लम्बी यात्रा कर सकता था। महाराणा प्रताप उसके इन गुणों पर मुग्ध थे। उसकी कई परीक्षाएँ लेने के बाद उन्होंने उसे मेवाड़ की सीमा की रक्षा का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा था। शत्रुओं की गतिविधि पर दृष्टि रखने का भार और मेवाड़ी सेना के गुप्तचर-विभाग को संगठित और विकसित करने का दायित्व भी उसी को सौंपा गया था।

उस दिन देवराज ने शालिवाहन का अपमानजनक शब्दों में उल्लेख किया था; लेकिन गौतमी का जैसे-जैसे उससे परिचय बढ़ता गया, उसकी पसन्द के पुरुष के वह अधिकाधिक निकट आता गया। वह देवराज की भाँति गोरा नहीं था। उसका साँवला रंग गौतमी को मीराँ के कृष्ण की तरह लगने लगा। एक दिन एकान्त में गौतमी ने यह बात शालिवाहन से कह भी दी। सुनकर शालि-वाहन चौंका और बोला—तू कृष्ण के साथ मेरी तुलना करती है?

'हाँ।'

'कृष्ण में और मुझमें किस बात में समता है?'

'कृष्ण का रंग काला था और तेरा रंग भी काला है।'

'काला रंग तुझे प्रिय है?'

'हाँ।'

'बड़ी विचित्र बात है। काला रंग किसी को भी अच्छा नहीं लगता. परन्तु तुझे न जाने क्यों अच्छा लगता है!'

'वह तेरा रंग है न. इसलिए अच्छा लगता है।'

'गौतमी, मेवाड़ियों के पास किसी का रंग-रूप देखने के लिए समय ही कहाँ है?'

'यह बात तो तेरी सच है। परन्तु मेरी कुछ ऐसी ही आदत हो गई है। एक आँख तीर को देखती है और दूसरी आँख तीर चलानेवाले को।'

'यह तो जानती है न कि तीर चलानेवाला तीर से ही मारा जाता है?'

देवराज के बन्दीगृह में पड़ी हुई गौतमी संस्मरणों में खो जाती और यह सब पुरानी बातें उसकी आँखों के सामने आ खड़ी होतीं। कितना सच कहा था शालिवाहन ने? कितने स्पष्ट रूप में उसने अपना भविष्य देख लिया था? इन

बातों की याद आते ही गौतमी की छाती भर आती थी। देवराज के प्रेम को अस्वीकार कर वह सैनिक बनकर शालिवाहन के साथ लड़ाई के मैदान में गई थी। उसके उत्कट प्रेम और तपस्या ने शालिवाहन को भी पिघला दिया था। उसने उसे अभिवचन दिया था कि जिस दिन मेवाड़ पर मुगलों के आक्रमण का भय नहीं रह जायेगा और मैं ग्वालियर का अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लूंगा उसी क्षण तुझे अपनी पत्नी बना लूंगा। उसके पहले तो गौतमी, मैं तेरा पति बनने के योग्य नही।

लेकिन गोतमी को वह दिन देखना नसीव न हुआ। वदले में उसे शालिवाहन की मृत्यु ही देखनी पड़ी। मेवाड़ियों को मौत का तो कोई डर नहीं। मृत शालिवाहन के साथ गौतमी भी मर सकती थी, लेकिन हाय रे दुर्भाग्य, वह शालिवाहन के साथ मर भी न सकी! दुष्ट देवराज ने उस पर प्रहारकर उसे बेहोश कर दिया और पकड़कर ले आया और यहाँ बन्दीगृह में डाल दिया। अव वह मर भी नहीं सकती। प्राण देने का कोई साधन भी उसने नहीं रहने दिया। बस इस झरोखे में खड़ी अपने भूत और भविष्य को देखती रहे। दोनो की अपेक्षा उसे अपना वर्तमान ही अधिक अन्धकारमय प्रतीत होता था। जीवित रहने की जरा भी इच्छा नहीं थी, लेकिन प्राण देने की भी कोई सुविधा नहीं थी। एक छोटी-सी कटार भी पास में होती तो वह उसे छाती में भोंककर छुट्टी पा जाती।

लेकिन अपना अन्त करने के पहले क्या उस दुष्ट देवराज का अन्त नहीं किया जा सकता? जिसने मेरे प्रेम में बाधा पहुँचाई वह देवराज क्या मेवाड़ के साथ विश्वासघात नहीं करेगा? ऊपर से सुन्दर है लेकिन अन्दर हलाहल विष भरा है उसमें। मुगलों की विजय के मनसूबे बाँधा करता है। राणाजी के प्रयत्नों में उसे जरा भी विश्वास नहीं। सुरक्षा, अधिकार और समृद्धि के लोभ में पड़कर कई राजपूतों को गौतमी ने मुगलों के पाँव पकड़ते और इस्लाम धर्म को स्वीकार करते देखा था। इस समय देवराज की भी ऐसी ही मनःस्थिति थी। अपने स्वार्थ के लिए वह मेवाड़ पर और मेवाड़ के राणा तथा हिन्दू धर्म पर भी निःसंकोच होकर हाथ उठा सकता था। कैसे रोका जाये इस दुष्ट को? [illegible] ?

साधन केवल एक ही है और वह है गौतमी का शरीर।!

इस विचार-मात्र से गौतमी का हृदय काँप उठा। तभी उसके बन्दीगृह का

द्वार खुला और बन्द हो गया। एक दासी अन्दर आई और उसने मिष्ठान्न से भरे दो पात्र गौतमी के आगे रख दिये।

'क्या तू जानती नहीं कि मेवाड़ में सब कोई पत्तल-दोने में खाते हैं ? मैं सोने-चाँदी अथवा पीतल के बरतनों में खाना नहीं खा सकती।' गौतमी ने कहा।

दासी चुप रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। देवराज के दो-एक विश्वस्त अनुचरों के अतिरिक्त गौतमी के पास और कोई भी आ नहीं सकता था। और उन विश्वस्त अनुचरों को भी उसके साथ बोलने-बतलाने की अनुमति न थी। कभी-कभी यह दासी गौतमी के प्रश्नों का बहुत ही थोड़े शब्दों में संक्षिप्त-सा उत्तर दे देती थी।

'भोजन वापिस ले जा।' गौतमी ने डपटकर कहा।

दासी चुप खड़ी रही। फिर वह मुस्करा दी।

'तू तो मेवाड़ की है न ?'

दासी ने इस प्रश्न का भी कोई उत्तर नहीं दिया। गौतमी ने दो पात्रों में से एक पात्र को उठाकर फेंक दिया। अन्दर के सारे पकवान कमरे में बिखर गये। दासी घबड़ा उठी और झुककर बिखरी हुई सामग्री को चुनने लगी। गौतमी सिंहिनी की भाँति उस पर कूद पड़ी और दोनो हाथों से उसके गले को दबा कर बोली—अपनी कटार चुपचाप मेरे हवाले कर दे नहीं तो गला घोंट दूंगी।

उन दिनों शायद ही कोई राजपूत नारी बिना हथियार के रहती थी। अधिकतर वे छुरी या कटारी को अपने सिर के बालों अथवा कमर में छिपाकर रखती थीं। नारियों के पास अपने शील की रक्षा का बस यही एक साधन था। नारी चाहे राजपरिवार की हो या सामान्य प्रजाजन एक कटार उसके पास अवश्य रहती थी।

दासी ने सोचा कटार तो गौतमी ले ही लेगी। मैं न दूंगी तो मेरा गला घोंट-कर भी ले लेगी। इससे तो यही अच्छा है कि कटार दे दूं और अपने प्राण बचा लूं। उसने हाँफते हुए कहा—कटार मेरी कमर में है। लेकिन एक ही शर्त पर दे सकती हूँ।

'कौन-सी शर्त ?'

'यही कि आप उससे आत्महत्या नहीं करेंगी।'

दासी की आशंका सच ही थी। गौतमी की मनःस्थिति इन दिनों ऐसी ही थी

कि वह कभी भी आत्महत्या कर सकती थी। उसे कटार की आवश्यकता भी इसी लिए थी।

'यदि मैं इस शर्त को न मानूं?'

'तो आप मुझे मारकर ही कटार ले सकेंगी। आपका बाल भी बाँका हुआ तो देवराज मुझे जीता नहीं छोड़ेगा। इससे तो अच्छा है आपके ही हाथों मरूँ।'

गौतमी दासी की कठिनाई को समझ गई। बोली—अच्छी बात है, आत्म-हत्या नहीं करूँगी। ला कटार।

'वचन देती हैं?'

'हाँ। लेकिन बदले में तुझे भी यह वचन देना पड़ेगा कि तू इस बारे में एक शब्द भी किसी से नहीं कहेगी।'

'वचन देती हूँ कि नहीं कहूँगी। कहने पर तो मैं ही मारी जाऊँगी। अपने प्राण बचाने के लिए भी मुझे चुप ही रहना होगा।' यह कहकर दासी ने कटार गौतमी को सौंप दी और कमरे में बिखरी हुई भोजन-सामग्री को समेटने लगी।

अकस्मात् वन्दीगृह का दरवाजा खुला। दासी घबड़ा उठी। उसने सिर उठाकर देखा तो देवराज स्वयं चला आ रहा था।

'क्या हो रहा है यह?' उसने डपटकर पूछा।

'गौतमी इस थाली में भोजन नहीं करती।' दासी ने डरते-डरते कहा।

'फिर किसमें भोजन करना चाहती है?'

'पत्तल-दोने में।'

'तो ले क्यों नहीं आती? पत्तल-दोने की यहाँ क्या कमी? देर ही कितनी लगेगी?'

दासी के जी-में-जी आया। बिखरी हुई भोजन-सामग्री को सहेजना छोड़कर वह पत्तल-दोने लेने के लिए फुर्ती से बाहर की ओर भागी। कटार हाथ में आते ही गौतमी के मन में अपार साहस का संचार हो गया। उसने निर्भीक स्वर में पूछा—इतनी जल्दी लौट आये देवराज?

'हाँ, तुझे छोड़कर जाने का मन नहीं करता।'

'परन्तु राणाजी ने तो तुम्हें इतनी जल्दी विदा किया नहीं होगा?'

'मुझे उनका स्वागत करना था सो कर आया। उन्होंने किले को सुसज्जित

करने का आदेश दिया, सो उसमें करना ही क्या है? किला तो सुरक्षित और सुसज्जित है ही। फिर राणाजी को विश्राम की भी आवश्यकता थी इसलिए मैं लौट आया। जाना तो फिर भी पड़ेगा ही।'

'क्यों?'

'राणाजी को समाचार मिले हैं कि मुगल सेना मेवाड़ को चारों ओर सेघेरने की तैयारी कर रही है।'

देवराज को तो गौतमी के साथ बातचीत करने का कोई बहाना चाहिए था। यह मौका मिला तो वह अपने लोभ का संवरण न कर सका। उधर गौतमी के पास कटार थी, इसलिए वह भी अब बड़े निश्चिन्त भाव से उसके साथ बातचीत कर सकती थी।

'तो इससे क्या हुआ?'

'हुआ क्यों नहीं। कुम्भलगढ़ की रक्षा का भार तो मुझी पर है।'

'रक्षा कर सकोगे?'

'कर क्यों न सकूंगा? अवश्य कर सकूंगा।'

'तुम तो मेरे मोह में पड़े हो। तुम्हें अवकाश ही कहाँ है?'

'सब-कुछ तुम्हारे ही हाथ में है। मेवाड़ को जिताना और कुम्भलगढ़ को बचाना हो तो तुम मेरा हाथ पकड़ लो।'

'यदि स्वीकार न करूँ?'

तो मेवाड़, कुम्भलगढ़ और तुम—तीनों का नाश होगा।'

'राणाजी से तुमने कहा था?'

'पागल हो गई हो क्या? ऐसी बातें राणाजी से कही भी जा सकती हैं?'

'मैं राणाजी से कह देखू। वह हमारी बात को समझ लें और आदेश दें तो मैं सहर्ष तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार कर लूंगी।'

'राणाजी को पता चल गया तो हम दोनो को शूली चढ़ा देंगे। जानती नहीं कि यह लड़ाई का जमाना है और इस समय प्रेम की चर्चा तक निषिद्ध है।'

'क्या राणाजी जानते हैं कि मैं तेरी कैद में हूँ?'

'गौतमी, क्या तुम मुझे निरा बच्चा ही समझती हो।'

'बच्चे होते तब तो तुम मेरी बात को बड़ी सरलता से समझ जाते। तुम्हें

कुछ देर और प्रतीक्षा करनी होगी। हम दोनों में से कोई भी अभी हल्दीघाटी को भूल नहीं पाया है। शालिवाहन की मृत्यु को भी मैं भूल नहीं सकी हूँ और तुम्हारे प्रहार का घाव भी अभी भरने....'

'गौतमी, यह तुम्हारा निरा भ्रम है कि मैंने तुम पर वार करके तुम्हें बेहोश किया। सच में तो मैंने तुम्हें जीवनदान दिया है। मैं न होता तो कोई मुगल तुम्हें उठा ले जाता.... कितनी बार बता चुका हूँ तुम्हें।'

'लेकिन मैंने तो तुमसे जीवनदान माँगा नहीं था। अब तुम्हारी बात को तभी सच मान सकती हूँ जब तुम मुझे मुक्त कर दो।'

'तुम मुक्त ही हो। चाहो तो आज से नीचे के बगीचे में घूम सकती हो।'

'बगीचा भी तो कैदखाना ही है।'

'मुक्त होना तो तुम्हारे हाथ की बात है। मेरा प्रस्ताव मान लो और मुक्त....'

गौतमी के मन में तो आया कि कटार निकालकर देवराज की छाती में भोंक दे, लेकिन मेवाड़ के इस दुश्मन को तो कभी भी मारा जा सकता था। उसकी कामुकता से वह परिचित थी। स्त्री होने के नाते इस बात को भी जानती थी कि कामी पुरुष सदा ही नारी के चरणों में पड़ा होता है। फिर हाथ में कटार लेकर नारी विश्व-विजयिनी बन जाती है; तब उसे किसी का डर नहीं होता।

गौतमी ने कहा—ऐसी जल्दी क्या है देवराज? जरा हल्दीघाटी की याद भूलने दो। उसके बाद....

'अच्छी बात है। आज से तुम बगीचे में घूमने जा सकती हो!.... और लो ये पत्तल-दाने भी आ गये। तुम कहो तो मैं अपने हाथ से कौर खिलाऊँ।' यह कहकर देवराज हँस पड़ा।

दासी पत्तल-दोने ले आई। गौतमी ने तिरछी निगाहों से देवराज की ओर देखा। वह निहाल हो उठा। उसने सोचा, गौतमी का मन पिघलता जा रहा है। शीघ्र ही वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। इसी तरह मन के लड्डू खाता हुआ देवराज गौतमी के बन्दीगृह से बाहर निकल आया। जैसे ही वह बाहर आया उसे नगाड़ा बजता सुनाई दिया। उसने सोचा कि राणाजी ने आराम करने के विचार को कहीं स्थगित तो नहीं कर दिया। उसने कान लगाकर सुना। सभी सैनिकों और सेनापतियों को एकत्रित होने के लिए नगाड़ा बजाया जा रहा

था। दुर्गपाल की उपस्थिति तो सभी समितियों में आवश्यक होती है। देवराज मन-ही-मन मनाने लगा कि किसी तरह इस जंजाल से मुक्ति पा जाऊँ तो गंगा नहाऊँ। दुर्ग की ही नहीं, दुर्ग में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा की चिन्ता करो; ऐसे में प्रेम के लिए समय कहाँ बचेगा ?

और राणाजी को यह कौन समझाये कि राजनीतिक स्वतंत्रता के मृगजल में खारा जल भी नहीं, केवल बालू होती है। मारवाड़, जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, बूंदी, ग्वालियर—सभी आज कितने सम्पन्न और सुखी हैं ? मेवाड़ यदि इन राज्यों का अनुसरण करे तो उसके भी सारे दुःख मिट जायें और वह सुखी और सम्पन्न हो जाये। मुगल सेना में कितने ही राजपूत सेनानायक थे। उनमें से कई तो देवराज के मित्र थे। राजस्थान के कितने ही राजनीतिज्ञ अकबर की नीति का संचालन और निर्धारण कर रहे थे। मूर्ख भामाशाह को इतनी अकल तो आना ही चाहिए कि मेवाड़ का लाभ युद्ध में नहीं मुगलों के साथ समझौता करने और वाणिज्य-व्यवसाय को विकसित करने में है। कितने वैश्य-महाजन तलवार छोड़कर व्यापार कार्य में लग गये ! सूरत, भड़ोच और खम्भात तो आज दिल्ली के मुहल्ले ही बन गये हैं। फिर अकेले मेवाड़ की स्वतंत्रता में ऐसा क्या धरा है जिसके लिए इतने दुःख उठाये जायें और आग और खून को न्योता दिया जाये ?

देवराज मन-ही-मन इस तरह की बातें सोचता चला जा रहा था। उसके इन विचारों की पृष्ठभूमि में गौतमी का रूप उदित होता और फिर अस्त हो जाता था।

::५::

बादशाही फौज ने मेवाड़ पर फिर से हमला कर दिया। हल्दीघाटी की लड़ाई में मुगलों की जीत नहीं हुई थी। राणाजी को उनका घोड़ा चेतक लड़ाई के मैदान से सही-सलामत निकाल ले गया था। मेवाड़ी सरदार राणा के प्राण बचाना चाहते थे, परन्तु स्वयं सरदारों को अपने प्राणों की जरा भी परवाह नहीं थी, इसलिए राणा के चले जाने के बाद भी वे वीरतापूर्वक लड़ते रहे और लड़ाई में काम आये। परन्तु उन्होंने दुश्मन को एक इंच भी आगे नहीं बढ़ने दिया। रात घिर

आई और लड़ाई बन्द करनी पड़ी। परन्तु मुगल सेना दूसरे दिन लड़ने के लिए तैयार न हुई। मानसिंह ने दो-एक नगरों पर हमला किया और चार-छह गाँवों में मुगल चौकियाँ भी कायम कीं। परन्तु प्रताप की योजना के अनुसार मेवाड़ के प्रत्येक गाँव और प्रत्येक नगर ने ऐसा प्रबल प्रतिरोध किया कि मुगल सेना को प्राणों के लाले पड़ गये। इधर वर्षा भी आरम्भ हो गई थी इसलिए विशाल मुगल सेना नदी-नालों और दलदल के बीच फँस गई। तभी बादशाह ने मानसिंह को वापिस बुला लिया। थकी-हारी मुगल सेना मेवाड़ छोड़कर अजमेर लौट गई। इस प्रकार अकबर का आक्रमण निरर्थक हुआ।

लेकिन राणा प्रताप, और राणा प्रताप ही क्यों, प्रत्येक मेवाड़ी सैनिक इस बात को जानता था कि अकबर की सेना शीघ्र ही मेवाड़ पर फिर से आक्रमण करेगी। जिस अकबर ने काबुल, कन्धार और काश्मीर को जीत लिया वह छोटे-से मेवाड़ को स्वतंत्र कैसे रहने दे सकता था? प्रताप के पिता ने अकबर को पहली भिड़न्त में असफल किया था। चित्तौड़ पर तो उसका अधिकार हुआ, परन्तु मेवाड़ को वह जीत न सका। दूसरी बार उसने प्रताप को अपने हाथ दिखाये, लेकिन इस बार भी मुंह की खानी पड़ी। इस असफलता से बादशाह खिसिया उठा और झुंझलाहट से भर गया। उसने मानसिंह को पदच्युत करके इस्लाम-मतावलम्बी सेनापति को एक विशाल सेना देकर मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा। इस सेनापति का नाम खानखाना मिर्जा था।

यह मिर्जा बैरमखाँ का बेटा था। अकबर के साम्राज्य को बढ़ाने और उसे स्थायित्व देने में बैरमखाँ ने बड़ा काम किया था। उत्साह से भरा हुआ मिर्जा मेवाड़ पर चढ़ दौड़ा। जहाँ हिन्दू सिपहसालार असफल हुआ वहीं सफलता का सेहरा सिर पर बाँधने के लिए मिर्जा ने मेवाड़ के कई हिस्सों पर प्रबल आक्रमण कर दिया। उसने मेवाड़ के सारे पहाड़ी प्रदेश में अपनी सेनाओं का जाल बिछा दिया। उसका इरादा शेर को उसकी माँद में घुसकर पकड़ने का था। राणा इन दिनों मुगलों से छापेमार लड़ाइयाँ लड़ रहे थे। कभी वह किसी पहाड़ी चोटी पर दिखाई देते, तो कभी किसी घाटी में। आज किसी नगर में मोरचेबन्दी किये बैठे हैं, तो कल किसी गाँव के किनारे खड़े हैं, कभी जंगल में छिप जाते, कभी झाड़ियों की ओट में दुबक जाते, तो कभी खुले मैदान में निकल आते।

इस प्रकार प्रताप आँख-मिचौनी खेल रहे थे और मिर्जा उनके पीछे पड़ा था कि सहसा एक दिन उसने पाया कि उसकी सभी बेगमें गुम हो गई हैं। जिन मुगल सेनापतियों को विजय की पूरी आशा होती वे अपने जनानखाने को भी साथ ले आते और लड़ाई के मैदान में एक सुरक्षित स्थान में उनके लिए कनातें तनवा देते थे। इस प्रकार लड़ाई के मैदान में, ठीक युद्ध के बीच, सेनापतियों का औरतों का शौक और बेगमों का भी लड़ाई का शौक पूरा होता रहता था।

महाराणा प्रताप को पकड़ने के लिए अकबर का सिपहसालार मिर्जा खुद ही सेना लिये पहाड़ी दर्रों में घूम रहा था। लौट आकर उसने क्या देखा कि खुद उसी की छावनी लुट गई और उसकी बेगमों को राजपूत सैनिक उठा ले गये। कहाँ तो विजय के मनसूबे कर रहा था और कहाँ अपने बीबी-बच्चों को ही खो बैठा! हल्दीघाटी के मैदान में मानसिंह का मान-मर्दन हुआ था। परन्तु मिर्जा की यह पराजय तो सर्वथा अकल्पनीय थी। मानसिंह असफल अवश्य हुआ था, परन्तु उसने अपने ही बीबी-बच्चों को तो नहीं खोया था। मिर्जा ने अपने-आपको बड़ी विषम परिस्थिति में फँसा पाया। घबड़ाया कि अकबर सुनेगा तो क्या सोचेगा? खबर ऐसी नहीं थी जो अकबर से छिपी रहती। अकबर ने पहले से ही ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि उसे मेवाड़ के मोरचे का पूरा-पूरा और सच्चा-सच्चा समाचार बराबर मिलता रहे। फिर मिर्जा को यह डर भी था कि पता नहीं राजपूत उसकी बेगमों के साथ कैसा व्यवहार करें। बेचारे की रात की नींद और दिन का चैन हराम हो गया। विजय की उम्मीदें लेकर आये हुए उस सेनापति को मारे चिन्ता के कई-कई रात नींद तक न आई। सिर्फ इतना सोचकर दिल को तसकीन दे लेता था कि राजपूत स्त्री-बच्चों और बूढ़ों को सताते नहीं और औरतों की इज्जत पर हाथ नहीं डालते। मुगल सेनानायक मिर्जा का यह विश्वास तो सच ही था।

अपने पीछे पड़े खानखाना को अरावली की घाटियों में फँसाकर महाराणा प्रताप ने अपने पुत्र अमरसिंह को उसकी छावनी पर आक्रमण करने के लिए भेजा। मिर्जा ने अपनी सेना को कई भागों में बाँटकर प्रताप के पीछे लगा रखा था, इसलिए स्वयं उसकी सैनिक छावनी अरक्षित रह गई थी। प्रताप को जैसे ही यह संवाद मिले उन्होंने अमरसिंह को उस ओर भेज दिया। अमरसिंह ने बड़ी कुशलता से छापा मारा और छावनी को लूट लिया। वहाँ काफी हथियार उसके

हाथ लगे और साथ ही मिर्जा का पूरा जनानखाना भी उसके कब्जे में आ गया। सबको साथ लेकर अमरसिंह वहाँ आया जहाँ राणा प्रताप पड़ाव डाले उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बड़े उत्साह से अमर ने मुगल सिपहसालार की छावनी को लूटने और विध्वंस करने की कहानी कही और तब मिर्जा की बेगमों को राणा के सामने खड़ा कर दिया।

'लूट के माल में तू बेगमों को भी पकड़ लाया?' प्रताप ने किंचित् कठोर स्वर में पूछा।

'जी, जो भी हाथ लगा, ले आया। हथियार भी बहुत मिले हैं।' अमर ने कुछ लज्जित होते हुए कहा।

'जानते नहीं कि क्षत्रियों के लिए औरतों को लूटना और पकड़कर लाना वर्जित है?'

'जी, गलती तो हो गई। अब क्या हो?'

'इन्हें आदरपूर्वक लौटा ले जाओ और खानखाना के सिपुर्द कर आओ।'

एक सरदार ने सलाह दी—इस शर्त पर क्यों न लौटायें कि मुगल सेना मेवाड़ छोड़कर चली जाये?

'युद्ध का जवाब युद्ध है। शस्त्रों का सामना शस्त्रों से करना चाहिए। मैं दुश्मनों की औरतों को पकड़कर जुआ नहीं खेलता। मेरा युद्ध मुगलों के विरुद्ध है, मुगल स्त्रियों के विरुद्ध नहीं।' प्रताप ने अपनी सामरिक नैतिकता का स्पष्टीकरण करते हुए कहा। फिर उन्होंने स्वयं खड़े होकर मिर्जा की बेगमों का आदर-मान किया, कुशल-क्षेम पूछा, उनके खाने-पीने और रहने-सोने का उचित प्रबन्ध करवाया। जब बेगमों की थकावट मिट गई तो राणा ने उन सबको अपनी बहिन मानकर यथायोग्य भेंट-पुरस्कार दिया और पालकियों में बिठाकर मुगलों की छावनी में पहुँचा दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने अमरसिंह को साथ भेजा और यह ताकीद भी कर दी कि इस दुष्कृत्य के लिए वह मिर्जा से माफी माँगे। मिर्जा ने राणा का यह व्यवहार देखा तो चकित रह गया। उसने अमरसिंह को माफ ही नहीं किया, गले से लगा लिया।

महाराणा प्रताप की यह बड़ी-से-बड़ी नैतिक विजय थी। राणा की उदारता से प्रभावित होकर मिर्जा खानखाना ने अपने हथियार डाल दिये। ऐसे सदाशय

और उच्च महाराणा से वह कैसे लड़ता ? उसका लड़ाई का सारा जोश ही समाप्त हो गया। उसने अपनी बिखरी हुई सेना को समेटा और अकबर की सेवा में पहुँचकर निवेदन किया—जहाँपनाह जीतने के लिए मुल्कों की कमी नहीं। गुलाम की इल्तिजा है कि मेवाड़ को आजाद रहने दिया जाये।

'यहाँ से जो भी जाता है हारकर लौटता है और बाला राणा की तारीफ ही नहीं, इबादत भी करने लगता है।' अकबर ने झुंझलाकर कहा।

'खुदावन्द, बाला राणा की शख्सियत ही ऐसी है। उनकी इबादत हर सच्चे इन्सान का फर्ज है।'

'ठीक है। अब मावदौलत खुद उसकी इबादत के लिए तशरीफ ले जायेंगे।'

और अकबर एक विशाल सेना और [illegible] को लेकर स्वयं ही मेवाड़ पर चढ़ दौड़ा। उसे विश्वास हो गया था कि स्वयं गये बिना न तो मेवाड़ को जीता और न प्रताप को झुकाया जा सकेगा। यदि अकबर स्वयं न जाता तो उसकी सेना का कोई भी सिपहसालार मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए तैयार न होता। अधिकांश राजपूत सरदार मेवाड़ को छेड़ने के विरुद्ध थे। मिर्जा खानखाना के लौट आने के बाद तो कई मुस्लिम सिपहसालार भी यही कहने लगे थे कि अब प्रताप को छेड़ना उचित नहीं। लेकिन अकबर ने किसी की सलाह न मानी। वह जानता था कि मेवाड़ का महाराणा कितना ही शूरवीर और रणनिपुण क्यों न हो, मेरे नेतृत्व में जानेवाली विशाल मुगल सेना का सामना नहीं कर सकेगा, उसे झुकना ही होगा।

अपनी विशाल वाहिनी को लेकर अकबर ने अजमेर में आकर मुकाम किया। वहाँ से उसने मेंवाड़ को चारों ओर से घेर लिया और स्वयं भी एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ के अन्दर दूर तक घुसता चला गया और वहीं पड़ाव डालकर बैठ गया। घेरे के बाद आक्रमण युद्ध का सनातन नियम है। अनेक मोरचे मारी हुई अपनी सुशिक्षित सैनिक टुकड़ियों से एक साथ अलग-अलग कई स्थानों पर आक्रमण करने की योजना अकबर ने बनाई। शत्रु के आक्रमण की योजना के ही अनुरूप प्रताप ने भी प्रतिरोध और प्रत्याक्रमण की योजना तैयार की। चित्तौड़ का किला तो अभी प्रताप के कब्जे में आया नहीं था। इसलिए उन्होंने कुम्भलगढ़ में बैठकर ही अकबर का सामना करने का निश्चय किया। यह किला बहुत ही ऊँची

पहाड़ियों पर बना हुआ है और शत्रु-सेना कितनी ही बड़ी और कितनी ही प्रबल क्यों न हो उसके लिए इसे जीतना टेढ़ी खीर ही थी। प्रताप सब ओर से अपनी सेनाओं को समेटकर इस किले में आ बैठे और इसकी किले बन्दी को और भी मजबूत कर लिया। उनका यह निश्चय तो दृढ़ था ही कि चाहे मुझे प्राण ही क्यों न देना पड़ें, मेवाड़ को कभी शत्रुओं के हाथ में नहीं जाने दूंगा।

लेकिन प्रताप के कुम्भलगढ़ आते ही दुर्गपाल देवराज पर मानो मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उसने यह नहीं सोचा था कि राणाजी इतनी जल्दी कुम्भलगढ़ चले आयेंगे। उनके आते ही देवराज की प्रेम-लीला पर अंकुश लग गया। जब लड़ाई सिर पर हो और किले की मोरचेबन्दी को व्यवस्थित करना हो तो दुर्गपाल के काम और उसकी जवाबदारियाँ निश्चय ही बहुत बढ़ जाती हैं। कहीं टूट-फूट की दुरुस्ती करवानी थी, किन्हीं दरवाजों पर लोहे की कीलें जड़वानी थीं, सैनिकों के रसद-पानी का प्रबन्ध करना था, किले के गुप्त मार्गों की सफाई करनी थी, शत्रु-सैनिकों को भुलावे में डालने के लिए कुछ नई रचनाएँ करनी थीं, और यह सब करने का भार सौंपा गया था दुर्गपाल देवराज को

राणा प्रताप जल्दी-से-जल्दी किले की मोरचेबन्दी कर लेना चाहते थे, क्योंकि वह जानते थे कि अकबर सबसे पहले कुम्भलगढ़ को ही घेरेगा। राणाजी की धारणा ठीक ही निकली। एक दिन सवेरे उठकर उन्होंने देखा तो अकबर की सेना कुम्भलगढ़ का घेरा डाले पड़ी थी। प्रताप यह तो जानते थे कि अकबर अपनी समस्त सेना के साथ आक्रमण करे तब भी किले को तोड़ नहीं सकता। वह निश्चिन्त होकर मुगल सेना का सामना करने की तैयारियाँ करते हुए प्रतीक्षा करने लगे कि एक बार अकबरशाह स्वयं सामने आ जाये और वह उसे मेवाड़ी भाले का चमत्कार दिखा सकें।

मुगल सैनिक दिन के उजाले में और रात के अन्धकार में भी किले पर चढ़ने का बराबर प्रयत्न करते रहते। लेकिन इधर से राजपूत सैनिक तीर मार-मारकर उनको पीछे ढकेल देते थे। आगे बढ़नेवाली मुगल टुकड़ियों में से शायद ही कोई जीवित लौट पाता था। चित्तौड़गढ़ की भाँति किले की दीवार को सुरंग से उड़ाने की सुविधा भी यहाँ नहीं थी। दो-एक जगह मुगलों ने सुरंग लगाने के प्रयत्न किये भी तो राणा ने उन्हें विफल कर दिया। अकबर मेवाड़ को जीतने के लिए जितना

ही जोर लगाता राणा प्रताप उससे भी अधिक जोर के साथ उसके इरादों पर पानी फेर देते थे। जिस तरह साँप अपनी चूड़ में जकड़कर शिकार पर फन मारता है उसी प्रकार अकबर ने अपनी सेना की नागचूड़ कसकर कुम्भलगढ़ पर आक्रमण किया था। लेकिन राणा ने उस नागचूड़ को तोड़ दिया और अब शान्तिपूर्वक साँप की झुंझलाहट से भरी तड़फड़ाहट को देख रहे थे। एक तो कुम्भलगढ़ का किला वैसे ही मजबूत था और फिर राणा ने ऐसी मोरचेबन्दी की थी कि दुश्मन पन्द्रह वर्षों तक सिर पटकता रह जाता तो भी किले की एक ईट तक न खिसकती।

एक रात मुगल सैनिकों ने किले पर चारों ओर से जबरदस्त आक्रमण किया। यह आक्रमण अभी तक किये गये सभी आक्रमणों से अधिक भीषण और प्रबल था। राजपूत सैनिकों ने बड़ी वीरता से लड़कर आक्रमणकारियों को पीछे ठेल दिया। स्वयं राणा प्रताप हाथ में नंगी तलवार लिये प्रत्येक बुर्ज और प्रत्येक दरवाज पर घूमते, सैनिकों को प्रोत्साहित करते और लड़ते रहे। एक राजपूत सैनिक टुकड़ी तो लड़ते हुए ठेठ मुगलों की छावनी तक चली गई और अपनी वीरता से उसने शत्रु-सेना के हृदय में भय का संचार कर दिया। दुश्मनों को दूर तक खदेड़कर इस टुकड़ी के रणबाँकुरे राजपूत विजय-पताका फहराते हुए लौटे। महाराणा ने इस टुकड़ी के सभी सैनिकों को शाबाशी दी। उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ, पर राणा को चैन कहाँ! वह किले की दीवार पर, रात के अँधेरे में, अकेले घूमते हुए, यह देख रहे थे कि कहीं दुश्मन फिर से लौटने की तैयारियाँ तो नहीं कर रहा। अभी थोड़ी ही देर पहले चारों ओर घमासान युद्ध हो रहा था, लेकिन इस समय सर्वत्र शान्ति थी। झिल्लियों की झंकार सुनाई दे रही थी। कभी-कभी नीचे की पहाड़ी उपत्यकाओं में खरगोश, सियार, लोमड़ी आदि वन्य-जन्तु एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी की ओर भागते दिखाई दे जाते थे। उनकी खड़खड़ाहट की आवाज को सुनकर दुर्गप्राचीर और बुर्जों पर खड़े राजपूत सैनिक तीर छोड़कर अपनी जागरूकता का परिचय देते थे और फिर चारों ओर सन्नाटा हो जाता था।

अपने सैनिकों की यह सन्नद्धता देखकर प्रताप को बड़ी प्रसन्नता और सन्तोष हो रहा था। उन्हें विश्वास हो गया कि अकबर चाहे सिर पटकता रह जाये पर किले को कभी तोड़ न सकेगा। चित्तौड़ के किले के चारों ओर खुला चौरस मैदान था और इसी लिए उसको घेरा जा सकता था। लेकिन कुम्भलगढ़ में इस तरह

की सुविधा नहीं थी। चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरे और स्वयं पहाड़ियों पर बने रहने के कारण उसे घेरना किसी भी तरह सम्भव नहीं था। उसकी प्राकृतिक स्थिति ने उसे दुर्भेद्य बना दिया था। फिर किले का प्रवेश-द्वार इतना सुदृढ़ था और वहाँ ऐसी मोरचेबन्दी की गई थी कि एक नहीं दस अकबर अपनी सेनाओं के साथ आ जाते तब भी उनके किये कुछ न होता।

कुम्भलगढ़ की रक्षा-व्यवस्था का निरीक्षण कर प्रताप ने मन-ही-मन कहा, कुम्भलगढ़ को तोड़ने से पहले तो अकबर को मेरे इस शरीर को तोड़ना होगा। हल्दीघाटी से लेकर आज तक मुगलों ने मेवाड़ को झुकाने के चार बार प्रयत्न किये, किन्तु एक बार भी उन्हें सफलता नहीं मिली। अब मुगल सम्राट स्वयं सेना लेकर आया था। प्रताप के नेत्रों के समक्ष मुगल साम्राज्य की भीषण विराटकाय मूर्ति खड़ी हो गई। उस विराट मूर्ति के आगे मेवाड़ की स्वतंत्रता के लड़ाके प्रताप वामन की तरह लगते थे। आज वामन और विराट एक-दूसरे के सामने खड़े थे। खड़े ही नहीं थे, दोनो एक-दूसरे के विरुद्ध युद्धरत भी थे। चार-चार बार विराट ने वामन को पकड़ने और कुचलने का प्रयत्न किया, परन्तु चारों बार वामन अपनी चतुराई और चपलता से बच गया। क्या इस बार भी वह बच सकेगा? और कब तक वह अपनी चपलता और चतुराई दिखा सकेगा?

किले में रसद और हथियारों की कमी नहीं थी। राणा ने इतनी खाद्य-सामग्री जमा कर ली थी जो पन्द्रह वर्ष तक चल सकती थी। किलेबन्दी इतनी मजबूत और अनुकूल थी कि वहाँ खड़ा एक-एक सैनिक हमला करनेवाले सौ-सौ सैनिकों को पीछे ढकेल सकता था। फिर राजपूत सैनिकों का मनोबल भी बहुत ही दृढ़ था। प्रत्येक का यह निश्चय था कि सौ वर्ष तक जीवित रहकर भी वह शत्रु का सामना करेगा। सुख की किसी को इच्छा न थी। मौत का किसी को डर न था। ऐसे वीर सैनिकों के सेनानी प्रताप भी अपने सैनिकों की सम्मति लेकर ही युद्ध करते थे।

सामने विराट हो तब भी वामन को तो युद्ध करना ही होता है। विराट द्वारा कुचले जाने के भय से पाँव तो पीछे हटाया नहीं जा सकता। विराट और वामन का मुकाबला ही क्या? आज नहीं तो कल विराट वामन को कुचल ही देगा। न सही प्रताप, प्रताप का पुत्र कुचला जायेगा। कितनों को कुचल चुका है वह विराट!

पिता उदयसिंह के दरबार की शोभा जयमल और फत्ता कुचले गये। फत्ता की माता और पत्नी को भी विराट ने कुचल दिया। और हल्दीघाटी में उसने कितनों की बलि ली? झालाराणा, तोमर रामसिंह, जिसकी अभी मसें भींग ही रही थीं ऐसा शालिवाहन—किस-किस के नाम गिनायें जायें। मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए, प्रताप की रक्षा के लिए अपने प्राणों को होमनेवाले वीरों की गिनती लगाना मुश्किल ही था। बूढ़ा तो मेवाड़ में अब कोई बचा नहीं था। जवान भी एक-एक कर समाप्त होते जा रहे थे। स्थिति यहाँ तक आ लगी थी कि कभी-कभी किशोरों को भी लड़ाई के मैदान में भेजना पड़ता था। इसी तरह अपना रक्त बहाते हुए मेवाड़ की कितनी पीढ़ियाँ खप चुकी थीं!

लेकिन मेवाड़ का युद्ध तो तभी रुकेगा जब उसके पास बहाने के लिए रुधिर न होगा। बालक और स्त्रियाँ भी मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए मर-खप जायें तो कोई हर्ज नहीं। संकट जितना ही अधिक होता है बलिदान भी उतना ही अधिक करना होता है। परन्तु क्या इस तरह मरते-कटते एक दिन मेवाड़ मानव-विहीन ही नहीं हो जायेगा?

हो जाये, भले ही हो जाये। जनशून्य मेवाड़ पर फिर अकबर किस तरह राज्य करेगा? मेवाड़ को उजाड़कर, मेवाड़ की धरती को जलाकर, उसके अंगारों और राख पर अकबर चाहे तो शासन कर सकता है, मेवाड़ी आदमी पर तो वह कभी शासन कर नहीं सकेगा। और ऐसी ही स्थिति में तो वामन विराट बन जाता है और विराट को अंगारों की चिता पर चढ़ना होता है। परन्तु क्या मेवाड़ को अंगारों की सेज ही बनना होगा? बने, मेवाड़ भले ही अंगारों की सेज बने। भस्मीभूत हो जाये मेवाड़; परन्तु मेवाड़ पर, एक भी मेवाड़ी वीर के जीवित रहते, विदेशी झण्डा गाड़ा न जा सकेगा....

सहसा किले के एक भाग से किसी नारी-कंठ की चीत्कार सुनाई दी। राणा ने चारों ओर देखा पर उन्हें कहीं कोई दिखाई नहीं दिया।

'क्या सोच रहे हैं राणाजी?' समीप ही महारानी पद्मावती का स्वर सुनाई दिया। वह उस चीत्कार को सुनकर बाहर निकल आई थीं।

'सोच रहा हूँ? हाँ, सोच ही तो रहा हूँ। सोचना-विचारना तो अब मेरा जीवन ही हो गया है रानीजी। लेकिन क्या तुम सोई नहीं?'

'नींद ही नहीं आई। आज का आक्रमण तो बड़ा ही प्रबल था।'

'अब निश्चिन्त होकर सो जाओ। आज की रात आक्रमण का कोई भय नहीं रहा।' हँसकर प्रताप ने कहा।

'मैं तो एक ही शर्त पर निश्चिन्त होकर सो सकती हूँ और वह यह कि राणा-जी भी निश्चिन्त होकर सोयें।'

'यह तो बताओ रानीजी, कि तुम कितनी रात निश्चिन्त सोई हो?'

'गिन लीजिए राणाजी। अधिक नहीं होंगी; उँगलियों पर गिनी जा सकेंगी।' रानीजी ने कहा। प्रताप मुस्करा दिये। उनकी उस मुस्कराहट में गहरा दर्द भी था। क्या मुस्कराहट में दर्द भी होता है?

'आप कुछ बोले नहीं राणाजी?' केवल मुस्कराकर रह जानेवाले प्रताप से रानी ने कहा।

'जो अपनी पत्नी को चार रात भी निश्चिन्त सोने न दे सके वह पति क्या कहे?'

'प्राणप्यारे! मेरे वीरशिरोमणि! जिन तीन रातों आपने मुझे सुखपूर्वक सुलाया वे तो मेरे तीन जन्म की सभी रातों के बराबर हैं। मुझे भी आपकी तरह नींद नहीं आती।'

'लेकिन इस तरह शरीर कब तक चलेगा?'

'यह प्रश्न आप मुझसे नहीं स्वयं अपने-आपसे पूछें?'

'मेवाड़ की चिन्ता छोड़ दूं, उसे मुगलों के हवाले कर दूं तो हो सकता है कि मैं सुखपूर्वक सो सकूं और तब मेरे साथ तुम भी....'

'नहीं, नहीं, राणाजी, हँसी में भी ऐसी बात मुंह से नहीं निकालनी चाहिए। भूले से भी ऐसा विचार मन में नहीं आना चाहिए। मै मेवाड़ के—स्वतंत्र मेवाड़ के राणा की पत्नी हूँ, परतंत्र मेवाड़ के राणा की नहीं।'

रानी के कन्धे पर प्रेमपूर्वक अपना हाथ रखकर राणा ने कहा—स्वतंत्र मेवाड़ के राणा की पत्नी ने कितने दुःख सहे, इसे कौन जानता है?

'दुःखों को कोई जाने ही क्यों? क्यों उनकी गिनती लगाई जाये? राणा की पत्नी ने तो कभी दुःख को दुःख माना नहीं।'

'यह मेरा और मेवाड़ का सौभाग्य है रानीजी। कितना भाग्यशाली हूँ मैं कि सब लोग अभी तक मेरे साथ हैं।'

'यह तो हमारा सौभाग्य है कि....यह आवाज कैसी सुनाई दे रही है ? कोई राजमहल में आता प्रतीत होता है। देखूं क्या बात है ?'

रानीजी की धारणा सच थी। नीचे राजमहल के प्रांगण में कोलाहल हो रहा था। क्या कोई मुगल पकड़ा गया ? या हाथी मतवाला हो गया ? या कोई सन्देश-वाहक महत्वपूर्ण समाचार लेकर आया ? लड़ाई की रात में यह और ऐसा ही बहुत कुछ हो सकता है।

इतने में द्वारपाल ने आकर खबर दी कि गौतमी राणाजी से मिलना चाहती है।

'गौतमी ? वह तो हल्दीघाटी के बाद दीखी ही नही ? अब कहाँ से ?' प्रताप ने पूछा। फिर महारानी और राणाजी अन्दर के प्रकोष्ठ में चले आये और उन्होंने गौतमी को उपस्थित करने का आदेश दिया।

सैनिक गौतमी को ले आये। उसे देखते ही महाराणा प्रताप और महारानी पद्मावती, दोनो ही चौंक उठे। गौतमी के बाल बिखरे हुए थे। कपड़े फट गये थे। नेत्र लाल हो रहे थे। लगता था जैसे वह पागल हो गई हो। चेहरा उसका विकराल था। एक हाथ में खून से भरी हुई नंगी तलवार थी और दूसरे हाथ में कटा हुआ एक मानव-मस्तक, जिससे खून की बूंदें टपक रही थीं। ऐसा लगता था मानो शुम्भ-निशुम्भ को मारकर साक्षात् कालिका वहाँ आ गई हो।

वहाँ आकर गौतमी ने एक बार महाराणा और महारानी की ओर देखा, फिर हाथ की तलवार और मुंड को उनके चरणों में रख दिया और स्वयं भी उनके चरणों में गिर पड़ी।

'गौतमी, तुम ?' प्रताप ने पूछा।

'जी हाँ, मैं ही हूँ। आपके परिवार में, आपके बच्चों के साथ पली और बड़ी हुई मैं गौतमी ही हूँ।' गौतमी ने उत्तर दिया।

'तुम्हें फिर से देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन यह तलवार कैसी ? यह सिर किसका ? और तुम इसे यहाँ क्यों लायीं ?'

'महाराज, यह तलवार और यह मस्तक, दोनो ही मेवाड़ के कृतघ्न बेटे के हैं। उसका सिर मैंने काट डाला है। दुःख केवल इस बात का है कि विश्वासघाती का सिर काटकर भी मैं कुम्भलगढ़ को बचा न सकी।'

'कुम्भलगढ़ तो पूरी तरह सुरक्षित है गौतमी।'

'नहीं महाराज, सुरक्षित नहीं है। बाहर के शत्रुओं से वह भले ही सुरक्षित हो अन्दर के शत्रुओं से तो कदापि नहीं।'

'क्या कहती हो गौतमी ? मैं मान ही नहीं सकता। किले के अन्दर कोई शत्रु है ही नहीं।'

'सम्भवत: अब न रहा हो। एक था अवश्य। मैं उसी का सिर काटकर ले आयी हूँ।'

'कौन था वह ? मस्तक देखकर तो पहचान नहीं पा रहा हूँ। बताओ गौतमी, कौन था वह ?'

'महाराज, यह मस्तक आपके दुर्गपाल देवराज का है।'

'देवराज ? जिसे मैंने अपने इस दुर्ग की रक्षा का सारा भार सौंप रखा है ? गौतमी, मैं कभी मान नही सकता कि देवराज विश्वासघाती है। वह कभी कृतघ्न नहीं हो सकता।'

'यदि उसका विश्वासघात, उसकी कृतघ्नता सिद्ध नहीं हुई तो महाराज मुझे प्राणदण्ड दे सकते हैं। अपना यह सिर मैंने आपके चरणों में रख दिया है।'

'मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि जो संकट सहने को तैयार न हो, जिसे मेरे स्वाधीनता-संग्राम में विश्वास न हो, जो मेरा साथ न देना चाहे, वह राजी-खुशी मेवाड़ छोड़कर जा सकता है। और गौतमी, तुम जानती हो कि मेरे ऐसा कहने पर भी कोई सेना छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुआ, कोई गया नहीं।'

'प्रलोभन तो बाद में भी अपना चमत्कार दिखा सकता है महाराज!'

'प्रलोभन ? जिसे सारा दुर्ग ही सौंप दिया, क्या वह भी प्रलोभन का शिकार हो गया ? यह तुम क्या कह रही हो गौतमी ?' प्रताप ने विस्मित होकर पूछा।

'सच ही कह रही हूँ महाराज! और सबसे बड़ा प्रलोभन तो मैं थी....' यह कहकर गौतमी ने अपने और देवराज के सम्बन्ध की सारी कहानी कह सुनाई।

गौतमी और शालिवाहन के पारस्परिक प्रेम की बात तो मेवाड़ के सभी सामन्तों और सरदारों को मालूम थी। अधिकांश को यह भी पता चल गया था कि देवराज भी उस पर अनुरक्त था। हल्दीघाटी की लड़ाई में जब शालिवाहन मारा गया और गौतमी गायब हो गई तो सबने यही मानकर सन्तोष कर लिया कि गौतमी सम्भवत: शालिवाहन के साथ सती हो गई। यह किसी को भी पता नहीं था कि

देवराज उसे युद्धभूमि से उठाकर कुम्भलगढ़ ले आया और बन्दीगृह में डालकर उसके प्रेम को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। नारी को प्राप्त करने का पुरुष का लोभ स्वाभाविक होता है। पुरुष अपने इस नारी-लोभ को प्रेम कहकर पुकारता है। परन्तु जब नारी पुरुष के इस प्रेम के प्रतिदान के लिए प्रस्तुत नहीं होती तो पुरुष के मन में उसके शरीर को प्राप्त करने की बलवती इच्छा जागृत हो उठती है। नारीदेह का यह लोभ पुरुष को राक्षस की भाँति क्रूर और निर्मम बना देता है। गौतमी ने देवराज में मानव-स्वभाव की इस विचित्रता को प्रत्यक्ष रूप में देखा। देवराज ने उसे ऐसी जगह कैद किया था जिसका पता किसी को भी नहीं था। स्वयं राणाजी को भी मालूम नहीं हुआ। उन्हें स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं था कि जो कुम्भलगढ़ मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए मुगलों से लोहा ले रहा है उसी का दुर्गपाल किले के ही एक कोने में किसी निर्दोष युवती की स्वतंत्रता का अपहरण कर उसके शील पर हाथ डालने का प्रयत्न कर रहा है।

देवराज ने पहले गौतमी को समझा-बुझाकर काम निकालना चाहा। जब इससे काम बनते न देखा तो उसे मार डालने की धमकी दी। गौतमी को मृत्यु का तो कोई डर था नहीं। मरना तो वह स्वयं भी चाहती थी, लेकिन देवराज उसे मरने नहीं देना चाहता था। अब गौतमी के सामने छल-कपट से काम लेने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। जिस पुरुष का वह मुंह भी नहीं देखना चाहती थी उसी के साथ वह हँसने-बोलने और क्रीड़ा-कौतुक करने लगी। असल में वह देवराज को भुलावे में डालकर अपनी मुक्ति का उपाय खोज रही थी।

इस तरह देवराज को लुभाकर वह एक अवधि निश्चित कर लेना चाहती थी। इसी लिए उसने एक दिन कहा—देवराज, हमारा यह प्रेम-प्रकरण तभी शोभा पा सकता है जब मुगल मेवाड़ से सदा के लिए भगा दिये जायें।

परन्तु देवराज को यह स्वीकार न था। जो किसी समय मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए प्राणों की बाजी लगा चुका था वही आज नारी के सौन्दर्य में इतना अन्धा हो गया कि उसे मातृभूमि की स्वाधीनता की भी परवाह नहीं रही।

तब गौतमी ने दूसरा बहाना ढूंढ़ निकाला। उसने कहा—हल्दीघाटी की याद तो मिट जाने दे, छाती में लगा घाव तो भर जाने दे।

लेकिन देवराज को यह भी स्वीकार नहीं था। पता नहीं कब वह हल्दीघाटी

की याद को भूलेगी और कब उसकी छाती का घाव भरेगा ? इतने समय तक वह प्रतीक्षा करने के लिए तैयार न था। उसे तो गौतमी का शरीर आज और अभी ही चाहिए था। अधिक-से-अधिक वह दो दिन तक प्रतीक्षा कर सकता था, इससे अधिक नहीं।

इसके बाद गौतमी ने उसे हँस-बोलकर भुलावे में डाले रखा। वह जानती थी कि नारी की मुस्कराहट पुरुष पर जादू का-सा प्रभाव डालती है। अब वह देवराज के विरुद्ध अपने सम्मोहन-अस्त्रों का प्रयोग करने लगी। तभी उसके सौभाग्य से महाराणा कुम्भलगढ़ आ गये और मुगल सेना ने किले को घेर भी लिया।

अब तो देवराज बड़ा घबड़ाया। डरा कि कहीं राणाजी को गौतमी के बारे में पता चल गया तो लेने के देने पड़ जायेंगे। उसने पुनः गौतमी के सामने अपने प्रस्ताव को दुहराया। गौतमी ने अपनी उसी त्रिभुवन-विजयी मुस्कराहट के साथ कहा—किले का घेरा उठ जाने के बाद।

देवराज ने गौतमी को थोड़ी आजादी दे दी थी। कैदखाने की छोटी-सी कोठरी से वह एक सजे-सजाये और सुख-सुविधाओं से पूर्ण कमरे में ले आई गई थी और नीचे के बगीचे में घूम-फिर भी सकती थी।

लेकिन देवराज को गौतमी की यह शर्त भी स्वीकार नहीं थी। वह जानता था कि कुम्भलगढ़ का घेरा उठना आसान नहीं। स्वयं अकबर के नेतृत्व में विशाल मुगल सेना के द्वारा डाला हुआ घेरा जल्दी नहीं उठ सकता था। राणा अपनी स्वाधीनता के लिए जितने कृतनिश्चय थे, अकबर भी उन्हें कुचलने के लिए उतना ही कृतनिश्चय था। फिर अकबर के पास साधनों की विपुलता थी और महाराणा नितान्त साधनहीन थे। साधनहीन निरे साहस के बल पर कब तक टिका रह सकता था ! यह सोचकर देवराज ने गौतमी से कहा—गौतमी, अब तू मेरा कहना मान ही ले। मैं तेरी कोई भी शर्त स्वीकार नहीं कर सकता। यदि तूने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा तो प्राणों से ही हाथ धोना पड़ेगा।

'इतना उतावला क्यों हो रहा है देवराज ? क्या घेरा उठने तक भी तू प्रतीक्षा नहीं कर सकता ? तेरे-जैसा दुर्गपति एक छोटा-सा घेरा उठने तक भी रुक न सके, यह बड़ी अचम्भे की बात है।'

'नहीं, घेरा नहीं उठेगा। कभी नहीं उठेगा गौतमी। देख नहीं रही है कि

अकबर ने कुम्भलगढ़ के चारों ओर सैनिकों का एक नया गढ़ ही बना दिया है।'

इस पर गौतमी ने आँखें मटकाकर और भौंहें नचाकर कहा—तो अच्छी बात है, जिस दिन कुम्भलगढ़ का पतन होगा उसी दिन हमारा प्रेम-प्रकरण प्रारम्भ हो जायेगा। बोल, स्वीकार है ?

देवराज को यह शर्त स्वीकार थी। मुगल किले को तोड़ने के दोहरे-प्रयत्न कर रहे थे। वे बाहर से हमले करते और अन्दर के सैनिकों को फोड़ने के प्रयत्न भी। दूसरे ही दिन देवराज ने मुगल सेना के साथ सम्पर्क स्थापित किया। वह मुगल सेना के सन्देशवाहकों एवं गुप्तचरों से रात के अँधेरे में मिलने लगा। गौतमी को इसकी भनक मिल गई।

जिस दिन मुगलों ने कुम्भलगढ़ पर जबरदस्त हमला किया था उसी रात, मुगलों के खदेड़ दिये और युद्ध समाप्त हो जाने के बाद, गौतमी ने देवराज को कुम्भलगढ़ के उद्यान के एक अँधेरे कोने में, किसी मुगल सैनिक के साथ चुपचाप बैठे और बातें करते हुए देखा। वह तो सन्नाटे में आ गई। मुस्लिम सैनिक रात के अँधेरे में किले में आने और दुर्गपति से मिलने लगे हैं ? कहीं देवराज गौतमी की शर्त को पूरा करने का प्रयत्न तो नहीं कर रहा ? यदि कर रहा है तो उसे रोकना होगा। मेवाड़ की स्वतंत्रता के विनाश को जैसे भी बने रोकना ही होगा।

देवराज और मुगल सैनिक बातें करते हुए गौतमी के झरोखे के नीचे आ खड़े हुए। फिर किले की सुरंग का गुप्त-द्वार खुला और वह सैनिक उसके अन्दर चला गया। उसी समय गौतमी अपने लिए निर्धारित मार्ग से बगीचे में पहुँची और उसने देवराज से पूछा—इस अँधेरी रात में तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?

'तुम्हारी शर्त को पूरा कर रहा हूँ।'

'क्या मतलब ?'

'कल किले का पतन हो जायेगा।'

'कैसे ?'

'जानती हो, किले में पीने के लिए पानी कहाँ से आता है ?'

'हाँ, नागिन कुइयाँ से।'

'कल उस कुइयाँ का पानी जहरीला हो जायेगा।'

'कैसे ?'

'इस किले के नीचे उस कुइयाँ के पानी की झरन (स्रोत) है। उसमें जहर मिलाने के लिए मैंने अभी-अभी एक मुगल सैनिक को भेजा है।'

'उसने जहर मिला दिया होगा?'

हाँ।'

'क्या उसे रोका नहीं जा सकता? कुम्भलगढ़ के पतन को रोकने के लिए तू जो भी कहे मैं करने को तैयार हूँ।'

'अरे, तेरी शर्त तो कुम्भलगढ़ के पतन की ही थी।'

'इस तरह नहीं। यह नृशंसता और विश्वासघात उचित नहीं। जहरीला पानी पीकर कई सैनिक मर जायेंगे, लेकिन फिर भी बहुत-से बचे रह जायेंगे और वे लड़ते रहेंगे।'

'मुगलों के प्रवेश के लिए मैंने किले के द्वार भी खुलवा दिये हैं। सवेरा होते ही तेरी शर्त पूरी हो जायेगी....' देवराज ने आनन्दित हो कर कहा।

'मुझे पानी का वह सोता दिखा सकता है? मैं देखना चाहती हूँ।' गौतमी ने सुरंग के द्वार की ओर उँगली से संकेत करते हुए कहा।

'मार्ग अँधेरा और सँकरा है। बहुत नीचे उतरना होता है। इसी लिए तो मैं स्वयं नहीं गया।'

'लेकिन मैं तो जाऊँगी और तुम्हें ले चलना होगा।' गौतमी की वाणी में प्रेम की मनुहार थी। देवराज निहाल हो उठा। तभी गौतमी ने उसके हाथ का स्पर्श किया। देवराज को जैसे बिजली छू गई। वह सुरंग के गुप्त-द्वार को खोलकर सीढ़ियों पर नीचे उतरने लगा। जब केवल उसका मस्तक बाहर रह गया तो गौतमी ने सिंहनी की भाँति झपटकर उसके सिर के बालों को पकड़ लिया और एक ही झटके में खींचकर उसे बाहर जमीन पर ला पटका। देवराज ने उठने का प्रयत्न किया तो गौतमी ने जोर से एक लात मारकर उसे फिर नीचे गिरा दिया और दासी से प्राप्त कटार उसके कलेजे में भोंक दी।

'विश्वासघाती! नीच! हत्यारे! तुझे गौतमी चाहिए? गौतमी का प्रेम चाहिए?' वह क्रुद्ध नागिन की भाँति फुफकार उठी और उसके नेत्रों से चिनगारियाँ बरसने लगीं।

देवराज की छाती से खून का फव्वारा छूटने लगा। एक हाथ से बहते हुए

रुधिर को रोककर उसने खड़े होने का प्रयत्न किया, लेकिन उसके पाँव लड़खड़ा गये। वह पुनः नीचे बैठ गया और गौतमी की ओर देखकर बोला—विश्वास-घाती मैं हूँ या तू ?

'यह पूछ अपने हृदय से।'

'अभी....जीऊँगा और....तुझे अपनी....बनाऊँगा। मुगलों के साथ....'

'अब भी जीना चाहता है ?'

'हाँ। अब भी....अभी तो हमारा प्रेम....पूरा....'

'मेरा प्रेम चाहिए तुझे ? ले, यह रहा मेरा प्रेम।' यह कहकर गौतमी ने देवराज की कमर में बँधी म्यान से तलवार खींच ली और एक ही वार में उसकी गरदन काटकर फेंक दी। फिर एक हाथ में तलवार और दूसरे में देवराज के छिन्न मस्तक को पकड़कर वह जोर से अट्टहास कर उठी। विक्षिप्त की भाँति उसने कहा—यह है सुन्दर देवराज का मस्तक !

और उसने पुनः अट्टहास किया।

गौतमी के अट्टहास को सुनकर कुछ सैनिक वहाँ दौड़े आये। उन्हें उद्यान तक पहुँचने में बड़ा प्रयत्न करना पड़ा। गौतमी को इस विकराल रूप में देखकर सब-के-सब स्तम्भित रह गये।

सैनिकों को देखकर गौतमी ने कहा—मुझे महाराणा के पास ले चलो। परन्तु सबसे पहले किले के खुले दरवाजे बन्द कर दो। सभी गुप्त मार्गों पर चौकी-पहरे लगा दो। नागिन कुइया में जहर मिला दिया गया है। जहर मिलानेवाला मुगल सैनिक अभी इस सुरंग से बाहर निकलेगा, उसे गिरफ्तार कर लेना। सब सैनिक सावधान हो जायें। अब मुझे ले चलो राणाजी के पास।

गौतमी के वहाँ होने की किसी को कल्पना भी नहीं थी। उन्होंने पूछ-ताछ करने का प्रयत्न किया लेकिन गौतमी ने कुछ भी बताने से इनकार कर दिया, यही कहती रही कि मुझे राणाजी के पास ले चलो।

सैनिक गौतमी को राणाजी के पास ले आये। गौतमी ने सारा हाल बताकर कहा—जो भी बात थी मैंने सच-सच आपको बता दी। यदि मुझे महाराज अपराधी समझें तो मेरा सिर हाजिर है।

'क्या सुरंग में से मुगल सैनिक निकला ? और क्या वह पकड़ा गया ?' प्रताप ने गौतमी के साथ आये हुए सैनिकों से पूछा।

'हाँ, अन्नदाता!'

'क्या किले के द्वार खुले थे और वे बन्द किये गये?

'हाँ, अन्नदाता! फाटक बन्द करके ही हम यहाँ आये हैं।'

'क्या नागिन कुइया के पानी में जहर मिला है?'

'हाँ, अन्नदाता! राजवैद्यजी ने परीक्षा की है। साफ ही जहर मिला हुआ है।' मंत्री भामाशाह ने कहा, जो उसी समय वहाँ आये थे।

'जहर का असर मिटने में पन्द्रह दिन तो लग ही जायेंगे?' प्रताप ने पूछा।

'जी अन्नदाता! कम-से-कम पन्द्रह दिन तो जरूर लग जायेंगे। जहर कुइया के सोते में ही मिलाया गया है।'

'पन्द्रह दिनों तक बिना पानी के प्यासा कौन रह सकेगा?' प्रताप ने विषण्ण हँसी हँसकर कहा।

'जिसको भी अन्नदाता हुकुम दें। हम सभी रह सकते हैं।' भामाशाह ने कहा।

'भामाशाहजी, तैयारियाँ तो ऐसी थीं कि बारह वर्षों तक भी गढ़ न टूटता, परन्तु अब एक क्षण में ही कुम्भलगढ़ का पतन हो जायेगा। इसे छोड़ना ही होगा।'

'मेवाड़ की भूमि अब भी बहुत विशाल है महाराज।'

'भामाशाहजी, भाई शत्रु बनकर मेवाड़ से चले गये, तव सामन्तों ने अपने मस्तक देकर मेवाड़ की रक्षा की; लेकिन मैं यह नहीं जानता था कि सरदारों में से ही कोई ऐसा विश्वासघाती निकल आयेगा।'

'महाराज, विश्वासघात का हमें क्या डर? भाई गये, परन्तु शक्तिसिंहजी लौट आये और आज उन्होंने मुगलों के नाकोंदम कर रखा है। हमारी यह लड़ाई तो प्राणोंका सौदा है। जिसे डर हो, जो साथ न देना चाहे, वह प्रसन्नता से आगरा और दिल्ली जाकर मुगलों के तलुए सहला सकता है।' भामाशाह ने कहा।

'दुर्ग तो हमें छोड़ना ही होगा भामाशाहजी! विष-रहित पानी आज रात तो राजमहल में उपलब्ध है। गौतमी, जाओ, तुम स्नान कर लो। सवेरा होने से पहले दुर्ग खाली हो जाये।' प्रताप ने कहा।

'कुछ सैनिकों को तो यहाँ रहना ही होगा महाराज—मरने के लिए। जब तक हम निकलकर निरापद स्थान में नहीं पहुँच जाते दुर्ग का पतन नहीं होना चाहिए।'

'परन्तु जायेंगे कहाँ?' प्रताप ने पूछा।

'अन्नदाता तो भीलों की बस्ती में पधारें। आगे की योजना वहीं पहुँचकर बनाई जायेगी।'

'तो हमारा निश्चय तो यही है न कि युद्ध चालू रखेंगे, बन्द नहीं करेंगे?' प्रताप ने पूछा।

'देवराज-जैसा अभागा, विश्वासघाती अब हमारे बीच कोई नहीं है महाराज, जो युद्ध को बन्द करना चाहे। मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए प्राण समर्पित करने की प्रतिज्ञा हमने भी तो आपके साथ की है।' भामाशाह ने कहा।

दुर्ग छोड़कर चले जाने की योजना उसी समय बन गई और कार्यान्वित भी की जाने लगी। दुर्ग के जिस ओर ऊँची-ऊँची अभेद्य पहाड़ियाँ थीं उसी ओर से जाने का निश्चय किया गया। उन पहाड़ियों में बहुत-से गुप्त मार्ग पहले से ही बनाकर रखे गये थे। मेवाड़ के प्रायः सभी ऐसे अभेद्य किलों में इस तरह के गुप्त मार्ग बने हुए थे, जिनका समय पड़ने पर उपयोग किया जाता था। रात के अँधेरे में कुम्भलगढ़ की प्रजा, सैनिक, सामन्त और राज-परिवार के सदस्य गुप्त मार्ग की राह किले को छोड़कर बाहर निकल आये।

गुप्त-द्वार से बाहर निकलते हुए राणा प्रताप ने कहा—रानीजी, जीवन-यात्रा में कहीं भी विश्राम नहीं।

'कौन कहता है? मुझे तो पूरा विश्राम है।' रानीजी ने प्रत्युत्तर दिया।

'सोचा तो यही था कि कुम्भलगढ़ कभी छोड़ना नहीं पड़ेगा।'

'राणाजी, जहाँ भी आपका पाँव पड़ेगा वहाँ कुम्भलगढ़ खड़ा हो जायेगा। रात के आक्रमण का, यदि आप न होते तो कैसे निवारण होता!'

'और देवराज जीवित रह जाता तो कुम्भलगढ़ का पानी ही हमें मार डालता। कहाँ है गौतमी?' प्रताप ने पूछा।

'यह रही महाराज।' गौतमी ने समीप आकर कहा।

'तुझे दरबार करके इनाम देने का विचार है।'

'किस लिए महाराज?'

'तेरे ही पुरुषार्थ से आज हम सब जीवित दुर्ग छोड़कर जा रहे हैं।'

'पुरुषार्थ मेरा नहीं महाराज आपका ही है। मेरा सच्चा इनाम तो यही है कि मेवाड़ की भूमि से मुगलों को सदा के लिए निकाल बाहर किया जाये।'

'मैं तुझे शालिवाहन के स्थान पर अपना सामन्त नियुक्त करता हूँ।'

'नहीं महाराज, मैं तो....'

'जलने-मरने की बात न कर पगली!' रानीजी ने गौतमी की बात काटते हुए कहा।

'नहीं महारानीजी, मरूँगी नहीं। मरना ही होता तो अभी तक जीवित न रहती। मैं जीना और भगवान कृष्ण के स्वरूप को साक्षात् देखना चाहती हूँ।' गौतमी ने कहा।

'शालिवाहन बचपन में अकसर कृष्ण का स्वांग धारण किया करता था।' प्रताप ने हँसते हुए कहा। साथ ही उन्होंने गौतमी की ओर एक निगाह डालकर इस बात का इतमीनान भी कर लिया कि कहीं वह पगला तो नहीं गई है।

इसके बाद बड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। सब चुपचाप चलते रहे। चलते-चलते सवेरा हो गया। सूर्य निकल आये। राज-परिवार के सभी सदस्यों ने भगवान भुवन भास्कर को प्रणाम किया।

'महाराज, मैं यहीं से चली जाना चाहती हूँ।' सहसा गौतमी ने कहा।

'कहाँ?'

'वृन्दावन, गोकुल, मथुरा—मुझे कृष्ण-कन्हैया की बृजभूमि पुकार रही है।'

'अभी नहीं गौतमी।'

'महाराज, मैं मरूँगी नहीं। मैंने शालिवाहन को वचन दिया है कि आत्महत्या नहीं करूँगी।'

'मेरा कोई भी सामन्त, मेरी आज्ञा की अवहेलना करके, या मेरी इच्छा का अनादर करके, मुझे छोड़कर जा नहीं सकता। क्या तुम भूल गई गौतमी, कि मैंने तुम्हें अपना सामन्त नियुक्त किया है?'

प्रताप की इस बात को सुनकर गौतमी का उद्वेग शान्त हो गया।

कुम्भलगढ़ का दुर्ग बहुत ही पीछे छूट गया था। उसके परकोटों और बुर्जों से लड़नेवाले राजपूत वीरों की ललकारें सुनाई दे रही थीं। जब तक राणाजी निरापद स्थान में पहुँच नहीं जाते, किले की रक्षा करने का निश्चय किये हुए मेवाड़ी सैनिक लड़ने को तैयार खड़े थे। देवराज का सन्देश पाकर जो मुगल टुकड़ी किले में प्रवेश करने की इच्छा से आई थी उसे दुर्ग के द्वार बन्द मिले।

इतना ही नहीं, मुकाबले पर मेवाड़ी सैनिक भी खड़े दिखाई दिये। दो दिनों तक मुगल सैनिक हमले करते रहे, तब कहीं जाकर द्वार खुला। प्यासे मेवाड़ी सैनिक वीरता से लड़ते हुए किले के दरवाजों पर काम आये। जब एक भी मेवाड़ी सैनिक जीवित नहीं बचा तभी मुगलों को किले में प्रवेश करने का मार्ग मिला।

लेकिन अन्दर मौत का-सा सन्नाटा था। एक भी आदमी मुगलों के हाथ नहीं लगा। प्रताप को पकड़ने की अकबर की मुराद यहाँ भी पूरी नहीं हुई।

झुंझलाकर अकबर ने अपने सैनिकों को आदेश दिया—बाला राणा जहाँ भी हो उसे पकड़कर माबदौलत के आगे हाजिर किया जाये। राणा को गिरफ्तार किये बगैर जो भी सिपहसालार लौटेगा उसकी गरदन उड़ा दी जायेगी।

सारे मेवाड़ में मुगल सेना छा गई। जहाँ भी दृष्टि जाती, वहीं मुगल सैनिक दिखाई देते। लेकिन बाला राणा का कहीं पता नहीं था।

पता तभी चलता जब कोई मुगल छावनी लुट जाती या कोई मुगल सैनिक टुकड़ी काट दी जाती।

स्वयं बादशाह अकबर भी महाराणा प्रताप को पकड़ने के लिए मेवाड़ के मैदानों की खाक छानता फिरता था। एक दिन वह अपनी छावनी से कुछ दूर अकेला घूम रहा था कि उसने प्रताप को अपनी ओर आते देखा। क्या प्रताप मेरी अधीनता स्वीकार करने के लिए तो नहीं आ रहा है, बादशाह ने सोचा। लेकिन नहीं, प्रताप तो अपना भाला उठाये आ रहे थे। इधर बादशाह के पास कोई हथियार नहीं था, वह एकदम निहत्था था। यह देख राणा ने कहा—नहीं, सिसोदिया कभी भी निहत्थों पर वार नहीं करता। जो शस्त्र-विहीन है उससे युद्ध नहीं किया जाता।' यह कहकर प्रताप मुंह मोड़कर वहाँ से चले गये।

अकबर ने प्रताप को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया, लेकिन वहाँ कोई नहीं था। असल में बादशाह सपना देख रहा था। उसे जागते समय ही नहीं सोते समय भी प्रताप ही दिखाई देते थे।

बादशाह उठकर बैठ गया और उसने हजार बार किये हुए अपने इरादे को फिर दुहराया—जैसे भी बने प्रताप को गिरफ्तार करना ही होगा।

श्वास-निःश्वास

:: १ ::

सारे हिन्द में यह खबर मशहूर हो गई कि अकबर बादशाह ने मेवाड़ को जीत लिया। जो भी इस खबर को सुनता वही पूछ बैठता—क्या प्रताप भी पकड़े गये ?

'नहीं, प्रताप तो अभी तक नहीं पकड़े गये।' उसे जवाब मिलता।

'तब तो मेवाड़ अभी जीता नहीं गया।' सवाल करनेवाला सिर हिलाते हुए कहता और मेवाड़ को जीतने की बात को निरी गप्प मानकर अपनी राह चल देता।

उन दिनों दिल्ली से दक्षिण की ओर एक मार्ग मेवाड़ की सीमा को पार करता हुआ जाता था। जो भी सार्थवाह मेवाड़ का कर चुका देता वह इस मार्ग से सही-सलामत गुजर सकता था। जब अकबर ने अपनी मेवाड़-विजय के डंके सारे भारत-वर्ष में बजवा दिये तो एक सार्थवाह सूरत से दिल्ली की ओर चलता हुआ एक दिन सायंकाल के समय मेवाड़ की सीमा के अन्दर प्रविष्ट हुआ।

शाम के झुटपुटे में चार घुड़सवारों ने इस सार्थवाह का रास्ता रोका और उनके नायक ने डपटकर पूछा—यह सार्थवाह किसका है ?

'फिरंगियों का।' एक सशस्त्र फिरंगी ने, जो सिर पर टोप पहने हुए था, आगे आकर बड़ी शान से जवाब दिया। वह इस तरह अकड़कर खड़ा था मानो सारा रास्ता उसी का हो।

'तुम कोई भी क्यों न हो, मार्ग का कर चुकाकर ही आगे बढ़ सकते हो।'

'फिरंगियों का कर माफ है।'

'किसने माफ किया?'

'मुगल सम्राट शहन्शाह अकबर ने।'

'तो मुगलों के रास्ते जाओ। इस रास्ते तो बिना कर चुकाये जा न सकोगे।'

'लेकिन....यह रास्ता....'

'मेवाड़ का है।'

'लेकिन मेवाड़ को तो मुगलों ने जीत लिया है।'

'दिल्ली अवश्य कई बार जीती गई, लेकिन मेवाड़ एक वार भी नहीं।'

'हमारे पास सूबा का परवाना है। तुम रोकनेवाले कौन होते हो?'

'यह भी बता दूंगा कि मैं कौन हूँ। लेकिन तुम कान खोलकर सुन लो कि बिना मार्ग-कर चुकाये तुम इस रास्ते से जा नहीं सकते। कर न देना चाहो तो यह रास्ता छोड़कर मुगलों का रास्ता पकड़ो। अब भी समय है, तुम लौटकर जा सकते हो।'

'उस रास्ते तो बड़ा चक्कर पड़ जायेगा। हम नहीं जायेंगे। मुगल बादशाह का परवाना हर जगह चलता है। यहाँ भी चलना चाहिए। और तुम्हारी धमकी की हमें कोई परवाह नहीं। हथियार हमारे पास भी हैं।'

'मैं फिर से कहता हूँ कि इधर से जाना हो तो मेवाड़ का मार्ग-कर चुका दो और जाओ। मुगलों के रास्ते से जाना हो तो लौट जाओ। उस रास्ते होकर जाओ, इधर से नहीं। बाकी हथियार तुम्हारे किसी काम नहीं आयेंगे, सब धरे रह जायेंगे।'

'हम न कर चुकायेंगे न लौटकर जायेंगे। जो तुमसे बने कर लो।'

'महाराणा प्रताप की आन पर मैं तुमसे कहता हूँ....'

'प्रताप बेचारा है ही कहाँ? या तो बेड़ियों में जकड़ा होगा या पहाड़ों में भटकता होगा।'

'नहीं, वह तुम्हारे सामने ही खड़ा है। मुगलों के बल पर कूदनेवाले इन फिरंगियों को लूट लो....! इनका मिजाज ठिकाने लगा दो....लेकिन खबरदार, जो सामना न करे उसे चोट न पहुँचाई जाये।'

प्रताप के यह कहते ही आसपास की टेकरियों में से अनगिनत राजपूत सैनिक निकल आये और सार्थवाह पर टूट पड़े। उन व्यापारियों में फिरंगी थे, गुजराती

वणिक थे और सूरत के जौहरी भी थे। बाद में सब बहुत पछताये। महाराणा से क्षमा भी माँगी। कर देने को भी तैयार हो गये। लेकिन लूट न रुकी।

महाराणा प्रताप ने उन्हें यही उत्तर दिया—मेवाड़ में आकर कोई मुगलों का डर दिखाये, यह हमें सह्य नहीं। उसकी जान जोखिम में ही समझना चाहिए। अब तुम जाकर शिकायत करो मुगल बादशाह से, मुझसे नहीं।

महाराणा को पकड़ने के लिए मुगलों की सेना मेवाड़ की पहाड़ियों में घूमती फिरती थी और मेवाड़ी सैनिक भामाशाह के नेतृत्व में कभी झालौर और कभी डूंगरपुर की सीमाएँ तोड़ते या मालवा के मुगल जिलों को लूटते थे। बादशाह अकबर खुद छः महीने तक मेवाड़ में डेरा डाले पड़ा रहा। बाला राणा को पकड़ने के लिए उसने अनेक योजनाएँ बनाई। एक-एक कर सभी योजनाएँ कार्यान्वित की गई, लेकिन सबका परिणाम शून्य ही रहा। प्रताप उसके हाथ न लगे।

अकेले प्रताप ही नहीं, सारा मेवाड़ अकबर के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था और घरफूंक नीति का प्रयोग किया जा रहा था। शहर खाली कर दिये गये। व्यापार-धन्धा बन्द हो गया। लोग गाँव छोड़कर भाग गये। किसानों ने खड़ी फसलें जला दीं और आगे से खेती न करने की कसम खा ली। सारे देश ने निश्चय कर लिया कि चाहे मेवाड़ को भूखों मरना पड़े, चाहे ग्राम और नगर निर्जन हो जायें परन्तु मेवाड़ की भूमि पर आक्रमण करनेवालों को जरा भी सुविधा नहीं प्रदान की जायेगी। सारे मेवाड़ी बस्तियाँ खाली करके पहाड़ों और जंगलों में जा बसे। मुगल सैनिक नगरों में घुसते तो उन्हें वहाँ कोई आदमी न मिलता। खाली महल और हवेलियाँ उनकी विजय का परिहास करती हुई दिखाई देतीं। किसी हरे-भरे गाँव में मुगल सैनिक पहुँच जाते तो वहाँ न होता मनुष्य, न होते पशु। अनाज का दाना और तिनका भी उन्हें वहाँ न मिलता। फिर दूध और फल की तो बात ही क्या। जहाँ अनाज की आशा में मुगल सैनिक दौड़कर जाते वहाँ उन्हें अन्न के विशाल भंडार जलते हुए दिखाई देते। कभी कोई आदमी पकड़ भी जाता तो वह गूंगा और बहरा बन जाता। न कुछ बोलता न कुछ सुनता, न कोई काम करता और न सैनिकों के बारे में कुछ बताता। मारने की धमकी दिये जाने पर वह पागलों की भाँति खिलखिलाकर हँस देता। मरने का किसी को न डर था, न रंज-गम। साधारण नागरिक हँसते हुए मौत का आलिंगन

करते। मेवाड़ में मौत से डरनेवाला कोई रहा ही नहीं था। मुगल सेना जहाँ भी जाती उसे मौत का सन्नाटा और श्मशान की शान्ति देखने को मिलती थी।

अकबर झुझला उठता और पूछ बैठता—राणा पकड़ा गया या नहीं ?

'बस, अब ज्यादा देर नहीं। आजकल में गिरफ्तार हुआ ही समझिए।' उसके मुंहलगे सरदार कहते। जो बादशाह सब जगह विजयी हुआ उसे पराजय की बात कौन कहता और कैसे कहता !

'कल सिपाही अनाज के लिए शोर क्यों मचा रहे थे ?' बहुत छिपाकर रखने पर भी अकबर को अन्न की कमी और सैनिकों की भुखमरी के बारे में पता चल ही गया था।

'मेवाड़ में कोई खेती नहीं करता।'

'क्यों ?'

'राणा का यही हुक्म है। उसने कह दिया है कि हमें कोई चीज मिलनी नहीं चाहिए।'

'तो बाहर से मँगाओ। जयपुर, जोधपुर, गुजरात—जहाँ भी मिले वहाँ से मँगाओ।' बादशाह ने हुक्म दिया।

'बाहर से जो भी अनाज मँगाते हैं, वह लूट लिया जाता है। अब अधिक इन्त-जाम के साथ लाया जायेगा।' मुंहलगे सरदार कहते।

यहाँ ये बातें हो रही थीं और वहाँ से दो-एक कोस के फासिले पर महाराणा प्रताप के सैनिक मुगलों के लिए गुजरात से आये हुए अनाज की होली जला रहे थे। हो-हल्ले, शोरगुल, धुएँ के बादल और आग की लपटें देखकर बादशाह ने अपने चुने हुए सैनिकों को भेजा। उन्होंने लौट आकर खबर दी कि राजपूतों को मार भगाया है, परन्तु अनाज का तो एक भी दाना हाथ नहीं लगा। मेवाड़ी सैनिकों ने सारा अनाज जलाकर भस्म कर दिया था।

अकबर को शीघ्र ही पता चल गया कि केवल मेवाड़ का राणा और उसके सैनिक ही नहीं, सारा मेवाड़ उसके विरुद्ध लड़ रहा था। मेवाड़ की जनता ही नहीं, मेवाड़ की धरती और प्रकृति भी उसका सामना करने को मैदान में उतर आई थी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो राणा प्रताप अपने शरीर में सारे मेवाड़ को समाकर उसके प्रतिरोध के लिए खड़े हों। कई बार उसे ऐसा लगता

मानो मेवाड़ के पहाड़ उसकी सेना को कुचलने के लिए बढ़े चले आ रहे हों। कभी उसे ऐसा भ्रम होता मानो उसके पाँव के नीचे की मेवाड़ी धरती हिल रही हो। उसे विश्वास हो चला कि यह लड़ाई मेवाड़ के लोगों के साथ नहीं मेवाड़ की समस्त चराचर सृष्टि के साथ है। कभी उसे लगता मानो मेवाड़ के आसमान में छाये तारे आँखें टिमटिमाते हुए उसे वहाँ से लौट जाने का संकेत कर रहे हों। मेवाड़ का कण-कण जैसे पुकारकर कह रहा हो, लौट जा, मेवाड़ की धरती से लौटकर चला जा ! एक क्षण के लिए भी यहाँ मत रुक !

कभी अकबर सुनता कि उसे बिस्तरे सहित प्रताप के पास उठा ले जाने की प्रतिज्ञा सालुम्बरा के पटावत ने की है। कभी वह सुनता कि किसी भील नायक ने जमीन के अन्दर लम्बी सुरंग खोदकर अकबर को पकड़ ले जाने का इरादा किया है। कभी वह सुनता कि मेवाड़ी भील और राजपूत सरदारों के बीच अकबर के सिर की बाजी लगी है। अनेक युद्ध का विजेता अकबर इन समाचारों को सुनकर अपने सरदारों पर झुंझला पड़ता और बौखलाकर कहता—बड़े शर्म की बात है कि हम छोटे-से मेवाड़ के बागी राणा को भी न पकड़ सके। कोई माबदौलत को प्रताप की सही-सही खबर भी लाकर नहीं दे सकता !

'जहाँपनाह ! खबर तो हमारा जासूस लेकर आया है।' अकबर से कहा जाता।

'कहाँ है जासूस ? जल्दी हाजिर करो। माबदौलत जानना चाहते हैं कि बागी प्रताप कहाँ है ?'

'आलीजाह, गुलाम अर्ज करते डरता है। मेवाड़ का बागी राणा किसी एक जगह नहीं रहता। वह सारे मेवाड़ में रहता है—आज यहाँ तो कल वहाँ।'

'मगर रहता किस तरह है ?'

'हुजूर, अपने बीबी-बच्चों और कबीलों के साथ रहता है। उसके सरदार भी उसके साथ ही रहते हैं। पहाड़ी खोहों में वह उनका दरबार करता और उन्हें अपने हाथों जंगली फलों के दोनों की सौगातें देता है।'

'कितने शर्म की बात है कि मेरे डर से भागा हुआ राणा पहाड़ों में दरबार करे और अपने सामन्तों को सौगातें दे और मैं, सारे हिन्द का मालिक, शहन्शाह अकबर अपने सिपाहियों को रोटी का टुकड़ा भी न दे सकूं ! माबदौलत भी अहद करते हैं कि. . . .'

'नहीं-नहीं, बन्दःनवाज, दुश्मनों के जान के सदके, हुजूर किसी तरह का अहद न करें।' वहाँ उपस्थित सभी दरबारी एक साथ कह उठते। जो मुगल-शक्ति प्रताप को झुकाने में असफल रही वह बादशाह को किसी भी तरह की प्रतिज्ञा नहीं करने देना चाहती थी।

'तो क्या माबदौलत के दरबारियों और सिपहसालारों में कोई है जो प्रताप को पकड़ लाने का अहद करे?' अकबर ने पूछा।

आदमी जितना ही बड़ा होता है असफलता उसके लिए उतनी ही अधिक कष्टदायी हो जाती है। आज तक अकबर ने हार जानी नहीं थी। सभी लड़ाइयों में वह विजयी हुआ था। मेवाड़ से भी बड़े प्रदेशों को उसने जीता था। अकेला यह मेवाड़ ही था जो किसी भी तरह हार नहीं मान रहा था; और झुंझलाया हुआ अकबर जीत के लिए बेताब हो उठा था। उसकी ललकार को सुनते ही एक साथ पाँच सिपहसालार उठ खड़े हुए। उन्होंने अपनी शमशीरें खींचकर प्रताप को गिरफ्तार करने और हराने की प्रतिज्ञा की। ये पाँचों सिपहसालार नये आदमी थे। इनमें से एक भी प्रताप के खिलाफ लड़ाई के मैदान में उतरा नहीं था। पुराने सेनापतियों में से कोई भी आगे नहीं आया, क्योंकि वे जानते थे कि प्रताप को पकड़ना लोहे के चने चबाना है।

मानसिंह और उसके पिता राजा भगवानदास भी उस मुहीम पर अकबर के साथ थे। उन्होंने अकबर को सलाह दी — [illegible] मेवाड़ से लड़ते हुए हमारी तीन पीढ़ियाँ गुजर गई। हमसे भी पहले दिल्ली के सुलतान मेवाड़ से लड़ते रहे हैं। अब यह देखना हमारा फर्ज है कि हमारे बाद की पीढ़ियों को मेवाड़ से जंग न करना पड़े।

'माबदौलत भी तो यही चाहते हैं।' अकबर ने कहा।

'लेकिन मेवाड़ की सरजमीन पर लड़ने का ढंग कुछ निराला ही है। चौकन्नेपन के साथ ही लगातार लड़ते रहने की जरूरत है। बादशाह सलामत ने सारी मुगल फौज उतार दी फिर भी कामयाबी हासिल नहीं हुई। इसलिए मेरी तो सलाह है कि...'

'हाँ-हाँ, फरमाइए, चुप क्यों हो गये?'

'जी, मेरी सलाह यही है कि मेवाड़ कोई इतनी बड़ी हस्ती नहीं जिसके लिए

शहन्शाहे-हिन्द यहाँ बैठे अपना वक्त जाया करें। इसलिए हुजूर तो आगरा तशरीफ ले जायें; हम लोग यहीं बने रहेंगे। एक साल, दो साल, दस या बारह साल भी क्यो न लग जायें, बराबर लड़ते रहेंगे और एक दिन राणा को पकड़ ही लेंगे। असल में लड़ाई इस तरह चलाने की जरूरत है जिसमें राणा को एक लमहे के लिए भी फुरसत न मिलने पाये।'

'तो क्या इससे बागी राणा झुक जायेगा?'

'मेवाड़ को तो हमने चारों ओर से घेर ही लिया है। मेवाड़ की चप्पा-चप्पा जमीन पर हमारे सिपाही मौजूद हैं। राणा के रहने और छिपने के सब ठिकाने हमें मालूम हो चुके हैं। हमारे जासूस दुश्मन की हर काररवाई की खबर लाकर देते रहते हैं। बस, केवल दो-चार हमले और करने की देर है, फिर तो राणा को हाथ में आया ही समझिए।'

'लेकिन फर्ज कीजिए कि आपकी ये कोशिशें बर न आई, तो?'

पाँचों दरबारियों ने, जो मेवाड़ से जरा भी परिचित नहीं थे, उत्साहपूर्वक कहा—कामयाब न हुए तो अपने ही हाथों अपने सिर कलम करके बादशाह सलामत के कदमों पर रख देंगे।

कई बार सिर उतारकर रख देना बड़ा ही सरल कार्य हो जाता है। अकबर ने पराजित सेनानायकों में से कइयों का दरबार में आना बन्द कर दिया था, कइयों से मिलना छोड़ दिया था, कइयों की हाजिरी रोक दी थी। अब वह हारनेवालों के सिर भी कलम करवा सकता था और इस क्षति को सह भी लेता, परन्तु पराजय का अपमान उसके लिए असह्य हो रहा था।

सिपहसालारों की बात सुनकर राजा टोडरमल ने गम्भीरतापूर्वक कहा—सिर तो बादशाह सलामत के कदमों पर न्योछावर हैं ही। जब भी हुजूर माँगें सिर उतारकर दे देना हमारा फर्ज है। इसके लिए नये सिरे से कौल करने की जरूरत नहीं। मुझे तो राजा भगवानदास साहब का मशविरा माकूल लगता है। हुजूर आगरा तशरीफ ले जायें। हमारे पास फतह की एक नहीं, बहुत-सी तदबीरें हैं। एक कामयाब न हुई तो दूसरी सूरत निकाली जायेगी।

टोडरमल के इस प्रस्ताव का सभी अनुभवी दरबारियों ने समर्थन किया। अकबर की उपस्थिति सभी की चिन्ता का कारण बनी हुई थी। सदा यह डर

लगा रहता था कि यदि अकबर को कुछ हो गया तो मुगल शासन के उन्नत भाल पर कलंक का टीका लग जायेगा। जब से यह सुना था कि प्रताप के सरदारों ने अकबर को बिस्तरे सहित उठा ले जाने का निश्चय किया है तब से सभी मुगल सरदारों और सेनानायकों की छाती धड़कती रहती थी। उनका सारा लक्ष्य प्रताप को पकड़ने के बदले अकबर की रक्षा में केन्द्रित हो गया था। इस डर के मारे बेचारे दिल खोलकर मेवाड़ियों से लड़ भी नहीं पाते थे। सभी मनाते रहते थे कि बादशाह यहाँ से चला जाये तो दिल खोलकर लड़ तो सकें। स्वयं अकबर को भी टोडरमल का यह प्रस्ताव समयोचित प्रतीत हुआ और उसने भी समर्थन किया।

अकबर की छावनी के समीप एक मेवाड़ी किसान को पकड़कर उससे जबर-दस्ती खेती करवाने की योजना बनाई गई थी, जिसमें मुगल सैनिकों को अन्नाभाव का कष्ट न सहना पड़े। वह मेवाड़ी किसान कुशल खेतिहर था और उसने मुगलों की इस योजना को कार्यान्वित करना स्वीकार भी कर लिया था। योजना के अनुसार खेती होने लगी। आसपास की भूमि हरियाली से लहलहा उठी। इस योजना की सफलता के सन्तोष और आनन्द के साथ अकबर मेवाड़ छोड़ने को तैयार हुआ। रवानगी से पहले उसने अपनी सारी सेना को छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँट दिया, जिसमें वे मेवाड़ की एक-एक पहाड़ी को घेर सकें।

चित्तौड़, उदयपुर, और कुम्भलमेर तो मुगलों के अधिकार में थे ही। अधिकांश बस्तियाँ उजड़ चुकी थीं। प्रायः सारा मेवाड़ ही जंगलों में जा बसा था।, इससे प्रताप को गति-विधि का पता लगाना कुछ सरल अवश्य हो गया था, परन्तु साथ ही मेवाड़ी जनता की मुगल सेना का प्रतिरोध करने की सामर्थ्य भी बहुत बढ़ गई थी। मेवाड़ की सारी प्रजा—किसान, मजदूर, व्यापारी, जागीरदार, स्त्री-पुरुष सभी—सैनिक बन गये थे। जिस प्रताप ने समस्त जनता को स्वाधीनता-संग्राम का सैनिक बना दिया उसके प्रति अकबर के मन में आदर का भाव कम न था। वह उस प्रताप को देखना और साथ ही अपने सामने झुकाना भी चाहता था। जाते-जाते अकबर को यह विश्वास हो चला था कि अब प्रताप को पकड़ना मुश्किल न होगा। किले और बस्ती से जिसे पहाड़ और जंगल में खदेड़ दिया है वह कितने दिनों बचा रहेगा? फिर सेना भी तो उसके पास अधिक नहीं थी। हल्दीघाटी की लड़ाई के समय जितनी बड़ी सेना थी उसका तो अब अल्पांश भी नहीं बचा था। अधिकांश अनुभवी सरदार

मारे जा चुके थे। मेवाड़ में बूढ़े देखने को भी नहीं बचे थे। निरन्तर के युद्धों में अधिकांश युवक भी मर-खप गये थे। अब सारा काम किशोर सैनिकों और अल्पवय के सामन्तों के सहारे चलाया जा रहा था। मेवाड़ की सीमाएँ घिर ही गई थीं; और प्रताप मेवाड़ छोड़कर जाने की स्थिति में नहीं थे। कुल मिलाकर अकबर को यह पक्का विश्वास हो चला था कि राणा अधिक दिनों तक आजाद नहीं रह सकेगा।

अपनी राजधानी से दूर रहते हुए भी उसे काफी समय बीत चुका था। विशाल साम्राज्य का अधिपति अपनी राजधानी से अधिक समय तक दूर नहीं रह सकता था। यह विचार भी उसे मेवाड़ से आगरा लौट जाने के लिए प्रेरित करने लगा। लेकिन रह-रहकर यह बात उसके मन में खटकती थी कि वह स्वयं सेना लेकर आया फिर भी प्रताप को झुका न सका। लेकिन जब दरबारियों ने उसे बार-बार आश्वासन दिया कि अब मेवाड़ को जीतने में अधिक समय नहीं लगेगा तो वह आश्वस्त होकर मेवाड़ छोड़ने के लिए प्रस्तुत हुआ। जाते-जाते वह अपने सैनिकों और सेनानायकों को धमकाता गया—अगर एक साल में मेवाड़ को न जीता तो मुझे फिर लौटकर आना होगा।

लेकिन अभी वह मेवाड़ की सीमा छोड़ने भी नहीं पाया था कि उसे बड़े कटु अनुभव हुए और कुछ अप्रिय प्रसंगों का सामना भी करना पड़ा। एक तो यही कि जब वह लौटने लगा तो उसे आगरा और दिल्ली जानेवाला राजमार्ग बन्द मिला। प्रताप के भय के कारण यह रास्ता उजड़ चुका था। विवश होकर अकबर को भी राजमार्ग छोड़कर दूसरे निरापद मार्ग की शरण लेनी पड़ी।

फिर लौटते-लौटते उसने यह सुना कि प्रताप के जिन चार हाथियों को उसने युद्ध में जीता था उन्हें मेवाड़ी सैनिक लूट ले गये। जब यह हाथी पकड़े गये तो अकबर की छावनी में बड़ा आनन्दोत्सव मनाया गया था। चलते समय अकबर ने महावतों को आदेश दिया कि वे हाथियों को तालाब में स्नान करवा लायें। हाथियों की रक्षा के लिए एक सैनिक टुकड़ी भी साथ कर दी गई। अभी हाथी तालाब के पानी में उतरे भी नहीं थे कि आसपास की पहाड़ियों में से राजपूत सैनिक निकल आये। उन्होंने मुगल सैनिकों को काट डाला और हाथियों को अपने अधिकार में करके ले चले।

राजपूत सैनिकों का लड़ने का कोई इरादा नहीं था। उनके नायक ने मुगल सैनिकों से कहा भी—लड़ाई की कोई जरूरत नहीं। बस, हम इतना ही चाहते हैं कि तुम हमारे हाथी हमें सौप दो।

'तुम्हारे हाथी ?'

'हाँ, हमारे हाथी ! मुगल सम्राट हमारे यहाँ मेहमान बनकर पधारे, इसलिए राणाजी ने शिष्टाचार की खातिर उनकी सवारी के लिए हाथी भेज दिये। अब बादशाह सलामत जा रहे हैं तो हम भी अपने हाथियों को लौटा लेने के लिए आये हैं। तुम चुपचाप हाथियों को लौटा दो।'

'वाह ! लड़ाई में पकड़े हुए हाथी तुम्हें लौटा दें ? जानते नहीं हमारी छावनी करीब ही है?'

'अगर अकबर बादशाह को मेवाड़ में अभी और रहना हो तो तुम हाथियों को रख सकते हो वरना नहीं।'

'लेकिन बादशाह सलामत ने तो आगरा के लिए कूच बोल दिया है।'

'इसी लिए तो हम अपने हाथियों को लौटा लेने आये हैं.... नाहक रार मत करो.... हट जाओ सामने से !' यह कहते हुए राजपूत सैनिक मुगलों पर टूट पड़े। शपाशप तलवारें चलीं। तालाब का पानी लाल हो गया और राजपूत सैनिक हाथियों को छीनकर चलते बने।

बादशाह सलामत ने यह खबर सुनी तो आग-बबूला हो गया। अभी अपने गुस्से का इजहार भी नहीं करने पाया था कि दूसरी खबर सुनने को मिली। जिस मेवाड़ी किसान को शाही छावनी के समीप खेती करने का कार्य सौंपा गया था उसे राजपूत सैनिकों ने मार डाला और खड़ी फसल में आग लगा दी।

मुगलों से लड़ रहे मेवाड़ की नीति शत्रु के साथ सम्पूर्ण असहयोग की नीति थी। मेवाड़ियों का नारा था—बस्ती में दिया न जले. खेत में अनाज न पके। जो इस नीति की अवहेलना करता उसे मृत्युदंड दिया जाता था। एक मेवाड़ी किसान ने इस नीति का उल्लंघन किया। अकबर की कृपा भी उसे बचा न सकी, और उसके जाते ही वह मौत के घाट उतार दिया गया।

इसी तरह के अप्रिय समाचारों को सुनता हुआ अकबर मेवाड़ की सीमा पर पहुँचा। वहाँ रुककर उसने एक बार मेवाड़ की ओर देखा। सारा भारतवर्ष उसके

अधिकार में था, नहीं था तो केवल यह जरा-सा मेवाड़। इतना छोटा-सा था कि वह चाहता तो उसे अपनी मुट्ठी में दबोच लेता; लेकिन किसी भी तरह वह उसकी मुट्ठी में समा नहीं रहा था। अब भी मेवाड़ के पहाड़ अपने उन्नत मस्तक उठाये खड़े थे। झुकना तो जैसे वे जानते ही नहीं। मेवाड़ के वृक्ष झुकते तो थे, परन्तु वह झुकना केवल उनकी क्रीड़ा थी। वे किसी के पाँव में और सो भी बादशाह अकबर के पाँव में झुकने को तो कदापि तैयार नहीं थे। मेवाड़ का आदमी झगड़ालू नहीं, शान्तिप्रिय ही था। लेकिन कोई सिर पर चढ़कर झुकाये यह उसे स्वीकार नहीं था। फिर मेवाड़ का महाराणा तो मेवाड़ की स्वतंत्रता का प्रतीक ही था। वह समस्त मेवाड़ देश को स्वाधीनता के लिए अनुप्राणित करता हुआ सतत संघर्षरत था। जब तक महाराणा को नहीं झुकाया जाता, मेवाड़ झुक नहीं सकता था।

'नहीं-नहीं,' मेवाड़ की भूमि जैसे शहन्शाह अकबर से कह रही थी, 'विदेशी आक्रमणकारियों के समक्ष झुकनेवाला महाराणा तो मेवाड़ को स्वीकार ही नहीं। मेवाड़ में कभी ऐसा महाराणा जन्म नहीं ले सकता। कभी उत्पन्न हो ही जाये तो मेवाड़ उसे स्वीकार नहीं करता, उठाकर फेंक देता है।'

मेवाड़ की सीमा पर खड़े अकबरशाह के मन में इसी भाँति के विचार उठ रहे थे और वह सोच रहा था कि पाँच-पाँच बार पूरी शक्ति से आक्रमण करके भी आखिर निष्फलता ही हाथ लगी। उसे प्रतीत हुआ जैसे मेवाड़ की स्वतंत्रता मूर्तिमन्त्र होकर सामने खड़ी ललकार रही हो—सम्राट, तुम यहाँ कभी सफल नहीं हो सकते। यदि तुम्हें साम्राज्य की स्थापना करनी ही है तो मेवाड़ को उसमें से निकाल दो। भूल जाओ कि मेवाड़ भी है। मेवाड़ जलता हुआ अंगारा है। बारूद का ढेर है। बिजली है। तुम उससे खेल नहीं सकते। उसे हाथ लगाते ही तुम्हारा सारा साम्राज्य भभक उठेगा, जलकर राख का ढेर हो जायेगा।

अकबर के कानों में अभी इन शब्दों की प्रतिध्वनि गूंज ही रही थी कि सामने की पहाड़ी से उसने एक शेर को उतरते देखा। वह शेर ठीक बादशाह की जद में आ गया। तीर अथवा बन्दूक की गोली से उसे मारा जा सकता था। अकबर बड़ा ही कुशल शिकारी था। अपनी जद में आये हुए शिकार को मारने का लोभ वह संवरण न कर सका। उसने शेर पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी। शेर ने भी किसी दूसरे की ओर नहीं, अकबर की ही ओर देखा; एक क्षण देखता रहा और

फिर मानो अकबर की उसे कोई परवाह न हो, इस भाँति मुंह मोड़कर दूसरी ओर देखने लगा। अकबर ने कमान पर तीर चढ़ाकर शेर का निशाना साधा। सन-सनाता हुआ तीर छूटा और सबको विश्वास हो गया कि शेर उछलकर टेकरी से लुढ़कता हुआ नीचे आ गिरेगा। लेकिन तीर जाकर लगा वृक्ष के एक तने में और शेर राजाधिराज की शान से चलता हुआ अकबर की ओर आता दिखाई दिया। अकबर ने अभी दूसरा तीर कमान पर चढ़ाया ही था कि शेर एक पहाड़ी की ओट में हो गया।

यदि अकबर अन्धविश्वासी होता तो यही मान बैठता कि वह शेर नहीं राणा प्रताप ही था और जादू के बल से शेर बनकर अकबर का मजाक उड़ाने आया था।

अकबर अन्धविश्वासी नहीं था, फिर भी उसे ऐसा लगने लगा था कि जो प्रताप मुगल सेना के पाँच-पाँच बार के आक्रमण के सामने टिका रह गया वह अवश्य ही जादू जानता है। हाँ, जादू तो वह था ही। वह जादू था जनता का स्वातंत्र्य-प्रेम। स्वातंत्र्य-प्रेम के जादू से प्रभावित प्रजा का केवल एक ही आदमी क्यों न बचा रहे, वह अकेला भी कभी आक्रमणकारी के आगे हथियार नहीं डालता। उसे शत्रु के संख्या-बल का भय नहीं होता। आक्रमण का भय नहीं होता। अत्याचार का भय नहीं होता, न मौत का ही डर होता है। ऐसे स्वातंत्र्य-प्रेमी वीर मरकर भी अमर हो जाते हैं।

ऐसे ही स्वतंत्रता के प्रेमी मेवाड़ियों की वीरता अकबर के मन में इस समय, जब वह मेवाड़ की सीमा पर खड़ा था, उथल-पुथल का संचार कर रही थी। हजारों मेवाड़ियों की मौत के घाट उतारकर भी वह उन्हें पराजित नहीं कर सका था। फत्ता और जयमल मर गये थे, परन्तु उनके वंशज मेवाड़ के गाँव-गाँव और मेवाड़ की घाटी-घाटी में अकबर से लड़ रहे थे।

सहसा अकबर की दृष्टि चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ की ओर उठ गई। कई मीलों के फासले से भी वह कीर्तिस्तम्भ दिखाई दे रहा था। अकबर ने उसे प्रताप के पिता उदयसिंह से जीत लिया था। लेकिन उस एक कीर्तिस्तम्भ के जीते जाने से क्या होता? आज तो मेवाड़ की एक-एक पहाड़ी पर मेवाड़ के कई कीर्ति-स्तम्भ खड़े हो गये थे। सच ही अकबर जिस ओर भी देखता उसे मेवाड़ी वीरों के कीर्तिस्तम्भ खड़े होते दिखाई देते। वह बार-बार आँखें मलने लगा। उसने

जोर से सिर हिलाया और दुःखद विचारों से किसी तरह मुक्ति पाकर घोड़े पर तनकर बैठ गया। क्या डर है? अभी मेवाड़ में उसकी चुनी हुई सेना और चुने हुए सैनिक हैं; आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी लौटकर आ सकता है और जरूर आयेगा, यदि उसकी सेना मेवाड़ को जीत न पायी।

: : २ : :

प्रकृति ने मेवाड़ का श्रृंगार करने में जरा भी कृपणता नहीं की थी। पहाड़ियों के बीच एक सुन्दर सरोवर था और महाराणा प्रताप अपने सामन्तों के साथ इस समय उसमें स्नान कर रहे थे। स्थान बिलकुल निर्जन था। दूर-दूर तक कोई बस्ती नहीं थी। चारों ओर शान्त पहाड़ियाँ थीं और उनके बीच प्रकृति के दर्पण-जैसा यह सरोवर था। इसी में महाराणा प्रताप अपने सामन्तों के साथ पानी को उछालते, आलोड़ित करते हुए स्नान कर रहे थे। चारों ओर बिलकुल सन्नाटा था और इन चार-पाँच आदमियों का पारस्परिक वार्तालाप इस सन्नाटे को और भी गहन कर रहा था।

'तो बादशाह अकबर ने आखिर मेवाड़ छोड़ ही दिया, क्यों अन्नदाता?' गोपीनाथ पुरोहित ने पूछा।

'सम्भवतः अब हमें थोड़ी शान्ति मिले।' एक दूसरे सरदार ने कहा।

'नहीं, मैं तो ऐसा नहीं मानता। अभी तक जो थोड़ी-बहुत शान्ति थी वह भी अब समाप्त हो जायेगी।' प्रताप ने कहा।

'ऐसा क्यों?'

'ऐसा इसलिए कि अकबर मानसिंह और भगवानदास को ही पीछे छोड़ता गया है।'

'हाँ होकम, वे तो हैं ही; उनके साथ सिपहसालार शाहबाजखाँ भी है। सुना है कि उसने अपने सिर की बाजी लगाई है।' गोपीनाथ ने हँसते हुए कहा।

यह सुनकर भामाशाह के छोटे भाई ताराचन्द से न रहा गया। उसने व्यंग-पूर्वक कहा—जो लड़ाई के मैदान में आता है उसके सिर की बाजी तो आप ही लग जाती है। फिर भी यह तुरकड़े व्यर्थ का दिखावा करने में बड़े कुशल होते हैं।

'कभी-कभी मन में आता है कि हल्दीघाटी की लड़ाई की तरह आमने-सामने

डटकर एक बार और लड़ लिया जाये। जो भी निपटारा होना हो वह हो जाये—इस पार या उस पार।' महाराणा प्रताप ने कहा।

'निपटारा कुछ होना नहीं है महाराज, और उस पार हम लग नहीं सकते, क्योंकि यह तो जीवन-भर की लड़ाई है।'

'मेरा जीवन तो ठीक है। मुझे उसकी कोई परवाह नहीं, परन्तु कभी-कभी लगता है कि मैं व्यर्थ ही आप लोगों को कष्ट में डाले हुए हूँ।' प्रताप ने कुछ गम्भीर होकर कहा।

'इसमें कष्ट और तकलीफ की क्या बात है महाराज? और कष्ट यहाँ है ही किसे? हिन्दुकुल-सूर्य राणाजी के साथ सरोवर के निर्मल जल में स्नान कर रहे हैं; भील-बालाओं के हाथ की बनी रसोई का भोजन करते हैं। महल में थे तब भी कभी गद्दों और गालीचों पर नहीं सोये। वही घास-पात के बिस्तरे यहाँ भी हैं और हम उनके इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि पड़ते ही गहरी नींद आ जाती है। कितने मुलायम हैं ये बिस्तरे!' गोपीनाथ पुरोहित ने कहा।

प्रताप ने प्रत्युत्तर में कुछ न कहा। केवल मुस्कराकर रह गये। फिर उन्होंने सूर्य को अर्घ्य दिया और पानी में डुबकी लगाकर बीच तालाब से किनारे की ओर बढ़ने के लिए अपनी भुजाओं से पानी काटने लगे। उनकी सबल पुष्ट बाहुओं को सब सामन्त सम्मोहित-से देखते रहे। पानी काटते हुए राणा प्रताप इस समय ऐसे लग रहे थे मानो कोई विजयी योद्धा दिग्विजय करके लौटा आ रहा हो। कठिनाइयों की कोई सीमा नहीं थी, लेकिन सभी को ऐसा लग रहा था कि प्रताप के वे बाहु सभी कठिनाइयों को पार करके अन्तिम लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जायेंगे। यह तालाब ही क्या, यदि ऐसे राणा के साथ महासागर भी, चाहे वह कठिनाइयों का ही क्यों न हो, पार करना पड़े तो वे युवक सामन्त सहर्ष पार कर सकते थे। फिर सब-के-सब प्रताप का अनुसरण करते हुए किनारे की ओर बढ़ने लगे। तभी ताराचन्द ने कहा—यदि महाराज स्वीकार करें तो तैरने की होड़ बदी जाये।

'अच्छी बात है, आप लोग चक्कर लगाइए। मैं देखता हूँ कि कौन पहले आता है।' राणा प्रताप ने कहा।

'नहीं महाराज, आपको भी साथ देना होगा।'

जब भी इस तरह की होड़ें बदी जाती थीं महाराणा प्रताप उनमें सहर्ष भाग

लेते और अपने सामन्तों का उत्साह बढ़ाते थे। परन्तु आज पहली बार न जाने क्यों वह प्रस्तुत नहीं हो रहे थे।

'पता नहीं आज जाने क्यों मेरा मन नहीं हो रहा है। मैंने तो एक ही होड़ बदी हुई है। और चाहता हूँ कि वह किसी तरह पूरी हो।' प्रताप ने कहा।

'उस होड़ में तो हम सभी ने बाजी लगा रखी है। इतने वर्षों में अकेला देवराज ही विश्वासघाती निकला। और अब तो अकबर भी लौट गया, इसलिए होड़ में हमारी जीत निश्चित है। और मैं समझता हूँ कि ज्यादा देर भी नही है....' अभी गोपीनाथ अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाया था कि दूर से एक ढोल बजता सुनाई दिया। वह संकट का सूचक था। सभी लोग तत्काल पानी से बाहर निकल आये और पलक झपकते सभी ने अपने वस्त्र और आयुध धारण कर लिये।

'कहिए पुरोहितजी, आप तो यही समझे बैठे थे कि अकबर क्या गया उसके साथ सारी मुगल सेना ही चली गई। लेकिन ढोल बजकर कह रहा है कि मुगल सैनिक यहाँ तक आ पहुँचे हैं।' प्रताप ने मुस्कराकर कहा।

'यह तो सोचा भी नहीं था कि वे यहाँ तक आ पहुँचेंगे। अब ?' पुरोहित ने कुछ चिन्तित होकर कहा।

'अब पहाड़ियों में कूद जायेंगे और फिर आँख-मिचौनी का हमारा खेल शुरू हो जायेगा।' वैश्य ताराचन्द कह उठा।

'शाबाश ताराचन्द ! लेकिन कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे ? मुगलों के पास साधन हैं, शक्ति है, बुद्धि और वीरता भी है। यदि इन पहाड़ियों में भी उनका बस चल गया तो फिर वे मेवाड़ को कदापि स्वतंत्र नहीं रहने देंगे।' प्रताप ने कहा।

'लेकिन उनका बस चलेगा तभी न ? जब तक हम जीवित हैं उनका बस कभी नहीं चल सकता।' पुरोहित गोपीनाथ ने कहा।

'बात तो तुम्हारी सच है गोपीनाथजी। हम अपने जीवन को कभी सस्ता नहीं करेंगे।' प्रताप ने कहा।

'बिलकुल ठीक कहा राणाजी ने। मेवाड़ के लिए हम अपने प्राणों को बचाकर रखेंगे और महँगे-से-महँगे दामों पर ही देंगे।'

दूसरे ही क्षण सब-के-सब वहाँ से गायब हो गये। केवल तालाब का हिलता हुआ पानी वहाँ रह गया। पानी को हिलानेवाले हरी-भरी पहाड़ियोंकी ओट में जा

पहुँचे थे। सर्दी और गर्मी में समभाव से रहनेवाले तपस्वी पर्वत अपनी समाधि में स्थिर बैठे रहे। कोई भूला-भटका पक्षी उड़ता हुआ निकलकर उस शान्त भयानकता में और वृद्धि ही कर रहा था।

थोड़ी ही देर में काले रंग का एक शक्तिशाली भील तालाब के किनारे पर आया। वह कमर में सिर्फ एक लँगोटी लगाये हुए था। वहाँ आकर उसने चारों ओर देखा। अपने सिवाय मानव-सृष्टि का कोई चिह्न उसे वहाँ नहीं दिखाई दिया। उसने सन्तोष की एक साँस ली और अपने हाथ की जाल को जोर से पानी में फेंक-कर तालाब के पानी में पाँव डालकर बैठ गया। उसकी जाल तालाब पर दूर तक फैलती चली गई। क्या वह सारे सरोवर को तो नहीं ढक लेगी ?

अभी अधिक समय नहीं बीता था कि उसे दूर से लोगों के चलने की आहट सुनाई दी। निश्चय ही किसी के चलने की ध्वनि थी। उसने एक हाथ अपनी कमर में खोंसी हुई कटार पर रखकर इत्मीनान कर लिया कि वह वहाँ सुरक्षित है। फिर उसने जाल को खींचा और दुबारा पानी पर फेंक दिया। उसने तल्लीनता और एका-ग्रता का इतना सफल अभिनय किया कि जब एक मुगल सैनिक ने समीप आकर उसके कन्धे पर हाथ मारा तो वह सहसा चौंक उठा और तभी उसने मुड़कर पीछे देखा।

'कौन है तू ?' मुगल सैनिकों के नायक ने पूछा।

'मैं ? मैं भील हूँ।'

'असली बदमाश तो तुम्हीं हो। चल, खड़ा हो !'

'इस जंगल में कोई बदमाशी भी क्या करे ! इजाजत है इसलिए मछलियाँ पकड़ते हैं। आपका हुक्म न हो तो न पकड़ें।' भील ने खड़े होते हुए कहा।

'तेरा नाम क्या है ?'

'नाम तो मेरे कई हैं। मा जोगटा कहकर बुलाती थी, बाप डक कहता था, मौसी बुल्लू....'

'क्यों बे ? यहाँ कोई बल्ल नाम का भील भी रहता है ?' उसकी बेकार की बकबक से तंग आकर एक मुगल सैनिक ने डपटकर पूछा।

'जोधा नाम का भी कोई है ?' एक दूसरे सिपाही ने पूछा।

'बल्ल और जोधा नाम के तो बहुत-से लोग हैं। हर पाँच-सात कोस पर आपको

कोई-न-कोई वल्ल और कोई-न-कोई जोधा हम लोगों में मिल ही जायेगा।'

'हम तो उन वल्ल और जोधा को पूछ रहे हैं जिन्होंने बाला राणा को यहाँ छिपाया है।'

'बाला राणा? नहीं, इस नाम का तो कोई राणा हमारे यहाँ नहीं है—सारे मेवाड़ में ही नहीं है।'

'अरे, राणा प्रताप।'

'अच्छा! आप हमारे राणाजी के बारे में कह रहे हैं! वह किले और महल छोड़कर इन जंगलों और पहाड़ों में क्यों आने लगे?'

'उनके किले और महल मुगलों ने छीन लिये हैं। भागना पड़ा है उनको वहाँ से। अब छिपने के लिए ये पहाड़ और जंगल ही तो रह गये हैं।'

'हम बनवासियों को इन बातों का क्या पता? यहाँ छिपे हों तो ढूंढ़ लो।'

'तू हमारी मदद नहीं करेगा?'

'इन पहाड़ों में कोई सौ बरस भी ढूंढ़ता रहे तो छिपा आदमी हाथ न लगे। क्या आसान है इन पहाड़ों में किसी को ढूंढ़ना?'

'उन्हें ढूंढ़ देगा तो तुझे सौ अशर्फियाँ देंगे। ले, पेशगी ले ले।'

'किसे ढूंढ़ने को कह रहे हो?' भील ने अशर्फियाँ हाथ में लेकर प्रसन्न होते हुए कहा।

'राणाजी को।'

भील ने सिपाहियों की ओर विस्मित होकर देखा, फिर उसने पहाड़ों की ओर एक दृष्टि डाली, उसके बाद वह अपना सिर खुजलाने लगा। अन्त में दोनों हाथ नचाकर इस तरह विस्मय का प्रदर्शन किया मानो कुछ भी उसकी समझ मे न आया हो।

'और यदि तूने राणा को नहीं बताया तो याद रखना, जान से ही मार डालेंगे।' सिपाहियों ने धमकी दी। उन्हें इस बात की पक्की जानकारी मिली थी कि राणा प्रताप इन्हीं पहाड़ियों में या इनके समीप की दूसरी पहाड़ियों में, भीलों के साथ छिपे हुए हैं। सिपाहियों की धमकी सुनकर एक बार तो भील की आँखें क्रोध के मारे लाल हो गई, परन्तु दूसरे ही क्षण उसने आत्मसंयम किया और धीरे-धीरे जाल को पानी में से खींचने लगा। जाल तो निकल आई, परन्तु उसमें मछली

एक भी नहीं फँसी थी। खाली जाल की ओर देखते हुए वह मुस्करा दिया और बोला—कहाँ ढूंढ़ेंगे राणाजी को ?

'जहाँ भी तू बताये। सच कहना, तूने राणाजी को कहाँ छिपाया है ?' नायक ने पूछा।

'एक ओर अशर्फियों का ढेर है और दूसरी ओर राणाजी का भेद। हो जा तैयार।' एक दूसरे मुगल सैनिक ने उसे और भी प्रलोभन देते हुए कहा और अशर्फियों की एक और थैली उसके हाथ में थमा दी।

'राणाजी का तो कुछ पता नहीं। छिपनेवाला किसी को बताकर तो छिपता नहीं है। पर आओ मेरे साथ, कुछ अड्डे देख ही लिये जायें।' यह कहकर भील तालाब के किनारे पर चढ़ गया और वहाँ से उतरकर पहाड़ियों की ओर बढ़ा। सैनिक भी उसके साथ हो लिये। पहाड़ की एक चोटी पर पहुँचकर भील ने एक बड़ी चट्टान को खिसकाकर अन्दर झाँका। बहुत बड़ी थी वह गुफा। दो-एक मुगल सैनिक हिम्मत करके आगे बढ़े तो एक विशालकाय अजगर फुफकारता, फन फैलाता खड़ा हो गया। उस भूखे अजगर को यह विश्वास हो गया कि इतने आदमियों के रहते उसे भूखों नहीं मरना पड़ेगा।

'अबे, यहाँ कहाँ ले आया ?' सिपाहियों ने भील को धमकाते हुए कहा।

'साहब, यहाँ तो सब जगहें ऐसी ही हैं। और अभी तो हमें सारा जंगल खोजना है।' यह कहता हुआ भील उन्हें एक घनी दुर्गम झाड़ी में उतार लाया। झाड़ी के अन्दर छिपी हुई एक गुफा थी। बड़ी मुश्किल से झुकते-झुकाते और रेंगते हुए मुगल सैनिक गुफा के द्वार तक पहुँचे। अन्दर झाँककर देखा तो दो अंगारे-से चमकते दिखाई दिये। फिर उन्हें उन अंगारों के आसपास वनराज केसरी का विकराल मुंह भी दिखाई दिया। दूसरे ही क्षण गुर्राहट सुनाई दी और सैनिकों को विश्वास हो गया कि वास्तव में वह सिंह ही है। सब सिर पर पैर रखकर वहाँ से भागे।

जब कुछ दूर आये तो अपनी फूली हुई साँस को किसी तरह काबू में करते हुए मुगल सैनिकों के नायक ने उस भील को डपटते हुए कहा—अबे, यह तू हमें बार-बार कहाँ ले आता है ?

'क्या करूँ साहब, यहाँ तो सभी जगहें ऐसी ही हैं। आप कहें तो दूसरी जगह ले चलूं।' भील ने कहा।

'हम तो उसी जगह चलना चाहते हैं जहाँ तुम लोगों ने राणा को छिपा रखा है।'

'बगैर खोजे क्या पता चलेगा साहव ?'

'तो कल ढूंढ़ कर रखना। हम तुझे और भी अशर्फियाँ देंगे।' नायक ने कहा और भील अपने हाथ में ली हुई अशर्फियों को वड़ी ही लुब्ध और प्रेमभरी दृष्टि से देखने लगा।

'अच्छा साहव ! कल आना। कल और ढूढ़ेंगे।' भील ने कहा और मुगल सैनिक सँकरी पहाड़ी पगडण्डी से उतरकर नीचे चले गये। भील थोड़ी देर तक वहीं रास्ते के मुहाने पर वैठा देखता रहा कि सैनिक किस ओर जाते हैं। जव उसे विश्वास हो गया कि मुगल सैनिक चले गये तो वह मुंह ऊपर उठाकर जोर-जोर से और लगातार विचित्र प्रकार की आवाज करने लगा। वह आवाज ऐसी थी जिसे न तो कोई जानवर बोल सकता था और न कोई मनुष्य। उस आवाज को सुनते ही चारों ओर से भील और राजपूत सैनिक वहां दौड़े आये और उसे घेरकर खड़े हो गये। उनके साथ महाराणा प्रताप भी थे। वे सब समीप ही पहाड़ की एक कन्दरा में छिपे हुए थे। वह जगह इतनी सुरक्षित थी कि मुगल टुकड़ी चार वार सामने से निकल गई और उसे पता ही न चला।

'क्यों बल्ल, क्या खयाल है तुम्हारा ?' प्रताप ने उस भील से पूछा।

जिस बल्ल के वारे में मुगल सैनिक पूछ रहे थे वह यही था। इसने अपने साथी जोधा के साथ, कुम्भलमेर छोड़कर आये हुए महाराणा प्रताप, उनके परिवार और सामन्तों को सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया था। समस्त भील प्रजा पर वल्ल और जोधा की बड़ी धाक थी। मुगल सैनिक अभी तक इस ओर के पहाड़ी प्रदेश में घुस नहीं पाये थे। फिर भी भील नायकों ने सुरक्षा का वहुत ही अच्छा प्रबन्ध कर लिया था। कभी ढोल बजाकर, कभी मोर की तरह कूककर और कभी विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ करके वह संकट की सूचना देते और राणा तथा उनके साथियों को सचेत कर देते थे। पहाड़ की उपत्यकाओं में, कन्दराओं और खोहों में छिपने के सुरक्षित स्थान उन्होंने वना लिये थे। कुछ कन्दराएँ तो इतनी वड़ी थीं कि उनमें एक साथ सैकड़ों आदमी समा जाते, फिर भी किसी को पता न चलता। राणाजी के परिवार के सदस्यों को ऐसे ही सुरक्षित स्थानों में रखा जाता था।

'अन्नदाता, जगह बदल देनी चाहिए। दुश्मन के आने का तो नहीं, जगह देख लेने का डर जरूर है। वह आकर देख भी गया है।' बल्ल ने कहा।

'तो पहला काम यही किया जाये।'

'नहीं अन्नदाता, पहले काँसा आरोग लिया जाये। दोपहर दिन होने आया। भोजन के उपरान्त ही सवारी यहाँ से विदा होगी।' बल्ल ने आग्रहपूर्वक कहा।

'लेकिन मुगल कहीं जल्दी ही लौट आये, तो?'

'आते देर लगेगी और आ ही गये तो हम देख लेंगे।' बल्ल ने उत्तर दिया।

योजनानुसार पहाड़ की चोटी पर ही, एक वृक्ष की छाया में पंगत पड़ गई। रानोजी, महाराणा, अमरसिंह तथा सामन्त पेड़ के पत्तों की हरी पत्तलें और दोने लेकर बैठ गये। कहीं से भील युवतियाँ निकल आईं और बिछी पत्तलों पर रोटी, सब्जी, छाछ और घी परोसने लगीं। भगवान का नाम लेकर महाराणा प्रताप ने कौर अभी मुंह में डाला ही था कि कहीं से विचित्र प्रकार का स्वर रह-रहकर सुनाई पड़ने लगा। जहाँ जिसका हाथ था वहीं रुका रह गया। वह स्वर उन्हें सचेत करता हुआ कह रहा था कि दुश्मन नजदीक आ पहुँचा है।

भोजन-समारम्भ की व्यवस्था बल्ल के जिम्मे थी। वह चिन्तित हो उठा, फिर भी उसने कहा—कोई चिन्ता नहीं महाराज। आप भोजन कीजिए। दुश्मन अभी दूर है। इस बीच भोजन किया जा सकता है। केवल कुछ जल्दी करना होगा।

'नहीं बल्ल, अब इस जगह को छोड़ ही देना चाहिए। खाने से जीना ज्यादा जरूरी है।' प्रताप ने कहा और वह खड़े हो गये।

अकस्मात् बल्ल का भाई जोध तीर-कमान लिये कहीं से वहाँ दौड़ा आया और उसने बताया कि शत्रु के सैनिक तीन दिशाओं से बढ़े चले आ रहे हैं।

'अरे, राणाजी को भोजन तो कर लेने दे। क्या उतनी देर हम शत्रु को रोक नहीं सकते? भील हैं या नहीं?' बल्ल ने जरा क्रोधित होकर कहा। राणाजी भूखे जायें यह उसे किसी भी तरह स्वीकार नहीं था।

'रोक तो रखा है। हमारे भीलों ने पत्थर लुढ़काना शुरू भी कर दिया है। लेकिन मेरी राय में निकल जाना अच्छा; कहीं घिर न जायें। और भोजन तो दो घड़ी बाद भी किया जा सकता है।' जोध ने कहा।

'मेरा भी यही कहना है, जोध! चलो, आगे हो जाओ, मार्ग दिखाओ। अभी

हम लोग इन पहाड़ोंको छोड़कर दूसरी जगह पहुँच जायेंगे।' प्रताप ने कहा।

राणाजी के सभी साथी इस जीवन के अभ्यस्त थे। उन्हें किसी प्रकार की तैयारी करने की आवश्यकता नहीं थी। महारानी और बच्चे भी इस तरह की भाग-दौड़ के आदी हो चुके थे। सब उठ खड़े हुए। परोसी हुई पत्तलें वैसी ही छोड़ दी गइ और जोध के नेतृत्व में राणा, राजकुटुम्ब और सामन्तों ने उस स्थान को अन्तिम नमस्कार किया। थोड़ी ही देर में वह हरा जगल उन लोगों को जैसे निगल गया। स्वयं प्रताप भी यह देखकर चकित थे कि पहाड़ और जगल में, जहाँ रास्ता भी नहीं था, उनके भील मित्र उन्हें कितनी सरलता से लिये चले जा रहे थे।

अभी महाराणा का वहाँ से गये अधिक देर नहीं हुई थी कि मुस्लिमों की दो टुकड़ियों ने दो दिशाओं से उस स्थान पर हमला बोल दिया। बिना किसी प्रतिरोध के बढ़ती हुई दोनों टुकड़ियाँ जब उस स्थान पर आकर मिलीं तो दोनों के नायकों ने अपने कपाल पीट लिये। केवल पत्तलें वहाँ पड़ी हुई थीं, भोजन परोसा हुआ था, लेकिन खानेवाले जा चुके थे। एकसाथ दो दिशाओं से हमलाकर, राणा को पकड़ने के लिए, जो सैनिक उत्साहपूर्वक दौड़े आये थे, उनकी निराशा का पार न रहा।

बल्ल ने पहले एक सैनिक टुकड़ी को इधर-उधर के जवाब देकर चलता कर दिया था। परन्तु उस टुकड़ी का नायक किसी तरह इस बात को जान गया था कि राणा यहीं कहीं आसपास हैं और दोपहर को भोजन के समय उन्हें अवश्य पकड़ा जा सकता है। वह बल्ल को धोखा देकर समीप ही छिप गया और उसने दूसरी टुकड़ी को भी बुला भेजा। दूसरी टुकड़ी समाचार मिलते ही दौड़ी आई। परन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि बल्ल का भाई जोध सतत पहरे पर रहता है और अपनी चौकसी में जरा भी लापरवाही नहीं होने देता। किसी तरह का भय न रहने पर भी वह पहरे पर मुस्तैद बना रहता था। बल्ल तो पहली सैनिक टुकड़ी को नीचे उतारकर निश्चिन्त हो गया, परन्तु जोध एक ऊँचे वृक्ष की फुनगी पर बैठा चारों ओर देखता रहा। उसने देखा कि मुगल सैनिक दो दिशाओं से और काफी बड़ी संख्या में चढ़े चले आ रहे हैं। उसने वहीं से संकट की सूचना दे दी और फिर स्वयं भी दौड़ा आया।

हाथ आये राणा के इस तरह सहसा निकल भागने से दोनों टुकड़ियों के सेना-नायक बुरी तरह बोखला उठे। उन्होंने निश्चय किया कि पहाड़ों का एक-एक पत्थर

छान डालेंगे, और राणा को पकड़कर रहेंगे।

अब प्रताप के पास अधिक बड़ी सेना नहीं थी। अधिकांश सैनिक हल्दीघाटी के मैदान में काम आ चुके थे। बचे हुओं में से अधिकांश मेवाड़ में इधर-उधर बिखरे हुए थे। बहुत-से सैनिक मुगलों के रास्ते रोकने और सीमाओं का अतिक्रमण करने में लगे थे। देशव्यापी मोरचे पर लड़कर ही मुगलों को मेवाड़ से निकाला जा सकता था। इसी रणनीति का अवलम्बन कर प्रताप ने मुगलों के चार हमलों को व्यर्थ किया था। लेकिन मुगलों का यह पाँचवाँ हमला बहुत ही प्रचंड, भयंकर और दृढ़ निश्चय से पूर्ण था। मेवाड़ी सेना में केवल देवराज को छोड़कर अभी तक किसी ने विश्वासघात नहीं किया था, न कमजोरी ही दिखाई थी। परन्तु अकेले देवराज के उदाहरण से राणाजी मन-ही-मन आशंकित हो उठे थे। उनकी सेना के अनेक योद्धाओं ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया था। प्रौढ़ और अनुभवी सैनिकों के मारे जाते ही युवक और किशोर सैनिक उनका स्थान लेने दौड़े आते थे, फिर भी राणाजी मन-ही-मन अनुभव करने लगे थे कि लम्बे युद्ध से सैनिक और जनता दोनों ही क्लांत हो जाते हैं और विश्राम की आवश्यकता उन्हें होती ही है। अपनी जनता और अपने सैनिकों को विश्राम देने के उद्देश्य से ही वह कुम्भलगढ़ छोड़कर इस पहाड़ी इलाके में चले आये थे। इस से जनता पर शत्रु सैनिकों का दबाव अवश्य कम हुआ था, परन्तु साथ ही शत्रुओं का सारा ध्यान इस प्रदेश पर केन्द्रित हो गया था और अब भीलों पर करारे हमले होने लगे थे। मुगल सेना का उद्देश्य प्रताप को चारों ओर से घेरकर फँसा लेने का था। घेरा बढ़ता जा रहा था। सभी पहाड़ी दर्रों, घाटियों और मार्गों पर मुगल सैनिकों की चौकियाँ स्थापित कर दी गई थीं। पहाड़ी प्रदेश में इधर-से-उधर आना-जाना मुश्किल हो गया था और समतल मैदान से पहाड़ों में अथवा पहाड़ों से समतल मैदान में आना-जाना तो अब लगभग असम्भव ही था। मुगल सैनिकों को दिक करने के इरादे से जिस घर-फूक नीति का अवलम्बन किया गया था अब वह स्वयं प्रताप और उनके सैनिकों के लिए भी कष्टकर हो रही थी। उसके कारण मेवाड़ी सैनिक भी अकाल और भुखमरी का शिकार होने लगे थे। लेकिन इतनी सब आपदाओं और प्रतिकूलताओं के होते हुए भी मेवाड़ी और भील सैनिकों का निश्चय अटल था और मुगलों के लाख प्रयत्नों के होते भी प्रताप पकड़े नहीं जा सके थे।

'बल्ल, इधर-इधर हमारे भील बड़ी संख्या में मारे जाने लगे हैं।' एक मुठ-भेड़ में शत्रु को परास्त कर अपने हथियारों को साफ करते हुए महाराणा प्रताप ने कहा।

'मरना-जीना क्या किसी के हाथ में होता है अन्नदाता?' बल्ल ने जवाब दिया।

'बल्ल, तुम तो ज्ञानी हो गये। लेकिन मैं तो उनकी बात कह रहा हूँ जो दुश्मन के हथियारों से मरते हैं।'

'जीतेंगे या मरेंगे, ऐसा निश्चय करने के बाद मौत का क्या डर?'

'लेकिन इस तरह कितने दिनों चलेगा? यों तो एक दिन सारे भील समाप्त हो जायेंगे।'

'अन्नदाता की बातें! भील कभी समाप्त हुए हैं। गुजरात और दक्षिण के पहाड़ों में अनन्त भील भरे पड़े हैं। इधर से जरा दम मारने की फुर्सत मिले तो एक बार उधर जाकर हाँका कर आऊँ, फिर देखिएगा कितने भील जमा हो जाते हैं!'

'लेकिन तुम सब मिलकर भी हमारी रक्षा कब तक कर सकोगे?'

'जब तक जीयेंगे तब तक।' कहता हुआ बल्ल सहसा चौंककर खड़ा हो गया।

'क्यों बल्ल, चौंके क्यों?' महाराणा ने पूछा।

'अपने पास, बिलकुल ही पास मुझे जैसे दुश्मनों के चलने की आहट सुनाई दी।' बल्ल ने कहा।

यह सुनकर प्रताप ने अपने चारों ओर देखा। कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। परन्तु बल्ल नीचे की घाटी की ओर टक लगाये देखता रहा। घाटी में एक बड़ी-सी चट्टान थी और वह उसी को देख रहा था। बड़ी देर तक देखने रहने के बाद उसने कहा—अन्नदाता बिराजें। कोई दिखाई नहीं देता।

'हम सब बड़े शक्की हो गये हैं। पक्षी भी पंख फड़फड़ाता है तो हम यही समझते हैं कि दुश्मन की सेना आ पहुँची।' कहते-कहते प्रताप हँस पड़े। लेकिन उनकी वह हँसी बड़ी ही विषादपूर्ण थी। इधर कई दिनों से वह ऐसी ही विषण्ण हँसी हँसने लगे थे। उनके चेहरे पर सिलवटें और झुर्रियाँ भी बहुत बढ़ गई थीं।

उपर्युक्त वार्त्तालाप के बाद दोनों वीर फिर चुपचाप बैठे अपने शस्त्रों को साफ करते रहे। उनकी रक्षा के लिए आसपास बहुत-से भील सैनिक छिपे बैठे थे। निकट

ही महारानी अपने परिवार के साथ एक ऊँची टेकरी पर भील युवतियों को लेकर भोजन के प्रबन्ध में संलग्न थी। थोड़ी ही देर पहले वहाँ एक छोटी-मोटी लड़ाई हो चुकी थी और मुगलों का वह पहाड़ छोड़कर भागना पड़ा था। भागते हुए मुगल सैनिकों के पीछे गोपीनाथ पुरोहित और जोध गये हुए थे। चारों ओर सन्नाटा था। परन्तु उस शान्ति में भी प्रताप का हृदय अशान्ति का अनुभव कर रहा था।

एकाएक बल्ल फिर चौंका और उठकर खड़ा हो गया। समीप ही फन्देवाली एक लम्बी-रस्सी पड़ी थी। उसे उठाकर उसने बिजली की तरह तड़पकर जोर से फेंका और खिलखिलाकर हँस पड़ा। बल्ल की वह फुर्ती देखकर राणाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे ही क्षण प्रताप ने देखा कि हँसते हुए बल्ल के फन्दे में चार मुगल सैनिक फँसे ऊपर की ओर खिंचे चले आ रहे थे।

'मुझे बड़ी देर से लग रहा था कि कोई दुश्मन जरूर हमारे पीछे ही लगा हुआ है। वह मेरा वहम नहीं सच ही था। अन्नदाता देख ही रहे हैं।'

चार सशस्त्र सैनिक बल्ल के फन्दे में फँसे हुए थे। चार होते हुए भी उनका कोई बस नहीं चल रहा था। ठीक से खड़े भी नहीं हो पा रहे थे। फन्दे में फँसे बोरों की भाँति ऊपर खिंचे चले आ रहे थे। बल्ल और जोध दोनो ही भाई फन्दा फेंकने और फँसाने की कला में बड़े निपुण थे।

जब चारों सैनिक घिसटते हुए वहाँ आ गये तो बल्ल ने डपटकर कहा—खड़े हो जाओ सीधे से।

बेचारे बड़ी मुश्किल से खड़े हो पाये।

राणाजी ने उनसे पूछा—कहाँ से आये हो और कैसे आये हो?

हमला करनेवाली मुस्लिम टुकड़ी को मारकर भगा दिया गया था। भीलों की एक टुकड़ी उन्हें दूर तक भगाने और यह देखने के लिए कि वे सच ही भाग गये हैं, उनके पीछे गई हुई थी। फिर भी चार मुगल सैनिकों ने हिम्मत की और प्रताप को पकड़ने के इरादे से छिपे रहे। यह देख प्रताप को आश्चर्य के साथ प्रसन्नता हुई। साहस और वीरता, चाहे शत्रु की ही क्यों न हो, देखकर प्रताप सदैव प्रसन्न होते थे।

'राणाजी, भागते-भागते हम पास की एक चट्टान के पीछे दुबक गये थे। जब हमारी और आपकी सेना यहाँ से दूर चली गई तो हमने सोचा कि छापा मारकर आपको पकड़ क्यों न लिया जाये।' एक मुगल सैनिक ने सच बात बता दी।

'जानते नहीं मेरे कान गणेश के—पाँच-पाँच कोस लम्बे हैं ? सारी दुनिया-जहान की खबर रखता हूँ मैं। चींटी का चलना भी सुन लेते हैं मेरे ये कान। और, देखना चाहते हो, यहाँ राणाजी की रक्षा के लिए कितने लोग हैं ? तो तुम भी देख ही लो।' यह कहकर बल्ल ने एक खास ढंग से ताली बजाई और दूसरे ही क्षण तीर-तलवार और बल्लम-भाले लिये हुए बीस-एक भील नारियाँ आसपास से निकलती दिखाई दीं। कोई पहाड़ी की चोटी से उतर रही थी, कोई वृक्ष की छाँह से निकल रही थी, कोई घास में से उठकर आई थी तो तीन-चार घाटी में छिपी बैठी थीं और वहाँ से निकल आई थीं। यह देखकर चारों मुगल सैनिक चकित रह गये। उन छिपी हुई भील वीरांगनाओं ने इन चारों सैनिकों को देख लिया था और अपने विशिष्ट संकेत के द्वारा बल्ल को सचेत भी कर दिया था। उनका संकेत इतना धीमा था कि महाराणा को पता न चल सका। जब पहली बार बल्ल ने संकेत सुना तो वह चौंका। दूसरी बार उसे यह संकेत मिला कि चारों मुगल सैनिक महाराणा पर छापा मारने के लिए ऊपर चढ़े चले आ रहे हैं। उसने फुर्ती से फन्दा फेंककर चारों को उसमें फँसा लिया और पकड़कर महाराणा के सामने हाजिर कर दिया। प्रताप यह तो जानते थे कि भील उनकी रक्षा में सतत सन्नद्ध रहते हैं, परन्तु भील नारियाँ भी हथियार लिये पहरा देती रहती हैं, यह बात उन्हें आज ही मालूम हुई।

प्रताप ने सोचा, कितना सौभाग्य है मेरा कि भील पुरुष ही नहीं, नारियाँ भी इस प्रकार मेरी रक्षा के लिए प्रस्तुत रहती हैं। ऐसी वीर जाति का नेतृत्व करने की अभिलाषा किसे नहीं होगी ?

लेकिन दूसरे ही क्षण प्रताप का यह अभिमान भू-लुंठित हो गया और उनका हृदय विषाद से भर आया। वह सोचने लगे, मुझ अकेले की रक्षा के लिए कितने लोगों को कितने-कितने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। इससे तो कहीं अच्छा होता कि मैं मर जाता। प्रताप सभी लड़ाइयों में प्राणों का मोह छोड़कर लड़ते थे। पाँव पीछे हटाना उन्होंने जाना ही नहीं था। लेकिन मरना चाहकर भी वह मर नहीं पा रहे थे; क्योंकि हल्दीघाटी की लड़ाई में झालाराणा मरते-मरते प्रताप को सौगन्ध दे गये थे। उन्होंने अपने समीप लड़ रहे गोपीनाथ ब्राह्मण को बुलाकर कहा था :

'गोपीनाथ, मैं तो मर रहा हूँ, परन्तु मेरी शपथ तुम राणाजी तक पहुँचा दो।'

'क्या कहते हैं आप ? मैं युद्ध छोड़कर चला जाऊँ ?' तेजस्वी ब्राह्मण ने शत्रु-सेना के एक नायक को अपने बल्लम से नीचे गिराते हुए कहा था।

'हाँ, जाओ और महाराणा को ढूंढ़कर उनसे यह कहो कि अब वीरता मरने में नहीं, जीवित रहने में है।'

'अरे, आप यह क्या कह रहे हैं ?'

'सच ही कह रहा हूँ। मेवाड़ पर आया संकट इस एक युद्ध से समाप्त नहीं होगा। और यदि महाराणा इसी भाँति अपने प्राणों को संकट में डालते रहे तो मेवाड़ पलक झपकते ही पराधीन हो जायेगा। मरना तो सभी जानते हैं, परन्तु मरकर जीवित रहना बहुत थोड़ों को आता है। जाकर कहो महाराणा से कि झाला-राणा के नाम की शपथ है आपको, आप जीवित रहेंगे और मेवाड़ को जीवित रखेंगे; न आप मरेंगे और न मेवाड़ को मरने देंगे।'

झालाराणा का यह सन्देश गोपीनाथ ने महाराणा तक पहुँचा दिया था। झाला-राणा के इस अन्तिम सन्देश में महाराणा ने सत्य के दर्शन किये। उन्होंने समझा कि अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए मरने की तैयारियों के साथ जीवित रहना होगा। उस दिन से, झालाराणा की इस सौगन्ध के कारण, वह अपने जोश और उत्साह को काबू में रखते आये थे।

इस समय प्रताप को यह सारी बात याद हो आई। जीवित रहना मरने की अपेक्षा कितना कष्टप्रद होता है, इसका विश्वास उन्हें दिन-प्रतिदिन होता जाता था। युद्ध का कहीं अन्त दिखाई नहीं देता था। मुगलों को जितना ही पीछे ठेलते, वे उतने ही जोश से फिर आगे बढ़ते और आक्रमण करते थे। प्रताप ने सोचा शत्रु की यह नीति तो स्वयं भी अपनाने-जैसी है, तो क्यों न अपना लिया जाय इसे ? तभी राणा प्रताप के विचारों को भंग करते हुए बल्ल ने मुगल सैनिकों की ओर देखते हुए पूछा—उस बार वहाँ, तालाब के किनारे, मेरी भेंट तुम्हीं से हुई थी न ?

'हाँ।'

'उस दिन तो मछली नहीं फँसी, परन्तु आज फँस गई हैं बहुत बड़ी-बड़ी।' बल्ल ने हँसते हुए कहा।

बन्दी सैनिकों ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूर तक सुननेवाले भील सरदार की आँखें भी दूर तक देख सकती थीं, इसलिए उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा।

बल्ल ने ही उनसे फिर प्रश्न किया—कहो, किस तरह मरना पसन्द है? इन औरतों के हवाले कर दूं, या एक-एक को उठाकर नीचे घाटी में ढकेल दूं और ऊपरसे पत्थर लुढ़का दूं? जो चाहो पसन्द कर लो।

मुगल सैनिक डरे हुए तो वैसे भी थे, अब और डर गये। उनके नायक ने कहा —पकड़ तो गये ही हैं। अब जिसमें आपकी और हमारी भी शोभा हो उसी तरह मारिए। हमसे क्या पूछते हैं?

'बल्ल, छोड़ दो इन्हें।' प्रताप ने कहा।

'महाराज! ये फिर सेना लेकर हम पर चढ़ आयेंगे।' बल्ल ने कहा।

'लड़ाई में तो यह सब होता ही है बल्ल।' प्रताप ने समझाते हुए कहा।

'तो इन्हें कैद कर लिया जाये; या आप कहें तो यह वचन लेकर छोड़ दें कि फिर सेना लेकर नहीं आयेंगे।'

'वचन देना क्या इनके हाथ में है? किराये के सैनिक हैं बेचारे। मेवाड़ की भाँति स्वेच्छा से बने सैनिक तो हैं नहीं।'

'महाराणा का फरमाना गोकि दुरुस्त है, किराये के सिपाही जरूर हैं, तनख्वाह भी पाते हैं, लेकिन बदले में जान भी लगा देते हैं।'

मुगल नायक का यह जवाब महाराणा को बहुत अच्छा लगा। थोड़ी देर तक वह उसके सामने देखते रहे और तब बोले—शाबाश! बल्ल, इनसे हथियार न छीने जायें। हम इनसे वचन भी नहीं लेंगे। जिसे मरना आता है वह वीर होता है और मेवाड़ का राणा वीरों का आदर करना जानता है।

बल्ल ने चारों सैनिकों को मुक्त कर दिया। हथियार उनसे छीने नहीं गये। भील-बालाएँ उन्हें मारना चाहती थीं; परन्तु अब कोई उन्हें हाथ नहीं लगा सकता था। इतने में मुगलों को भगाकर जोध की टुकड़ी लौटकर आती दिखाई दी।

'अब खड़े क्यों हो? लगो अपने रास्ते।' बल्ल ने कहा।

लेकिन लौटकर जाना सुरक्षित नहीं था। जोध और उसकी टुकड़ी अवश्य उनको काटकर फेंक देती। कुछ सोचकर मुगल नायक ने कहा—इजाजत हो तो थोड़ी देर आराम कर लें।

'हमारे मेहमान बनकर आये हो न!' बल्ल ने चिढ़कर कहा।

'अरे बल्ल, क्यों न हमीं इन्हें अपना मेहमान बना लें? भले ही हमारे साथ

खाना खाकर जायें। भूख तो इन्हें भी लगी ही होगी और खाना हमारा तैयार ही है।' प्रताप ने कहा। बल्ल भील था, सैनिक था, शत्रु को जाल में फँसाने की कला में कुशल था और व्यर्थ की दया में उसका जरा भी विश्वास नहीं था, फिर भी उसने राणा की बात का विरोध नहीं किया, क्योंकि निरन्तर के सम्पर्क के कारण क्षात्र-धर्म और क्षत्रियों की संस्कृति से वह परिचित हो चुका था। पराजित शत्रु का निपटारा कैसे किया जाता है, यही सच्ची वीरता की कसौटी होती है। शत्रु को अतिथि बनानेवाले प्रताप की ओर वह दो क्षण देखता रहा और उसका मन उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति से भर आया। उसने गद्‌गद होकर कहा—अन्नदाता, आपके रहते यदि मेवाड़ हार जाये तो मैं कहूँगा कि दुनिया में न धर्म है, न ईश्वर।

यह सुनकर मुगल सेनानायक भी बोल उठा—आमीन !

महाराणा ने उन चारों मुगल सैनिकों को अपना अतिथि बनाकर अपने साथ ही भोजन भी करवाया। मुगल सैनिक तो यही समझे हुए थे कि मेवाड़ का महाराणा तरह-तरह के पकवान खाता होगा, लेकिन कन्द-मूल और मोटे अनाज की रोटियाँ देखकर वे चकित रह गये।

उन्हें इस भाँति विस्मित होते देखकर महाराणा प्रताप ने कहा—खान साहब, माफ कीजिएगा, मुगलई खाने तो हम हाजिर नहीं कर सकते।

'लेकिन हुजूर इस तरह के खाने क्यों खाते हैं?'

'जो रैयत को मिले वही राजा को खाना चाहिए, ऐसा हम लोगों का प्रण है।'

'और तुम लोगों के हमलों के कारण यह भी ठीक से कहाँ मिल पाता है।' बल्ल ने कहा।

'महाराणा साहब, एक छोटी-सी बात के लिए हुजूर यों कब तक तकलीफ उठाते रहेंगे ?' मुगल सेनानायक ने पूछा।

'छोटी-सी बात ? जिसके लिए प्राण, परिवार, राज्य और सारे भविष्य की बाजी लगा रखी है, वह बात छोटी नहीं है खान साहब। खैर, लेकिन आप मुगल सेना में हैं किस पद पर ?' प्रताप ने पूछा।

'मेरा पद ?' नायक ने हँसकर कहा।

'यही हमारे सिपहसालार जनाब शाहबाजखाँ साहब हैं।' एक मुगल सैनिक कह उठा।

'अच्छा ! तब तो इन्हें अब भी पकड़ा जा सकता है। और फिर सारी लड़ाई का फैसला यों चुटकियाँ बजाते हो जायेगा।' वल्ल ने मुदित होकर कहा।

'जंग का फैसला इस तरह नहीं हो सकता। इस खाकसार की जगह लेने के लिए शहन्शाह अकबर के पास कई सिपहसालार मौजूद हैं। अलबत्ता हुजूर एक बार हाँ कर दें तो सारा मेवाड़ खुशहाल हो जायेगा और बगीचे के मानिन्द लहलहा उठेगा।'

गिरफ्तार सैनिकों में एक तो सारी मुगल सेना का सेनापति ही था और वह राणाजी को सलाह दे रहा था कि वह मुगलों की अधीनता स्वीकार करलें। उसने यह डर भी दिखाया कि शाम होने के पहले-पहले यह पहाड़ी मुगलों से घिर जायेगी। महाराणा शाहबाजखाँ की दलीलें, और धमकियाँ भी, सुनते रहे, पर उनके पास केवल एक ही जवाब था—मुझे समझाने के लिए स्वयं अकबरशाह को आना पड़ेगा।

'हुजूर का हुक्म हो तो खुद बादशाह सलामत भी तशरीफ ला सकते हैं। आपके इशारे की देर है। इजाजत हो तो मैं मुलाकात का बन्दोबस्त करूँ।'

अकस्मात् समीप की एक गुफा से किसी बालिका के रुदन का स्वर सुनाई दिया। सैकड़ों लड़ाइयों में अनेक शत्रुओं का संहार करनेवाले वीर महाराणा बच्चों का रोना सह नहीं सकते थे। किसी भी बालक को रोते देख उनका हृदय करुणा से विगलित हो जाता था। वह उठ खड़े हुए और बालिका के रोने के कारण का पता लगाने के लिए उधर चले गये। लड़की ने अपनी सिसकियों के बीच बताया कि वह सो गई थी और उसके हिस्से की जो रोटी ढाँककर रखी गई थी उसे बनबिलाव उठा ले गया। दूसरी रोटी तैयार नहीं थी और उसे भूख बड़ी जोर की लगी थी इसी लिए वह रो रही थी। प्रताप सुनते ही समझ गये कि नये सिरे से रोटी बनाने के लिए आटा नहीं होगा। उधर यद्यपि भील-बालाएँ घास की जड़ों का आटा तैयार करने में लग गई थीं, परन्तु बच्चों की भूख बड़ी प्रबल होती है और वे सब सह सकते हैं, केवल भूख उनसे नहीं सही जाती। राणा की वह लड़की चीख-चीखकर रोती रही। यह देखकर राणा का हृदय दुःख से भर आया और उन्होंने एक लम्बी साँस ली। उनके मन में विचार आया कि इस भाँति बच्चों को भूख से तड़पाने का मुझे क्या अधिकार है ? मुगल सेनापति यहीं है, क्यों न उसके हाथ सन्धि का प्रस्ताव भेज दूं ?

लड़की अब भी रो रही थी। प्रताप ने जोर से सिर हिलाकर अप

से मुक्ति पायी और उसे उठाकर गुफा से बाहर ले आये और बहलाने लगे—रो मत बेटी, अभी रोटी बन जायेगी। देखो, वह फल लगा है। हम उसे तोड़ेंगे। मेरी बेटी उसे खायेगी। हम जीतेंगे, महलों में रहने चलेंगे....

लेकिन लड़की रोती ही रही। वह इस समय रोटी चाहती थी। उसे न फल में दिलचस्पी थी, न जीत में और न महलों में।

इस पहाड़ी के चारों ओर तीन-चार दिनों से युद्ध हो रहा था और भोजन की समस्या ने बहुत ही विकट रूप धारण कर लिया था। वयस्कों को तो पहले भी कई बार दिन-दिन-भर अन्न के अभाव में निराहार रहना पड़ा था, लेकिन इस भाँति बच्चों के भूख से बिलखने की कभी नोबत नहीं आई थी। मुगलों का घेरा बढ़ता जा रहा था। उन्होंने प्रताप और उनके सभी साथियों को सीमावर्ती पहाड़ों की ओर खदेड़ दिया था। हालत यहाँ तक आ पहुँची थी कि राजपरिवार के सदस्यों को और खासतौर पर बच्चों को बड़े-बड़े टोकरों में रखकर भील युवतियाँ उठा ले जातीं और किसी सुरक्षित जगह में छिपा आती थीं। एक दिन में पाँच-पाँच बार परोसी हुई पत्तलें छोड़कर भागना पड़ता था; लेकिन राणा का हृदय इन सभी आपदाओं में अडिग बना रहा, आक्रान्ताओं के प्रतिरोध का उनका निश्चय दृढ़तर ही होता गया। परन्तु आज छोटी बच्ची को एक सूखी रोटी के अभाव में इस तरह बिलखते देखकर उनका लौह-निश्चय भी डगमगा गया।

राणा का यह मनोमन्थन और राजपरिवार की भुखमरी शाहबाजखाँ से छिपी न रही। ऐसे संकट में भी शत्रु-सैनिकों का आतिथ्य करने की उदारता ने उसे बड़ा प्रभावित किया, सच्चे मन से राणा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए उसने कहा—मैं इस मेहमानवाजी के लिए सच्चे दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ।

'किस लिए? मैं आपके यहाँ आता तो क्या आप मेरा सत्कार न करते?'

'कह नहीं सकता, लेकिन अब तो यही इल्तिजा है कि आप हमारे सही मायनों में मेहमान बनें।'

'वह कैसे?'

'आपकी और शहन्शाह की मुलाकात का मैं जल्दी ही बन्दोबस्त करता हूँ।'

'यही ? मुलाकात या तो लड़ाई के मैदान में हो सकती है या दोस्ती के वाता-

कह उठ

'शहन्शाह के साथ दोस्ती करने में आपको क्या एतराज है ?'

'एतराज ? एतराज तो कुछ भी नहीं। मैं उन्हें अपना बुजुर्ग दोस्त मानने को हमेशा तैयार हूँ। मेरा एतराज सिर्फ मेवाड़ पर उनके हमले से है।'

'आपको यह खबर किये देता हूँ कि मुगल फौज ने इस पहाड़ी को देख लिया है। आपको यहाँ से जल्दी ही चले जाना चाहिए। आज रात ही हमला होगा।'

'नहीं, मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा। यहाँ से जाने का अर्थ है मेवाड़ से ही चले जाना। मुगल सेना कभी भी क्यों न आये, हम मुकाबले के लिए तैयार हैं।' प्रताप ने कहा।

'इस बार राजा साहब मानसिंहजी अगुआ होकर आ रहे हैं। थोड़ी-सी गफलत हो गई इसलिए हम उनसे जुदा पड़ गये, वरना साथ ही आते।'

'उनसे कह दीजिएगा कि मैं अपनी सेना के आगे ही रहूँगा और उनका स्वागत करने के लिए तैयार हूँ।'

'राणा साहब, मैं फिर दरख्वास्त करता हूँ कि आप मुगल सल्तनत के दोस्त बन जाइए। आपकी इमदाद पाकर मुगल झण्डा सारी दुनिया में फहरा उठेगा।'

'मुगल सल्तनत को भगवान का राज्य बनाइए तभी उसका झण्डा सारी दुनिया में फहरा सकता है।' राणा ने यह कहा और एक भील-बाला आकर बच्ची को महाराणा की गोद से ले गई। उसके लिए रोटी तैयार हो गई थी।

मुगल सैनिक पहाड़ी से उतरकर चले गये। राणाजी बैठे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की ओर देखते रहे। मेवाड़ ने अकबर का ऐसा क्या बिगाड़ा है कि वह उसकी स्वतंत्र आत्मा को घाटियों और कन्दराओं में भी शान्ति से पड़ा नहीं रहने देना चाहता ? क्या उसकी अधीनता स्वीकार करनी ही होगी ? लेकिन अधीनता से मौत क्या बुरा है ? मौत ? ....परन्तु झालाराणा तो मरते-मरते शपथ दे गये हैं कि महाराणा मरेंगे नहीं, मेवाड़ के लिए अपने-आपको जीवित रखेंगे।....परन्तु अपने ही बच्चों को भूख से बिलखते हुए देखने की अपेक्षा अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेना क्या बुरा है....

प्रताप ने झटके से सिर हिलाया। नीचे पड़ा एक पत्थर उठाकर उन्होंने उसे जोर से घाटी में फेंका। पत्थर बहुत दूर जाकर गिरा। जहाँ पत्थर गिरा था वहीं, समीप की एक झाड़ी से शेर निकला और दूसरी ओर चला गया।

प्रताप ने सोचा, यह निर्बलता मेरे मन में क्यों आई? जब शेर इन झाड़ियों में जीवित रह सकता है तो मैं क्यों नहीं रह सकता और क्यों विजय प्राप्त नहीं कर सकता?

वह जोर से हुंकार उठे। उनकी उस हुंकार को सुनकर चारों ओर से कई नर-नारी और सैनिक निकल आये और उनको घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने सबको सचेत करते हुए कहा—आज रात मानसिंह सेना लेकर आक्रमण करने के लिए आ रहा है। सब होशियार हो जायें।

उसी रात, उस पहाड़ी पर घमासान लड़ाई हुई।

:: ३ ::

अकबर का दरबार आज आनन्द मना रहा था। जो मेवाड़ कभी झुका नहीं था आज वहाँ से शुभ समाचार आये थे। दरबारी उन समाचारों के सम्बन्ध में भाँति-भाँति के अनुमान लगा रहे थे। कोई कहता था कि प्रताप पकड़ा गया, कोई कहता था कि प्रताप मारा गया, कोई कहता था कि उसने अधीनता स्वीकार कर ली। सही बात तो किसी को मालूम नहीं थी पर इतना अवश्य था कि समाचार शुभ थे और इसी लिए आज आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था।

अकबर के आते ही जलसा शुरू हो गया। अकबर के दरबार के रत्नों में केवल योद्धा और राजनीतिज्ञ ही नहीं, कलाकार भी थे। देश के चुने हुए संगीत-कारों, वादकों, चित्रकारों, नर्तकों और धर्माचार्यों को उसने अपने दरबार में स्थान दिया था। उसने चुन-चुनकर नर-रत्नों को अपने यहाँ इकट्ठा किया था, फिर वह नर-रत्न कवि हों चाहे योद्धा। अपने दरबारियों का अभिवादन स्वीकार करने के पश्चात् मूल्यवान सिंहासन पर बैठे हुए शहन्शाह अकबर ने यह घोषणा की कि मुगलों के दुश्मन महाराणा प्रताप ने शहन्शाह के नाम दोस्ती का सन्देश भेजा है।

बादशाह की यह घोषणा सुनते ही सारा दरबार हर्ष-विभोर हो उठा। जिस समाचार के लिए लोग वर्षों से तरस रहे थे आज वह सत्य हो गया। अब सारे हिन्दुस्तान में अकबर का साम्राज्य स्थापित हो गया। कहीं एक बित्ता जमीन भी साम्राज्य के बाहर नहीं रही।

अकबर ने बड़ी शान से अपने दरबारियों के समक्ष यह वक्तव्य दिया—मा-

बदौलत मुगल सल्तनत को सारे हिन्द में इसी लिए तो फैलाना चाहते हैं कि मुल्क के सभी हिस्से आबाद हों, मिल-जुलकर रहें और बराबरी का दर्जा हासिल करें।

अकबर का यह खयाल दुरुस्त ही था। यदि राजपूत राजाओं में भी अकबर के जितनी समझ, उदारता और विद्वत्ता होती तो भारतवर्ष में बहुत पहले ही चक्रवर्ती शासन की स्थापना हो जाती। उस मध्ययुगीन भारत में युद्धों के द्वारा ही भारत को एक किया जा सकता था। युद्धों द्वारा प्राप्त विजय के द्वारा ही अकबर ने ईरान से अराकान तक का प्रदेश और इधर काश्मीर से लेकर थाना के समुद्री किनारे तक का विस्तृत भूभाग अपने अधिकार में किया था और वहाँ सुशासन और सुव्यवस्था स्थापित की थी। एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत सुव्यवस्थित भारत में ही व्यापार और वाणिज्य का विकास और कृषि की उन्नति सम्भव थी। तभी भारत के विभिन्न प्रदेशों के निवासी मिल-जुलकर शान्तिपूर्वक रह और अपनी कलाओं का विकास कर सकते थे। अकबर-जैसा प्रतिभा-सम्पन्न शासक छोटे-से राज्य का स्वामी बनकर सन्तुष्ट नहीं रह सकता था। उसकी महत्वाकांक्षाएँ एक केन्द्रीय विशाल भारत साम्राज्य के बनने पर ही फलीभूत हो सकती थीं। छोटा-सा मेवाड़ उसकी महत्वाकांक्षाओं के मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ा था। आज वह रोड़ा भी हट गया था। अकबर को लग रहा था जैसे उसकी बिगड़ी बाजी बन गई, और जिस मुगल तख्त पर वह बैठा था वह जमीन से मानो एक हाथ ऊँचा उठ गया।

अकबर के सभी दरबारी इस राय पर एकमत थे कि प्रताप को शहन्शाह के दरबार में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाना चाहिए। सन्धि की शर्तें इतनी उदार होनी चाहिए कि प्रताप को भूलकर भी मुगल-शासन पराया न लगे। फिर यह चर्चा भी होने लगी कि प्रताप को भेंट में देने के लिए क्या-क्या चीजें भेजनी चाहिए। अभी चर्चा हो ही रही थी कि अकस्मात् अकबर के दरबारी चारण ने अपना सिर झुका लिया। सब लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। आज के शुभ अवसर पर तो चारण-कवि को कोयल की भाँति कूकना चाहिए था। पर वह मौन था, मौन ही रहा, उसने अपना सिर भी झुका लिया था।

'कविराज, माबदौलत जानना चाहते हैं कि आज आप चुप क्यों हैं?' अकबर ने पूछा।

'अन्नदाता, पता नहीं, जाने क्यों आज मेरी वाणी की भगवती मूर्च्छित है।' कवि ने कहा।

'क्यों ?'

'या तो जो समाचार मिले हैं वे झूठे हैं या प्रताप का पतन भगवती वाणीदेवी को इष्ट नहीं। कारण जो भी हो मेरी प्रतिभा अनुप्राणित नहीं हो पा रही है।'

और कोई सुल्तान होता तो इस गुस्ताखी के लिए चारण को शूली टँगवा देता या हाथी के पाँव-तले कुचलवा देता। लेकिन अकबर के स्वभाव की यह विशेषता थी कि वह अप्रिय और अपने प्रतिकूल बातों को भी शान्त रहकर सुन सकता था। विरोध में या प्रतिकूल बात सुनकर भी सहसा उत्तेजित न होने का, महान विजेताओं का, जो सद्‌गुण होता है उसे अकबर ने पूरी तरह विकसित कर लिया था। उसने शान्त स्वर में कहा—नहीं कविराज, खबर झूठी नहीं है। यह रहा बाला राणा की तरफ से आया हुआ सुलह का खरीता। इस पर [illegible] की हुई है। उन्होंने माबदौलत को शहन्शाहे हिन्द कहकर अपनी इबारत शुरू की है। हुकूमते मुगलिया की फैयाजी और दरियादिली की तारीफ करते हुए हमसे दोस्ती की ख्वाहिश का इजहार किया है। सिपहसालार शाहबाजखाँ ने भी इस खरीते के साथ एक खत भेजा है। उन्होंने तहरीर की है कि इन दिनों राणा के बाल-बच्चे गिजा की किल्लत में मुब्तिला, दिक और परेशान हैं। लीजिए, आप खुद दोनो खतूतों को पढ़ लीजिए।

यह कहकर अकबर ने राणा प्रताप का पत्र कविराज के हाथ में दे दिया। कविराज के बाद सब दरबारियों ने भी उसे पढ़ा। बात विचित्र थी, अविश्वसनीय थी; लेकिन सच भी थी। वास्तव में राणा प्रताप ने अकबर के साथ सन्धि की अभिलाषा व्यक्त की थी। पढ़ने के बाद सभी ने उस पत्र को स्वीकार कर लिया। नहीं किया तो अकेले राठौर राजा पृथ्वीसिंह ने। पत्र पढ़कर भी उन्हें उस पर विश्वास न हुआ। पूरा पत्र पढ़कर उसने अपना सिर हिला दिया।

यह देखकर अकबर ने कहा—क्यों राजा साहब, आपने सिर क्यों हिला दिया? आप तो हमेशा से बाला राणा की तारीफ और हिमायत ही करते आये हैं। खत आपने पढ़ा? साफ ही तो लिखा है कि मेवाड़ हमारी दोस्ती का ख्वाहिशमन्द है, और हमारी मातहती कबूल करता है।

'नहीं, गरीबपरवर, मुझे विश्वास नहीं होता। यह पत्र जाली मालूम पड़ता

है। और अगर बनावटी न भी हो तो इसकी इबारत से यह मतलब तो कभी नहीं निकलता कि मेवाड़ का महाराणा हमारी गुलामी चाहता है।'

पृथ्वीराज राठौर की यह बात सुनते ही सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। दरबारी एक-दूसरे का मुह देखने लगे। लेकिन बीरबल और टोडरमल ने पृथ्वीराज की बात का समर्थन किया। उन्होंने कहा—इस एक पत्र से यह अर्थ लगाना कि राणा दोस्ती चाहता है या दोस्ती हो ही गई है, गलत होगा। हमें अपनी ओर से शर्तें भेजकर इत्मीनान कर लेना चाहिए।

सभी दरबारियों और साथ ही अकबर को भी विचारमग्न देखकर पृथ्वीराज ने कहा—जहाँपनाह, अगर इजाजत हो तो मैं महाराणा को पत्र लिखकर सच्ची बात का पता लगा लूं। हुजूर ने देखा ही होगा कि इस खत पर राणाजी के दस्तखत नहीं है। केवल मेवाड़ की मोहर लगी हुई है। मोहर कोई भी लगा सकता है। मैं तो उसी पत्र को सच मानूंगा जिस पर मेवाड़ की मोहर नहीं, महाराणा के अपने दस्तखत होंगे।

अकबर को पृथ्वीराज का यह प्रस्ताव बहुत ही पसन्द आया। दरबारियों ने भी इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। अकबर को अपनी उदारता प्रदर्शित करने का एक अवसर मिल गया। उसने पृथ्वीराज को सहर्ष इस बात की अनुमति दे दी कि वह महाराणा प्रताप से लिखा-पढ़ी करके वास्तविकता का पता लगाये।

पृथ्वीराज तो यह चाहता ही था। स्वयं अकबर का आश्रित होकर भी उसे महाराणा प्रताप का झुकना या अकबर का आश्रय ग्रहण करना स्वीकार नहीं था। वह चाहता था कि महाराणा जीवन-भर इसी प्रकार बिना झुके अकबर से लड़ते रहें। उसने वीर-रस से ओत-प्रोत एक उद्‌बोधक कविता में महाराणा को पत्र लिखकर पूछा कि क्या हिन्दूकुल का सूर्य भी अकबरी आतंक से त्रस्त होकर मुगलों की अधीनता स्वीकार कर लेगा, अस्त हो जायेगा ?

और अकेला पृथ्वीराज ही नहीं, अकबर के और भी कई हिन्दू दरबारी प्रताप और मेवाड़ को स्वतंत्र देखना चाहते थे। जब सारा हिन्दुस्तान और लगभग सभी राजपूत राजा अकबर के आश्रित हो गये थे तब अकेला मेवाड़ और उसका राणा ही तो हिन्दुओं की स्वतंत्रता का प्रतीक बना लड़ रहा था। यद्यपि अकबर ने हिन्दुओं पर और हिन्दू धर्म पर कोई दमन नहीं किया था, उन्हें गले ही

लगाया था, परन्तु हिन्दुओं की वीरता का उसने विनाश किया था, उसे ख़रीद लिया था। इससे हिन्दुओं का मन कुछ खट्टा अवश्य हो गया था और सभी को यही लगता था कि हिन्दुत्व पराजित हो गया है। ऐसे सभी पराजितों के लिए महाराणा प्रताप की स्वतंत्रता बहुत बड़ा आश्वासन था। जो हिन्दुत्व सर्वत्र पराजित हुआ उसकी राजनैतिक और सामरिक पराजय अभी तक मेवाड़ में नहीं होने पायी थी। इसीलिए अकबर के अधिकांश हिन्दू दरबारी मेवाड़ को आदर की दृष्टि से देखते और उसकी स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। फिर महाराणा प्रताप ने तो अनेक कष्ट सहकर, यहाँ तक कि अपने बच्चों को भूखों मारकर भी हिन्दुत्व की स्वातंत्र्य-ज्योति को प्रज्वलित रखा था। उस राणा और उसके मेवाड़ का झुकना भला किस हिन्दू को अच्छा लगता, चाहे वह हिन्दू अकबर का दरबारी बन गया हो अथवा बसरा और बगदाद के साथ व्यवसाय-वाणिज्य में लगा हो।

पृथ्वीराज के सन्देशवाहक को प्रताप तक पहुँचने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आखिर वह उन्हे ढूंढ़ता-खोजता पहुँच ही गया। जब वह पहुँचा तो महाराणा एक ऊँचे पहाड़ की चोटी पर अकेले बैठे अपने चारों ओर देख रहे थे। जिस दिन मुगल सेनापति शाहबाजखाँ उनका मेहमान हुआ था उसी रात मानसिंह के भाई जगन्नाथ ने प्रताप को पकड़ने के लिए इसी पहाड़ी पर जबरदस्त हमला किया था। भील और राजपूत सैनिक खोहों और कन्दराओं का आश्रय न ले सकें इसलिए जगन्नाथ ने उस सारे पहाड़ में आग लगा दी थी। लेकिन फिर भी प्रताप पकड़े नहीं जा सके। उलटे जंगल की आग के कारण जगन्नाथ को ही लेने के देने पड़ गये और उसे प्राण बचाने के लिए सेना-सहित उलटे पाँव भागना पड़ा।

इस पहाड़ ने ही प्रताप को बचा लिया था। वह एक चमत्कार ही था। उस पहाड़ में एक बहुत ही गहरी गुफा थी। उसके अन्दर न पानी पहुँच सकता था न आग, और न कोई मनुष्य ही भीतर प्रवेश करने का साहस कर सकता था। प्रताप ने अपने परिवार सहित उसी गुफा में आश्रय लिया। भील युवक और युवतियाँ प्राणों का मोह छोड़कर लड़े। राजपूतों की अपार जन-हानि हुई; परन्तु अन्त में मुगल सैनिकों को लौटना पड़ा। जब आग बुझ गई तो स्वामिभक्त भील निकल आये और उन्होंने राजपरिवार के सभी सदस्यों को टोकरों में बैठ.कर पुनः सबको पहाड़ की चोटी पर पहुँचा दिया। पहाड़ के दुर्गम मार्गों पर दौड़ते हुए चढ़ जाना भीलों के मन

हँसी-खेल था। जहाँ मार्ग न होता वहाँ भी वे मार्ग बना लेते। अँधेरी-गहरी गुफाओं में निडरतापूर्वक उतर जाते। रस्सियों के झूले बनाकर एक चोटी से दूसरी चोटी पर बड़ी सरलता से पहुँच जाते थे।

जब पृथ्वीराज का सन्देशवाहक पहुँचा तो महाराणा प्रताप उसी पहाड़ की चोटी पर बैठे विचारों में मग्न अपने चारों ओर देख रहे थे। बल्ल और जोध इन दिनों राणाजी के अंगरक्षक थे और उनका साथ एक घड़ी-भर के लिए भी नहीं छोड़ते थे। साथ रहते हुए भी वे हमेशा प्रताप से इतनी दूर पर रहते थे जिसमें राणाजी के एकान्त में बाधा न पड़ने पाये और वह शान्तिपूर्वक अपनी समस्याओं पर सोच सकें। भीलों के लिए वे दिन बड़े ही गर्व और गौरव के थे। मेवाड़पति की रक्षा करने का सौभाग्य उन्हें उपलब्ध था। भील जनता सदा ही मेवाड़ के राणाओं की दुर्दिनों में रक्षा करती आई थी। बापा रावल से लेकर राणा प्रताप तक कई सिसोदिया राणाओं को भीलों ने अपने बीच रखा और उनकी सफलतापूर्वक रक्षा की थी।

पृथ्वीराज के सन्देशवाहक ने मेवाड़ के महाराणा के उस निवासस्थान को देखा तो उसका दिल रो पड़ा। दुर्गम पहाड़ों के बीच मेवाड़ का वह राजर्षि स्वाधीनता की तपस्या कर रहा था। जब जोध उसे राणा प्रताप के समीप लाया तो उन्होंने हँसकर कहा—क्यों राठौर सरदार, आपको यहाँ तक पहुँचने में कष्ट तो बहुत हुआ होगा?

'महाराज मेरे कष्ट के बारे में क्या पूछते हैं! मैं तो यही सोचकर चकित हूँ कि यहाँ रहनेवाले हाड़-मांस के बने हैं या लोहे के।'

'जब चारों ओर मृत्यु गरज रही हो और फिर भी जीवित रहना चाहें तो हाड़-मांस को लोहे का बनाना पड़ता है।'

'अब मेरी समझ में आया कि हिन्दूकुल-सूर्य महाराणा ने कितने कष्ट सहने के बाद वह पत्र भेजा है।'

'पत्र? मैंने भेजा है? पृथ्वीराजजी के नाम? नहीं भाई, मैंने तो कोई पत्र नहीं भेजा।'

'पृथ्वीराजजी के नाम नहीं, शहन्शाह अकबर के नाम; वह पत्र जिसमें आपने मुगलों की अधीनता स्वीकार करने की बात....'

'मैंने पत्र लिखा? राठौर सरदार, आप स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं? मैं मुगलों

की अधीनता स्वीकार करूँगा ? सूर्य चाहे पूर्व में उगना छोड़ दे, परन्तु उनका यह वंशज प्रताप भगवान एकलिंगजी को छोड़ और किसी की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता।' प्रताप ने कहा और उनके चेहरे पर खून की लाली दौड़ गई।

'महाराजाधिराज, उधर दिल्ली में तो आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। सब यह सोचकर प्रसन्न हैं कि प्रताप ने अधीनता स्वीकार कर ली। इसी लिए तो मेरे स्वामी महाराज पृथ्वीराजजी ने अपना यह पत्र देकर मुझे आपके चरणों में भेजा है।' सन्देशवाहक ने कहा और पृथ्वीराज का पत्र प्रताप के हाथ में रख दिया। वह राठौर सरदार स्वयं भी महाराणा को पहचानता था।

पृथ्वीराज का पत्र पढ़कर प्रताप का चेहरा और भी लाल हो गया। दो क्षण वह चुप रहे, फिर ठठाकर हँस पड़े और बोले---राठौर, जाकर कहो पृथ्वीराज से कि वह अपनी गरदन ऊँची रखकर और मूछों पर ताव देकर बीच दिल्ली में उच्च स्वर से यह घोषणा करें कि सिसोदिया वंश की कोई कन्या कभी बेगम बाजार में नहीं जायेगी। प्रताप का सिर झुकेगा या तो भगवान एकलिंगजी के चरणों में या कटने के बाद महाकाल के चरणों में। पर यह झूठी बात किसने उड़ा दी ?

राठौर सन्देशवाहक ने राणा को पूरा हाल विस्तारपूर्वक बताया कि किस प्रकार अकबर के दरबार में यह चर्चा जोरों से चल रही है कि जंगल और पहाड़ों में भटक रहे राणा के परिवार को पीने के लिए पानी नहीं मिलता, खाने को रोटी नहीं मिलती, उनके राजकुमार और राजकुमारियाँ टुकड़ों को तरसते हैं और इन आपदाओं से संत्रस्त होकर मेवाड़ के महाराणा ने अकबर की अधीनता स्वीकार करते हुए पत्र लिखा है; उस पत्र पर प्रताप के नाम की मोहर लगी हुई है और सिपहसालार शाहबाजखाँ ने अपने पत्र के साथ उसे अकबर के पास भेजा है, आदि-आदि।

'और यह भी कह देना पृथ्वीराजजी से कि मुझे किसी की दया-माया की आवश्यकता नहीं। मेरे बच्चों पर दया दिखाने का ढोंगकर मुगल युद्ध बन्द करें, यह मुझे एक जन्म तो क्या सौ जन्म भी स्वीकार नहीं। मेवाड़ के आक्रमणकारियों के विरुद्ध म्यान से बाहर निकली हुई मेरी तलवार तभी म्यान में जायेगी जब चित्तौड़ में पहुँचकर मैं भगवान एकलिंगजी की पताका को फहराऊँगा।' महाराणा प्रताप ने पृथ्वीराज के सन्देशवाहक से कहा। फिर उन्होंने जोध को बुलाकर उस सन्देशवाहक को विश्राम करने के लिए अतिथिशाला में भिजवा दिया।

हाँ, अतिथिशाला भी वहीं थी। मेवाड़ का राज्य सिकुड़कर केवल दो पहाड़ियों-भर का रह गया था तो क्या, मेवाड़ का राणा तो अभी विद्यमान था। उससे मिलने के लिए सन्देशवाहक आते थे, शत्रुओं के गुप्तचर कभी पकड़ जाते थे, शत्रु-सेना के सैनिक और सेनानायक घायल होकर राजपूतों के हाथ पड़ जाते थे, और स्वयं राणा के सैनिक भी तो घायल होते थे। इन सब कामों के लिए पहाड़ी की तलहटी में एक कन्दरा निश्चित कर दी गई थी। वह स्थान बड़ा ही शान्त और सुरक्षित था। हरे वृक्षों से आच्छादित उस कन्दरा के समीप ही एक छोटा-सा सरोवर था, जो स्नानागार का काम देता था। कन्दरा के अन्दर बाँस की चटाइयाँ और पुआल के गद्दे बिछे रहते थे। आगन्तुकों और अतिथियों को भी यहीं उतारा जाता था।

जब सन्देशवाहक चला गया और बल्ल तथा राणा अकेले रह गये तो बल्ल ने पूछा—अन्नदाता, यह झूठी खबर किसने उड़ा दी ? और लोगों को इस तरह की झूठी खबरें उड़ाने में क्या मजा आता है ?

'इसे निरा झूठ तो नहीं कहा जा सकता बल्ल !' प्रताप ने गम्भीर होकर कहा।

'क्या मतलब ? बात मेरी समझ में नहीं आई अन्नदाता ! आप ठीक से समझाकर कहिए। यह तो मैं कभी मान ही नहीं सकता कि आपने अकबर के नाम ऐसा पत्र लिखा होगा।'

'लेकिन इस पत्र से मुझे अच्छी शिक्षा मिली बल्ल !'

'वह क्या अन्नदाता ?'

'मन में जो भी विचार उठता है वह मूर्त रूप ग्रहण करता ही है।'

'मेरी जानकारी में तो अन्नदाता ने अकबर की अधीनता स्वीकार करने की बात कभी सोची नहीं।'

'नहीं बल्ल, अपनी दुर्बलता के कुछ क्षणों में ऐसी बात मेरे मन में आई अवश्य थी।'

'अरे ! कब ?'

'जिस दिन सबसे छोटी राजकुमारी को चुप कराने के लिए मेवाड़ के महाराणा के पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं था।'

'अन्नदाता, उसमें आपका क्या दोष ? उसके अपराधी तो हम भील ही हैं।

हमीं अपने अतिथि-धर्म का पालन न कर सके! इस अपराध को मैं....' कहते-कहते बल्ल का गला भर आया।

'उस दिन दुर्बलता ने मुझे आ घेरा था बल्ल! पता नहीं, मेरे पूर्वज क्या सोचते होंगे?'

'पूर्वज तो यही कहते होंगे अन्नदाता, कि सिसोदिया कुल का सच्चा शौर्य-तर्पण करनेवाले एकाकी पुत्र को प्रभु दीर्घायु करें!'

'अब.... यदि सच्चा शौर्य-तर्पण करना है तो वह मेवाड़ में रहकर नहीं हो सकता।'

'यह क्या कह रहे हैं आप? मेवाड़ छोड़कर हम कहाँ जायेंगे?'

'राजस्थान के मरुस्थल को पार कर सिन्धु नदी के किनारे।'

'कारण क्या?'

'कारण यह है बल्ल कि मुगलों की सेना ने एक-एक पहाड़ी को घेर लिया है। केवल यह एक पहाड़ बचा रह गया। इस पर भी अनेक आक्रमण हुए। सुरक्षा के लिए अब हमें इस स्थान को भी छोड़ना होगा। जो सैनिक हम से बिछुड़ गये, वे लौटकर आ न सके और न आ ही सकेंगे! रसद हम तक पहुँच नहीं पाती, मुगल उसे रास्ते में ही रोक देते हैं। अब तक कन्द-मूल का सहारा था, लेकिन वे भी समाप्त हो रहे हैं। मेवाड़ में रहकर मुगलों से लड़ना तो अब हमारे लिए कठिन ही है।'

'लेकिन जब तक हम भील-भीलनी जीवित हैं किसकी मजाल है....'

'कितने ही भील कट मरे! अब भील-बालाएँ भी मरती जा रही हैं। यह मुझसे देखा नहीं जाता बल्ल! औरतों को युद्ध में मरते देखता हूँ तो मेरा हृदय क्रन्दन करने लगता है। स्वाधीनता की रक्षा के लिए क्या नारियों को भी युद्ध की वेदी पर होम दूं? नहीं बल्ल, नहीं....'

'औरतों के आग में होमे जाने की जगह लड़ाई में होमा जाना क्या बुरा है महाराज? मारकर ही हम मरेंगे और हमारी औरतें भी यही करेंगी।'

खिन्न होते हुए भी प्रताप को हँसी आ गई। बात बल्ल की बिलकुल सत्य थी। राजपूत नारियाँ अग्नि में जल मरती थीं। यदि वे युद्ध में शत्रु का सामना करने के लिए सन्नद्ध हो जातीं तो निस्सन्देह अधिक अच्छा काम करतीं। लेकिन सैनिक की

युद्ध में सदैव मृत्यु तो होती नहीं, कभी बन्दी भी कर लिया जाता है। फिर राजपूत नारियाँ अग्नि-स्नान अथवा जौहर तभी करती थीं जब राजपूत केसरिया बाना पहिनकर लड़ाई में जाते; और केसरिया बाना तभी धारण किया जाता था जब जीतने और जीवित रहने की सभी आशाएँ समाप्त हो जाती थीं।

प्रताप ने जौहर-व्रत और केसरिया बाना की नीति को अभी अपनाया नहीं था। मेवाड़ को पुनः जीतने की उनकी आशाएँ अभी समाप्त नहीं हुई थीं। सफलता की आशा उन्हें अब भी थी। मेवाड़ को पुनः जीते बिना वह मर भी नहीं सकते थे। भालाराणा ने उन्हें यही शपथ अपने अन्त समय में दी थी। लेकिन अब स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। मुगल मेवाड़ को जीतते हुए भील प्रदेश में भी आ पहुँचे थे और वहाँ भी स्थान-स्थान पर उन्होंने अपनी चौकियाँ स्थापित कर दी थीं। भील बड़ी संख्या में मारे जा चुके थे और उनकी शक्ति बहुत कम हो गई थी। ऐसी स्थिति में और अधिक भीलों को मरवाना प्रताप के मन पाप ही था।

'देखो बल्ल! तुम सब तो यहाँ हो ही। बाद में....' उन्होंने बल्ल को अपनी योजना विस्तारपूर्वक समझाते हुए कहा।

'नहीं महाराज, मैं तो आपके साथ ही रहूँगा....जहाँ आप जायेंगे, साथ चलूंगा....' बल्ल को ऐसी कोई योजना स्वीकार नहीं थी जिसमें उसे महाराणा से पृथक होना पड़े।

'न रानीजी मुझे छोड़ती हैं और न तुम!' प्रताप ने कुछ खीझकर कहा।

उनकी योजना कुछ समय के लिए मेवाड़ से बाहर चले जाने की थी! मेवाड़ में रहकर तो अब वह अधिक कुछ कर नहीं सकते थे। वहाँ रहने की सारी उपयोगिता ही समाप्त हो गई थी। यदि कुछ वर्ष के लिए मेवाड़ छोड़ दें तो हो सकता है कि प्रजा को शान्ति मिले, धन-सम्पन्नता बढ़े, और जन-संख्या में भी वृद्धि हो। तब तक आज के किशोर युवक हो जायेंगे और सेना के लिए सैनिकों की वर्तमान कमी इस प्रकार दूर हो सकेगी। मेवाड़ से बाहर रहने का एक लाभ यह भी होगा कि मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए अधिक दक्षता से योजनाएँ बनाई जा सकेंगी। उनके सभी सरदार उनसे बिछुड़ गये थे और कौन कहाँ है और क्या कर रहा है, इसका इधर बहुत दिनों से उन्हें कोई समाचार नहीं मिला था। भामाशाह का भी, जो मालवा की ओर निकल गया था और सीमा पर मुगलों को परेशान कर रहा था,

कोई समाचार नहीं था। यहाँ तक कि राणा को स्वयं अपने पुत्र अमरसिंह के बारे में भी कुछ ज्ञात नहीं था। उस वीर पुत्र ने भी अपने पिता की भाँति यह प्रतिज्ञा की थी कि मेवाड़ के सभी दुर्गों को पुनः जीतने के पश्चात् ही पिता को अपना मुंह दिखायेगा।

ऐसी विषम स्थिति में राणा को भगवान रामचन्द्र का वनवास, पांडवों की परिक्रमा और हुमायूं का राज्य विसर्जन याद आया। प्रतिकूल परिस्थिति में हुमायूं ने भारत का राज्य छोड़ दिया था, स्थिति अनुकूल होने पर पुनः लौट आया और मुगल साम्राज्य की स्थापना की। राणा प्रताप भी इधर यही सोचने लगे थे कि मेवाड़ भूमि को कुछ समय के लिए छोड़ देना चाहिए, कुछ दिनों राजा-विहीन रहने के बाद ही इस धरती के भाग्य फिर सकते हैं। आज उन्होंने अपने इस विचार को कार्यान्वित करने का निश्चय कर लिया था।

जब रानीजी ने सुना तो उस साध्वी नारी ने कहा—मैं अकेले तो आपको मेवाड़ से बाहर जाने नहीं दूंगी। जहाँ भी जायेंगे, साथ चलूंगी।

'संकटों का भी तो विचार कर लो!'

'आपने कभी संकटों का विचार किया है कि मैं ही करूँगी ?'

'लेकिन मार्ग में निर्जन मरुस्थल हैं, समुद्र-जैसी नदी है....'

'तो क्या हुआ ? आज पहाड़ नापते हैं, कल मरुस्थल पार करेंगे। बालू पत्थर से तो मुलायम ही होती है।'

'मेवाड़ छोड़ने को मन राजी भी होगा ?'

'नाथ, मेरा मेवाड़ तो वहीं है जहाँ आप हैं।'

और राणा की वह सहगामिनी किसी भी शर्त पर उनका साथ छोड़ने को तैयार न हुई।

रीति के अनुसार महाराणा प्रताप ने राठौर राजा पृथ्वीसिंह के पत्र का उत्तर दिया। उसमें उन्होंने लिखा कि प्रताप कभी सन्धि की याचना नहीं कर सकता; इतना ही नहीं, प्रताप कभी मेवाड़ पर विदेशी सत्ता को स्वीकार नहीं करेगा, उसकी म्यान से निकली तलवार अभी म्यान से बाहर ही है और स्वतंत्र मेवाड़ की पताका अब भी फहरा रही है और प्रताप के जीते-जी फहराती रहेगी।

पत्र पढ़कर सन्देशवाहक डोल उठा। यही तो वह चाहता था! राणा ने उसका

उचित आदर-सत्कार भी किया। स्वयं अभावग्रस्त होते हुए भी उसे राज-रीत्यानुसार सिरोपा और भेंट-पुरस्कार प्रदान किये। सन्देशवाहक ने महाराणा के गुण गाते हुए वहाँ से प्रस्थान किया।

सन्देशवाहक तो चला गया, परन्तु वह सारी रात राणा को नींद न आई। बड़ी देर तक वह पहाड़ की चोटी पर व्यग्र घूमते रहे। अन्त में गुफा में आकर सो गये। लेकिन चैन नहीं था। हृदय में ज्वालामुखी सुलग रहा था! मेवाड़ छोड़ने का निश्चय पक्का हो चुका था, उसे कार्यान्वित करने जा रहे थे, परन्तु मेवाड़ की ममता छोड़ती न थी, जाने की घड़ी जैसे-जैसे निकट आती जाती थी, राणा का हृदय विकल होता जाता था।

उन्हें यह डर नहीं था कि लोग कहेंगे, मेवाड़ छोड़कर भाग गया। इस लांछन का उत्तर तो वह मेवाड़ को पुनः जीतकर दे लेंगे। लेकिन मन में यही दुविधा थी कि क्या मेवाड़ से बाहर रहकर उसकी सच्ची सेवा की जा सकेगी? सेना समाप्त हो गई थी, सैनिक बिखर गये थे, सभी साथी मौत के घाट उतर चुके थे। थोड़े-से विश्वासपात्र भील, राणा-परिवार और केवल दो पहाड़ियाँ रह गई थीं। ऐसी स्थिति में केवल दो-तीन महीने और निकाले जा सकते थे। उसके बाद? या तो पकड़े जायें ....लेकिन नहीं, जीवित तो वह कभी पकड़े नहीं जायेंगे। मरना सरल था, लेकिन मृत्यु उनके लिए थी नहीं; उन्हें तो मेवाड़ की स्वतंत्रता के हेतु जीवित रहना और लड़ते रहना था। मरकर कीर्ति पाना सरल था, परन्तु जीवित रहकर सफलता प्राप्त करना बहुत कठिन था। राणा को इसी कठिनाइयों के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलना था। क्योंकि आज मरने से अधिक वीरता जीवित रहकर मेवाड़ के लिए लड़ते रहने में थी।

मृत्यु से उन्हें कोई डर नहीं था। परन्तु क्या मेवाड़ से बाहर जाकर भी उनका उद्देश्य सिद्ध होगा? यदि न हुआ? लेकिन होगा क्यों नहीं। सिन्ध, कच्छ और काठियावाड़ के राजपूतों ने स्वयं निमंत्रण दिया है कि राणा के वहाँ पहुँचने की देर है, फिर तो स्वाधीनता के प्रेमी रणबाँकुरों की सेना सज जायेगी। उस सेना को लेकर मेवाड़ लौटते देर ही क्या लगेगी! तो प्रयत्न करने में हानि ही क्या है? यदि निष्फलता ही हाथ रही तो लौटकर मेवाड़ आने और यहाँ की मिट्टी में मिल जाने से कौन रोक सकता है?

तो मेवाड़ की स्वतंत्रता और सुख के लिए मेवाड़ को छोड़ना ही उचित होगा !

वैसे कभी-कभी उन्हें जोधपुर, जयपुर और बीकानेर के राज्यों और राजाओं की भी याद आ जाती थी। उन लोगों ने व्यावहारिक मार्ग ग्रहण किया था। अकबर-जैसे प्रबल शत्रु का एक बार सामना किया और हार गये तो उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस तरह अपने राज्य बचाये, अपनी प्रजा का धर्म बचाया और स्वयं भी मुगल दरबार में आदर-मान प्राप्त किया। बदले में राज-परिवार की एक कन्या तो उन्हें अवश्य शाही परिवार में भेजनी पड़ी, परन्तु केवल एक कन्या देकर उन्होंने कितना कुछ बचा लिया। लेकिन स्वाधीनता के मतवालों को व्यावहारिकता से क्या मतलब ? कौन नर-नाहर लीक पर चला है ? सायर, सिंह और सपूत तो सदैव ही लीक छोड़कर चलते आये हैं।

कभी ऐसा दुर्बल विचार मन में आ ही जाता तो प्रताप को लगता मानो भयंकर पाप हो गया। वह सोचते, राज्य पर मेरा अधिकार ही क्या ? वह तो देवार्पित है, देवता का दिया हुआ है, उसे मैं किसी को दे ही कैसे सकता हूँ ! और फिर बदले में सिसौदिया कन्या को शाही हरम में भेजना ? इन मूल्यों पर प्राप्त सम्पन्नता तो भिखमंगों की सम्पन्नता होगी। दूसरे के सहारे मिली हुई शान्ति रोगी की शान्ति होती है। आत्मा के ऐसे पतन से तो शारीरिक मृत्यु हजार गुना भली। मेरा उद्देश्य है मेवाड़ की स्वतंत्रता और उसकी रक्षा, स्वतंत्रता छिन जाने पर उसे पुनः प्राप्त करना। हल्दीघाटी की लड़ाई से वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, बाद की लड़ाइयों में भी सफलता नहीं मिली और आज स्थिति यह हो गई है कि किसी भी क्षण मुगल सैनिक आक्रमण कर के मुझे या मेरे परिवार के व्यक्तियों को बन्दी बना सकते हैं। यदि मैं या परिवार का कोई भी सदस्य पकड़ ही गये तो जीत की कोई आशा नहीं रह जायेगी। इससे तो अच्छा है मेवाड़ का परित्याग कर देना।

महाराणा के मेवाड़-परित्याग की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। बढ़ते हुए मुगलों को रोकने के लिए भील वीर प्राणों की बाजी लगाकर डट गये। वे इतनी वीरता से लड़े कि मुगलों का आगे बढ़ना रुक गया। लेकिन सभी भील वीरों के हृदय भारी थे। उनके नेत्रों से अश्रुधाराएँ बह रही थीं। हाय, उनके राणा आज उन्हीं को नहीं, प्यारी मेवाड़-भूमि को भी छोड़कर चले जा रहे थे !

राणा-परिवार के सदस्यों के लिए घोड़े आ गये। महाराणा, महारानी और

राज-परिवार के छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों ने भील नारियों को प्रणाम कर उनके आशीर्वाद प्राप्त किये।

'जिस दिन राणाजी लौट आयेंगे, मैं सारे भीलवाड़े की कुँवारी कन्याओं को भोजन कराऊँगी।' एक भील नारी ने कहा।

'और मैं तो मेवाड़ के सभी ब्राह्मणों को जीमाऊँगी।'

'मैं उस दिन माता चामुण्डा का मन्दिर पक्का करवा दूंगी।'

इस प्रकार भील-बालाएँ मनौतियाँ मान रहीं थीं। तभी एक भील बुढ़िया ने सभी को चमत्कृत और विस्मित करते हुए कहा—देखना, राणाजी एक ही रात में लौट आयेंगे!

'यह कैसे मा?' राणाजी ने हँसते हुए पूछा।

'यह तो मैं नहीं जानती मेरे बाप! लेकिन मुझे सपने में शीकोतरी माता ने दर्शन दिये हैं और जब भी शीकोतरी माता के दर्शन होते हैं तो मन की मुराद जरूर पूरी होती है।'

'अरी बहिना, शकुन तो मुझे भी ऐसे ही हुए हैं। मेरे दाहिनी ओर सियार बोला और बाईं ओर उल्लू। मुझे यकीन है कि राणाजी शुभ समाचार सुनेंगे और जल्दी ही घोड़े से उतरेंगे।' एक दूसरी भील बुढ़िया ने अपनी आँखें मिचकाते हुए कहा।

राणा-परिवार के घोड़े चलने लगे। वहाँ उपस्थित सभी भील नर-नारियों के नेत्रों से आँसू की धाराएँ बहने लगीं। महारानी ने सभी को आश्वासन देते हुए कहा—महलों से भी अधिक सुख और आराम मुझे यहाँ आप लोगों के सहवास में मिला। लौटकर मैं सबसे पहले यहीं आऊँगी।

बल्ल और जोध आठों आयुध बाँधे घोड़ों की कतार के पीछे हो लिये। दूर भील योद्धा अब भी मुगल सैनिकों से लड़ रहे थे और उनकी बाढ़ को रोके हुए थे। लड़ाई की आवाजें यहाँ तक सुनाई दे रही थीं। मुस्लिम अभी तक पहुँच नहीं पाये थे। सभी को विश्वास था कि जब तक राणाजी पहाड़ से उतरकर सीमा को पार नहीं कर जायेंगे, शत्रु पहुँच नहीं पायेंगे।

राणाजी के काफिले के घोड़े कभी तेज और कभी धीमी गति से, कभी ऊपर चढ़ते और कभी नीचे उतरते हुए चले जा रहे थे। जब तक घोड़े दिखते रहे सभी

भील नारियाँ उनकी ओर टक लगाये देखती रहीं। जब जानेवाले जंगल की ओट हो गये तो देखनेवालों की आँखों से आँसुओं की धाराएँ पुनः द्विगुणित वेग से बहने लगीं।

समीप ही, पहाड़ की एक कन्दरा से, घंटी का स्वर सुनाई दिया। देवता की पूजा में संलग्न गौतमी आरती उतार रही थी। इधर वह रात-दिन देव-पूजा में ही लगी रहती थी। वह राणाजी के साथ मेवाड़ छोड़ने को तैयार न हुई।

उसने कहा—मैं मेवाड़ नहीं छोड़ूंगी; इस गुफा को भी नहीं छोड़ूंगी। यहाँ तो मेरे देवता का मन्दिर स्थापित हुआ है।

मुसलमान आकर देवता को तोड़ डालेंगे, ऐसा कोई भय, किसी तरह की आशंका उसके मन में नहीं थी।

सभी भील नारियाँ उस मधुर घंटी की टनटनाहट का अनुसरण करती हुई गौतमी के भगवान के दर्शनों के लिए गुफा की ओर चली गई।

::४::

देवराज का सिर काटकर, महाराणा के चरणों में समर्पित कर देने के बाद गौतमी ने अपना सारा ध्यान कृष्ण की भक्ति में लगा दिया। उसका उद्विग्न मन कृष्ण के चरणारविन्दों में शान्ति खोजने लगा। कृष्ण की भक्त तो वह बचपन से ही थी। कन्हैयाजीवन के उषःकाल से ही उसके नयनों में बसा हुआ था। युवती होने पर उसने अपने कृष्ण को शालिवाहन में पाया और अब उसके न रहने परकृष्ण की मूर्ति ही उसके प्रियतम शालिवाहन की प्रतीक बन गई।

गौतमी के हाथों देवराज का सिर काटे जाने के पश्चात् घटनाएँ बड़ी तीव्र गति से घटित हुई थीं। राणाजी को अपने परिवार के साथ कुम्भलगढ़ छोड़ना पड़ा। गौतमी को उन्होंने अपने साथ ही रखा। वह हल्दीघाटी के युद्ध में लगे घावों से अभी पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो पाई थी। राणाजी के साथ उसे एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ भागना पड़ता, कभी कन्दराओं में आश्रय लेना पड़ता, कभी हथियार बाँधकर मुगल आक्रान्ताओं का सामना करना पड़ता; कभी भुखमरी का सामना होता तो कभी पानी के अभाव का। सभी आपदाओं में वह रानीजी की सहभागिनी बनी मेवाड़-मुकुट महाराणा की सुरक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहती थी। अपने दुःख

पर रोने या शोक करने का समय उसे मिल नहीं पाता था; परन्तु संकटों की कितनी ही भीड़ क्यों न हो मीराबाई से प्राप्त कृष्ण की मूर्ति की पूजा करने का समय वह प्रतिदिन अवश्य निकाल लेती थी।

पहले शालिवाहन में उसे अपने कृष्ण दिखाई देते थे, अब कृष्ण की मूर्ति में वह अपने शालिवाहन को देखने लगी! कई बार कृष्ण का नाम जपते-जपते वह शालिवाहन का नाम जपने लग जाती और हृदय में उदित शालिवाहन की मूर्ति के साथ उसके मनोव्यापार आरम्भ हो जाते और कृष्ण की वह प्रतिमा उसके लिए सजीव हो उठती। राणाजी के साथ जंगलों और पहाड़ों में भटकते हुए गौतमी ने इस सत्य को हृदयंगम किया कि कृष्ण और शालिवाहन भिन्न नहीं एक ही मूर्ति के दो रूप हैं।

इस सत्य के हृदयंगम होते ही उसका सारा दुःख, क्लेश और शोक मिट गया। धीरे-धीरे वह कृष्णमय हो उठी। उसकी आत्मा कृष्ण के साथ एकाकार हो गई। अब वह रात-दिन कृष्ण की प्रतिमा के पूजन, लालन-पालन और लाड़-प्यार में लगी रहती। वह भूल ही गई कि वह महाराणा और उनके परिवार के साथ, मुगलों से खदेड़ी जाती भयग्रस्त अवस्था में अपने दिन व्यतीत कर रही है। वास्तव में वह भय, आशंका और दुःख की अनुभूतियों से परे, शान्ति और सुख की मनःस्थिति में पहुँच गई थी। सभी सुखों का स्रोत—कृष्ण की प्रतिमा उसके पास थी। उस प्रतिमा को देखने में वह इतनी तल्लीन हो जाती कि भूख-प्यास, सरदी-गरमी और युद्ध की भीषणता का उसे भान ही न रहता। वह अपने कृष्ण के नाम का जप करती। अपने कृष्ण को रिझाने के लिए गीत गाती। उसके भजन-कीर्तन से राणा-परिवार को बड़ा आनन्द और सुख मिलता। जब वह निर्जन पहाड़ की किसी उपत्यका की सुनसान गुफा में अपने कृष्ण की मूर्ति के आगे बैठी हुई सहसा गा उठती तो ऐसा प्रतीत होने लगता मानो कृष्ण की विराट मूर्ति ने सारे वन-प्रान्तर को आच्छादित कर लिया हो—उस कृष्ण के विराटरूप ने जो महाभारत और यादवस्थली का रचयिता होते हुए भी योगियों में श्रेष्ठ परमयोगी और मुस्कराते मुखड़ेवाला मनमोहन था।

धीरे-धीरे गौतमी को कृष्ण की भौतिक प्रतिमा की भी आवश्यकता नहीं रही। उसका सारा जीवन ही कृष्णमय हो गया

राणाजी ने मेवाड़ का परित्याग करते समय उसे साथ ले जाना चाहा तो वह राजी नहीं हुई। उसने कहा—महाराज, मैं यहीं रहकर अपने कृष्ण की पूजा इसी पहाड़ पर करूँगी।

राणा ने उसे समझाते हुए कहा—गौतमी, मुगल यहाँ आ पहुँचेंगे। अब अधिक देर नहीं है। और वे मूर्ति-भंजक होते हैं। तुम्हारी मूर्ति....

लेकिन गौतमी तो भक्ति की चरम अवस्था—पागलपन—तक पहुँच चुकी थी। यह ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति को न परिणाम का भय होता है न परिमाण का। बोली—नहीं महाराज, मेरी मूर्ति को कोई तोड़ नहीं सकता। वह मूर्ति केवल चरमचक्षुओं से ही देखने की वस्तु नहीं। वह तो मेरे रोम-रोम में, मेरे मन-प्राणों में समा चुकी है। मेरा कन्हैया मुझे यहाँ से जाने को नहीं कहता....

परन्तु राणा को तो वहाँ से जाना ही था। उन्होंने निश्चय किया कि गौतमी को भीलों की सुरक्षा में छोड़कर चले जायेंगे। राणा सोच ही रहे थे कि गौतमी ने अपनी बात पूरी की—और महाराज, आप भी यहाँ से जा न सकेंगे।

'क्यों?'

'मेरा कन्हैया चाहता है कि आप यहीं रहें। आरती के दर्शन तो आपको नित्य ही करने होंगे और वह भी यहीं, इसी स्थान पर।' गौतमी ने हँसकर कहा।

भक्तों की रीति निराली होती है। दुनियावालों के लिए उनकी रीति-भाँति पर चलना मुश्किल ही है। और राज-काज तो कभी भक्तों के कथनानुसार चलाया नहीं जा सकता! महाराणा ने भील नारियों से विदा ली और गौतमी को अपने कृष्ण की आराधना में मग्न छोड़कर वहाँ से चल पड़े। जाते-जाते वह भीलों से उसकी देख-भाल और सुरक्षा का प्रबन्ध करने को कहते गये।

राणाजी चले गये। गौतमी की आरती की घंटी बजी। भील युवतियाँ उसे सुनकर गौतमी की गुफा की ओर आरती लेने तथा कृष्ण के दर्शनार्थ चली आई।

दूर से युद्ध का स्वर अब भी आता सुनाई दे रहा था। धीरे-धीरे वह निकट आता गया। जब भील युवतियाँ गौतमी की गुफा में पहुँचीं तो एक घोड़ा वहाँ दौड़ता हुआ आया। वह बुरी तरह हाँफ रहा था। उस पर एक सशस्त्र सैनिक सवार था। भील युवतियों के पास भी हथियार थे। उन्होंने अपने हथियार पर हाथ रखे। लेकिन गौतमी तो केवल मुस्करा दी। विपदा अथवा भय उसके लिए थे ही नहीं।

आगन्तुक घुड़सवार एक मेवाड़ी सैनिक था। उसने आगे बढ़कर पूछा—राणा-जी कहाँ हैं?

भील युवतियाँ उस घुड़सवार को पहचान न सकीं। परन्तु वह मेवाड़ी था, इसलिए किसी ने उस पर हाथ या हथियार भी नहीं उठाया। एक भील-बाला ने कहा—राणाजी तो अभी, थोड़ी देर हुई, यहाँ से पधार गये।

'कहाँ?'

'मेवाड़ से बाहर जाने के लिए.....सरहद की ओर!'

'अरे, यह कैसे हो सकता है? मेवाड़ की जीत अब होने ही वाली है। ऐसे समय महाराणा मेवाड़ से बाहर जा ही कैसे सकते हैं! उन्हें तो यहाँ होना चाहिए।' यह कहकर वह गुफा से बाहर निकल आया। जाते-जाते उसने पूछा, 'किस ओर गये हैं राणाजी?'

भोली भील बालाओं ने वह दिशा बता दी जिस ओर राणाजी गये थे। घुड़-सवार तुरन्त घोड़े पर सवार हुआ और वायुवेग से उस ओर भाग चला। उसे न खाई-खोदरों का डर था न पहाड़ियों और घाटियों का। उसका अश्व भी पहाड़ी मार्गों का अभ्यस्त प्रतीत होता था।

अश्वारोही को इस प्रकार भागे जाते देख सभी भील-बालाएँ आशंकित हो उठीं। अब उन्हें खयाल आया कि कहीं वह अनजान घुड़सवार मेवाड़ी सैनिक के वेश में मुगल गुप्तचर न हो! परन्तु अब क्या हो सकता था। घोड़े के बिना उसका पीछा करना तो असम्भव ही था। तब उन्होंने यह सोचकर मन समझाया कि वह अकेला है और गुप्तचर हुआ तो भील सैनिक अथवा राणाजी उसे मार गिरायेंगे। फिर भी यह आशंका तो उन्हें थी ही कि वह महाराणा के सीमा पार करने से पहले कहीं उन तक पहुँच न जाये। और उनकी यह आशंका सच भी थी।

सूर्य पश्चिमी क्षितिज की ओर पहुँच गया था। एक सीमावर्ती पहाड़ी पर महाराणा प्रताप और उनके साथी खड़े मेवाड़ की भूमि की ओर आतुरतापूर्वक देख रहे थे। रानीजी और बच्चे तो इस भाँति अपनी प्यारी मातृभूमि को देख रहे थे मानो नेत्रों की राह उसे पी ही जायेंगे। देखते-देखते रानीजी की आँखों की कोर में आँसू की एक बूंद छलक आई। सबकी दृष्टि बचाकर उन्होंने उसे पोंछ डाला, परन्तु राणाजी ने देख ही लिया।

'रानीजी, किसी दिन नहीं, पर आज यह क्यों ?'

'क्या महाराज ?' रानी ने अपनी विकलता पर काबू पाते हुए इस तरह पूछा [illegible] न हों।

'कोई बात नहीं, आखिर तो हम मनुष्य हैं। आँसू आना स्वाभाविक है। परन्तु फिर भी अकेले मेरी आँखों में आँसू नहीं।' राणाजी ने कहा।

'क्योंकि आप तो स्वयं ही मेवाड़ हैं....और आँसू तो मैं भी नहीं गिरा रही। मेवाड़ के महाराणा की रानी आँसू गिरा ही कैसे सकती है !' महारानी ने कहा।

'फिर आँख पर अँगुली क्यों ?'

'यह तो महाराज,' गोपीनाथ पुरोहित ने रानीजी की सहायता करते हुए कहा, 'सूर्य अभी अस्त नहीं हुए हैं और अपनी कुल-परम्परा के अनुसार एक-आध बिन्दु से उनका तर्पण तो करना ही होता है।'

वल्ल और जोध खड़े चारों ओर देख रहे थे। सहसा उन्हें एक ओर धूल उड़ती दिखाई दी।

'कोई आ रहा है, महाराज....हमारे पीछे....आप पधार जाइए, मैं खड़ा हूँ उससे निपटने के लिए।' बल्ल ने कहा।

'लगता तो अकेला ही है।' जोध ने कहा।

'अकेला है तो फिर भागें क्यों ?' गोपीनाथ बोला।

'अकेला ही होगा इसका क्या विश्वास ? पीछे और लोग भी तो हो सकते हैं। कितना तेजी से घोड़ा दौड़ाये चला आ रहा है। लो, आ ही पहुँचा। मारूँ तीर ? क्यों महाराज, है हुक्म ?' जोध ने कहा।

'नहीं, अकेले आदमी पर इस तरह तीर चलाना उचित नहीं....देखो, वह हाथ से हमें रुकने का संकेत कर रहा है....कौन हो सकता है....वेश-भूषा से तो मेवाड़ी ही लगता है....'

राणा की तीक्ष्ण दृष्टि ने उस घुड़सवार की वेश-भूषा पहचान ली थी। वह निरन्तर समीप आता जा रहा था। अन्त में उसकी आवाज भी सुनाई दी। वह पुकारकर कह रहा था—रुक जाइए, राणाजी, रुक जाइए ! आगे न बढ़िए.... ओ मेवाड़ के मुकुट, मेवाड़ को न छोड़िए !

'इस प्रकार आग्रह करनेवाला यह कौन है ?' प्रताप ने विस्मित होकर कहा।

'कोई तुर्क होगा। भेष बदलकर आया है!'

'तुर्क कभी इस तरह अकेला नहीं आयेगा। अरे, यह तो भामाशाह हैं।'

अश्वारोही अब भी दौड़ा चला आ रहा था। जब वह पहाड़ी की चढ़ाई चढ़ने लगा तो वहाँ खड़े और लोगों ने भी उसे पहचाना। लोग उसे पुकारने जा ही रहे थे कि भामाशाह वहाँ आ पहुँचा और घोड़े से नीचे कूद महाराणा और महारानी के चरणों में लोट गया। प्रताप ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया। उन्होंने कहा—मेवाड़ छोड़ने से पहले तुम मिल गये, यह अच्छा हुआ।

'महाराणा मेवाड़ न छोड़ें। आपने मेवाड़ छोड़ा तो मैं अपने प्राण ही दे दूंगा। मेवाड़ से आपका जाना रोकने के लिए तो मैं आया हूँ।' भामाशाह ने कहा।

'दूसरा तो कोई मार्ग अब रह नहीं गया है, भामाशाह। मेवाड़ के अधिकांश भाग पर मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो चुका है। हमारे सैनिक भी बहुत कम हो गये हैं। जिन सरदारों को सैनिक जमा करने के लिए भेजा था उनमें से अकेले तुम लौटकर आये हो।'

मैं अकेला ही बहुत हूँ महाराज।'

'लेकिन सैनिकों के साथ ही हमारा धन भी समाप्त हो गया है। सैनिक तो अभी धन के बिना भी रह सकते हैं, परन्तु धान्याभाव का क्या करेंगे? अन्न के अभाव में सैनिकों को क्या खिलायेंगे? हम लोग अभी तक जंगलों के कन्द-मूल खाकर लड़ते रहे। शत्रुओं ने जंगलों में आग लगा दी और कन्द-मूल भी समाप्त हो गये। ऐसी स्थिति में, तुम्हीं बताओ, मेवाड़ में रहकर मैं क्या करूँ?'

'महाराज, न तो आपके सैनिकों में कमी हुई और न आपका धन ही समाप्त हुआ। अनाज की भी कोई कमी नहीं है। डूब मरने की बात है हम सामन्तों के लिए कि हमारे रहते महाराज को कन्द-मूल खाकर निर्वाह करना पड़ा।'

'तुम कहना क्या चाहते हो, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा!'

'निवेदन यह है कि महाराज मेवाड़ का परित्याग करके जा नहीं सकते।'

'मेरे सामन्त कहाँ हैं?'

'जितने अभी आपके पास हैं, वे बहुत हैं; बाकी आपके आदेश की प्रतीक्षा में तैयार बैठे हैं। आप लौट चलिए। बहुत सम्भव है, हमें लौटते-लौटते ही यह शुभ संवाद सुनने को मिले कि मुगल सेना पीछे हटने लगी है।'

'यह कैसे हो सकता है? असम्भव ही है। मेरे साधन....'

'साधन? सबसे बड़े साधन तो स्वयं आप हैं, उसके बाद आपकी प्रजा है। मेवाड़ की प्रजा ने इस युद्ध के कष्टों को कभी कष्ट माना ही नहीं। आपके सामन्त और सरदार भी अपने ठिकानों में बैठे हुए और जीवित हैं। जो मर गये, वे अपने पीछे पुत्रों को छोड़ गये हैं। और धन-धान्य की तो महाराज, कोई भी कमी नहीं। जितना आप आदेश देंगे मैं उतना हाजिर कर दूंगा।' यह कहकर भामाशाह अपने घोड़े की पीठ का कोथला उतार लाया और उसे महाराणा के आगे उलट दिया। अन्दर से खनखनाती हुई मुहरें और अशर्फियाँ निकलीं और साथ ही हीरे-जवाहरातों का वहाँ ढेर लग गया।

प्रताप सहित वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति यह देखकर विस्मित हो उठे। अब उन्हें भामाशाह के कथन की वास्तविकता समझ में आई। साथ ही हृदय में नयी आशा और नयी उमंगों ने जन्म लिया। भामाशाह ने जितने धन का ढेर लगा दिया था वही इतना काफी था कि उसकी सहायता से महाराणा बहुत दिनों तक मुगलों से लड़ते रह सकते थे और विजय भी प्राप्त की जा सकती थी। सिन्ध की ओर भी वह धन-संग्रह और साधनों की पूर्ति के ही लिए तो जा रहे थे। अब वही सब मेवाड़ में मिल गया था। सभी व्यक्तियों के हृदय में भामाशाह के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव लहराने लगे।

पुरोहित गोपीनाथ तो कह उठा—धन्य है भामाशाह और धन्य है उनका प्रधान-मंत्रित्व।

'धन्य तो है मेवाड़ और धन्य है उसका महाराणा। मैंने तो जो मेवाड़ से पाया वही आज उसके चरणों में समर्पित कर दिया।' भामाशाह ने कहा।

लेकिन प्रताप के चेहरे पर विषाद छा गया। कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होंने मन्द स्वर में कहा—ताराचन्द से भी पूछ लिया है!

'क्या मतलब महाराज? मैं समझा नहीं।'

'ताराचन्द तुम्हारा भाई है, उससे पूछे बिना....'

'महाराज, जिस दिन भाई से पूछने की नौबत आयेगी, वह मेरा भाई ही नही रह जायेगा।'

'तुम अपने पूर्वजों की, अपने भाई-बन्धुओं की कठोर श्रम से कमाई हुई सम्पत्ति

इस प्रकार उड़ा दो, दे डालो यह उचित नहीं.... तुम्हारे वंशज मुझे गाली देंगे।'

'मेवाड़ के महाराणा को गाली देनेवाला मेरे वंश में कोई हो उससे तो मैं निर्वंश ही भला। लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि महाराज आज मुझसे इतने रुष्ट क्यों हैं? इतनी अकृपा क्यों? रोष का कोई कारण?' भामाशाह ने व्यथित कंठ से कहा।

'रोष, अकृपा और दोष? नहीं-नहीं, भामाशाह, ऐसी तो कोई बात नहीं। तुम पीढ़ियों की संचित सम्पत्ति मुझ पर न्योछावर किये दे रहे हो और मैं तुम पर रुष्ट हूँगा?'

'यह रोष और अकृपा नहीं तो क्या है? मेरे राजा को मेरी सम्पत्ति अपनी नहीं लग रही, वह उसे लेने को प्रस्तुत नहीं। हाय रे मेरा दुर्भाग्य!'

'मैं तो तुम्हें सोचने-समझने के लिए कह रहा हूँ भामाशाह।'

'सब सोच लिया है महाराज! समझ भी लिया है। जिस दिन आपने मेवाड़ को स्वतंत्र करने की प्रतिज्ञा की थी, उसी दिन हमने—आपके सामन्तों और सेवकों ने ही नहीं, मेवाड़ के समस्त प्रजाजनों ने भी प्रतिज्ञा की थी। और वैश्य के लिए तो उसके वचन से अधिक प्रिय कुछ नहीं होता। जिसका वचन भंग हो जाता है वह वैश्य रहता ही नहीं राणाजी!'

'सच है। यह मेरा सौभाग्य है भामाशाह। लेकिन मान लो कि मैं तुम्हारी इस सम्पत्ति को लौटा न सका?'

'तो हम फिर जन्मेंगे महाराज, और दूसरे जन्म में अपना हिसाब चुकता कर लेंगे। लेकिन महाराज, क्या यह भी मुझे बताना होगा कि मेरी सारी सम्पत्ति किस की दी हुई है? जो मेरे पूर्वजों का है उसे आपके पूर्वजों ने दिया था और जो मेरा है वह आपका दिया हुआ है। और मुगलों, मालवा प्रदेश तथा धनी मुगल व्यापारियों से जो छीना और लूटा गया है वह सब तो आपके ही बाहुबल का प्रताप है। इसमें मेरा क्या है?'

प्रताप का कंठ अवरुद्ध हो गया। उनके लिए प्राण देनेवालों की कमी नहीं; सर्वस्व समर्पित करनेवालों का भी टोटा नहीं—और यह सब ऐसे समय में जब चारों ओर विपत्ति के बादल टूट रहे हों, जब वह स्वयं अपने को भाग्यहीन समझ मेवाड़ का परित्याग कर चले जा रहे हों। भगवान कितना दयालु है! कैसे संकट के समय उसने बाँह गही! इससे अधिक सौभाग्य किसी का और क्या हो सकता

है ? उन्होंने रानीजी की ओर देखा। वह सती-साध्वी तो प्रताप की परछाईं ही थी। सुख में, दुःख में, आशा-निराशा में वह सच्ची अर्द्धांगिनी बनी प्रताप के साथ रहती आई थी। अपने पति के हृदय की वज्र-जैसी कठोरता और पुष्प-जैसी कोमलता —दोनों से ही वह परिचित थी। राणा के असमंजस को अपने परिहास से दूर करते हुए उन्होंने कहा—महाराज, इसमें से मैं अपने लिए एक पाई का भी गहना नहीं माँगूंगी।

सब हँस दिये; परन्तु राणाजी और भी गम्भीर हो उठे और बोले—मेवाड़ की महारानी को मैं तो घास-फूस के भी गहने नहीं पहना सका....

महाराणा की भावुकता पर अंकुश लगाते हुए भामाशाह ने कहा—महाराज, इस सम्पत्ति में पच्चीस हजार सैनिक बारह वर्ष तक बड़े मजे से निर्वाह कर सकते हैं। यदि इससे अधिक समय तक लड़ने की आवश्यकता हुई तो मैं और भी धन-संग्रह कर दूंगा। आपके एक बार जय एकलिंग कहने भर की देर है! हम तो, महाराज, कह ही रहे हैं : जय एकलिंग!

और भामाशाह ने 'जय एकलिंग' का भीम गर्जन किया। उसके साथ दूसरे भी ललकार उठे : जय एकलिंग!

मेवाड़ की सीमा पर खड़ा, मेवाड़ का परित्याग करने को उद्यत मेवाड़ का महाराणा इसके बाद मेवाड़ छोड़कर जा न सका। निराशा के ठूंठ पर उसे आशा के अंकुर फूटते दिखाई दिये। यदि पच्चीस हजार सैनिक बारह वर्ष तक निर्वाह कर सकते हैं तो मेवाड़ का खोया हुआ राज्य अवश्य प्राप्त किया जा सकता है।

महाराणा प्रताप ने भामाशाह के कन्धे पर हाथ रख दिया और बोले—चलो भामाशाह, मेवाड़ के वास्तविक पालनकर्ता भामाशाह, लौट चलो। अब भी यदि मैं न लौटा तो वह मेरी कृतघ्नता होगी। वीरो, अपने-अपने हथियार संभालो, मेवाड़ की धूल को माथे चढ़ाओ और पुकार उठो : जय एकलिंग!

राणा ने स्वयं नीचे झुककर चुटकी-भर धूल ली और उसे अपने माथे से लगा लिया। सभी ने उनका अनुसरण किया और 'जय एकलिंग' 'जय राणा प्रताप' के नारों से आसमान विदीर्ण हो गया।

महाराणा लौट पड़े। उन्हें अपने संगी-साथी ही नहीं, मेवाड़ की धरती का कण-कण स्फूर्तिमय दिखाई दे रहा था। राणा वही थे, उनकी दृष्टि भी वही थी,

परन्तु कितना परिवर्तन हो गया था! जब जा रहे थे तो उन्हें सब उदास विषाद-मय दिखाई देता था; अब लौट रहे थे तो सर्वत्र आनन्द, उल्लास और आशा दृष्टि-गोचर होती थी।

दिन डूब गया था। रात घिरने को थी। प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि यहाँ से लौटकर मुकाम कहाँ किया जाये ?

भामाशाह ने कहा—जिस पहाड़ को छोड़कर राणाजी आये हैं वहीं चला जाये।

'उसे तो मुगलों ने अपने अधिकार में कर लिया होगा।' राणाजी ने कहा।

'यदि ऐसी बात होती तो मैं आपको लौटाने कभी न आता। अब तो जहाँ भी महाराणा के चरण पड़ेंगे वहीं से मुगल सेना भागती नजर आयेगी।'

महाराणा और उनका परिवार सही-सलामत मेवाड़ छोड़कर जा सके, इसलिए भील सैनिक जिस पहाड़ पर प्रताप का मुकाम था उसकी रक्षा करते हुए लड़ रहे थे। भील वीर प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे। प्रताप अभी पहाड़ से नीचे उतरे ही थे कि मुगल सैनिकों को पता चला कि मेवाड़ियों की एक विशाल और सुसज्जित सेना पीछे से हमला करने को चली आ रही है। मुगल सैनिक दो पाटों के बीच फँस गये। सामने भील थे और पीछे मेवाड़ी सैनिक! मुगलों के लिए हथियार डालकर शरणागत हुए बिना प्राण बचाने का और कोई मार्ग न रहा। पहाड़ की कन्दराओं में छिपनेवालों को भील ढूंढ़ निकालते और मौत के घाट उतार देते। शरणागत होनेवाले मुगल सैनिकों के लिए मुगल सेना अथवा साम्राज्य में कोई स्थान नहीं रह जाता था। इसलिए बीच में फँसे मुगल सैनिक लड़ते रहे।

मेवाड़ियों की सुसंगठित और विशाल सेना भी है और वह आक्रमण भी कर सकती है, यह तो मुगल सेना में किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था। वे तो यही समझते थे कि मेवाड़ी सेना छिन्न-भिन्न कर दी गई और अब तो राणा प्रताप को जीवित अथवा मृत पकड़ना ही शेष रह गया। सभी प्रसन्न थे कि मुट्ठी-भर भीलों द्वारा रक्षित पहाड़ी को आनन-फानन जीत लिया जायेगा। लेकिन इधर भील भी जान की बाजी लगाये हुए थे। तभी पीछे से एक बड़ी और सुसज्जित मेवाड़ी सेना ने आक्रमण कर दिया। मुगल सैनिक वीरतापूर्वक लड़े, पर हार गये।

यह सेना भामाशाह के नेतृत्व में संगठित हुई थी। सामन्तों को पता चल गया

था कि राणाजी चारों ओर से घिर गये हैं, अपने सैनिकों से बिछुड़ भी गये हैं और निरुपाय होकर मेवाड़ छोड़ने की तैयारियाँ कर रहे हैं। इस चिन्त्य स्थिति का निवारण करने के लिए भामाशाह नवनिर्मित सेना के साथ मंजिल मारता हुआ वहाँ आ पहुँचा और उसने मुगलों को हरा दिया।

भामाशाह महाराणा से मिलने के लिए व्यग्र हो रहा था। घायलों और पराजितों की व्यवस्था अपने नायकों के सिपुर्द कर वह अकेला ही पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि महाराणा चले गये, तो वह सीधा सीमा की ओर दौड़ पड़ा और अपने राणा को लौटा लाया।

राणा के लौट आने की खुशी में सारे पहाड़ पर दीपावली जलाई गई। जगह-जगह तोरण और बन्दनवारें बाँधी गईं। महाराणा जिस गुफा में रहते थे उस पर मेवाड़ की पताका फहरा रही थी। मुगलों को पराजित करनेवाले सैनिकों की उमंग का क्या पूछना! उन्होंने अपने महाराणा के स्वागत में पहाड़ को उद्यान बना दिया और जंगल में मंगल कर दिया। राणा को आते देख सैनिकों ने जय जयकार किया और गौतमी ने आगे बढ़कर राज-परिवार पर फूलों की वर्षा करते हुए कहा—मैंने क्या कहा था महाराज? मेरे भगवान आपको एक रात भी मेवाड़ से बाहर नहीं रहने देंगे। अब सबसे पहले चलिए मेरे प्रभु के दर्शनों को।

गौतमी ने आज फूल-झाँकी का उत्सव किया था। कृष्ण की प्रतिमा को बाहर बाँस और नरकुलों के हिंडोले में झुलाया जा रहा था। चारों ओर फूलों की सुन्दर कलात्मक झाँकी बनाई गई थी। अपने कन्हैया को झुलाती हुई गौतमी मधुर गीत गाकर रिझा रही थी। भील-बालाएँ उसके चारों ओर खड़ी थीं। विजयी सैनिक भी कुछ दूरी पर संभ्रमपूर्वक खड़े देख रहे थे। महाराणा ने घोड़े से उतरकर कृष्ण की हिंडोले में झूलती प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम किया। वैसे राणा शिव के उपासक थे, लेकिन एक सच्चे हिन्दू के लिए शिव और विष्णु में कोई अन्तर नहीं होता। वह दोनों को एक ही रूप में देखता है। और मेवाड़ का नारी-सम्प्रदाय तो मीराँ-बाई के पदों और भजनों को अपना ही चुका था।

इस विजय से मेवाड़ी सैनिकों में उत्साह की लहर दौड़ गई। मुगल सेना का भय और आतंक सर्वथा निर्मूल हो गया। अब किसी को विश्वास ही नहीं होता था कि राणाजी मेवाड़ छोड़कर चले भी जा रहे थे। परन्तु प्रताप भूले न थे कि

यह तो केवल मंगलाचरण ही है। छोटे-से पहाड़ी प्रदेश को घेरनेवाली मुगल सेना को पराजित करने-मात्र से सारी मुगल सेना पराजित नहीं हो गई थी। अभी तो लगभग तीन-चौथाई मेवाड़ मुगलों के अधिकार में था। यह सच है कि मेवाड़ी प्रजा ने उनसे कोई सहयोग नहीं किया था, यह भी सच है कि कृपि और वाणिज्य समाप्त हो गये थे और मेवाड़ मुगलों के गले का बोझ बना हुआ था; और यह भी सच है कि मेवाड़ पर आक्रमण करते-करते मुगल सैनिक थककर तंग आ चुके थे। परन्तु साथ ही यह भी सच है कि जनता के सहयोग के विना ही मुगल सैनिक मेवाड़ की चप्पा-चप्पा भूमि पर छा गये थे; वाणिज्य और कृपि के अभाव में भी वह अपने लिए रसद का प्रबन्ध कर ही लेते थे और यद्यपि स्वयं थककर तंग आ चुके थे परन्तु मेवाड़ी जनता के लिए अभिशाप भी बने हुए थे। युद्ध को चलते हुए पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे और अव युद्ध की समाप्ति पर ही जनता को सुख और शान्ति मिल सकती थी। प्रताप के मेवाड़ छोड़कर जाने के कारणों में एक कारण यह भी था कि उनके चले जाने के वाद युद्ध-विराम की स्थिति हो जाती और समस्त प्रजा को थोड़ा विश्राम मिल जाता। अभी तक लोगों को नगरों से गाँवों में और गाँवों से जंगलों और पहाड़ों में ही भागना पड़ा था। उनके अपार कष्टों, पर साथ ही अद्भुत धैर्य को देखकर कई वार महाराणा के भी नेत्रों में आँसू आ जाते थे।

'भामाशाह, प्रजा को कव तक इस भाँति उत्पीड़ित करेंगे ?' दीपकों की जगमगाहट से दूर पहाड़ के एक अँधेरे ढाल पर महाराणा घूम रहे थे। उन्होंने भामाशाह से कहा।

'महाराज, हमने तो प्रजा को कभी उत्पीड़ित किया नहीं....'

'मेवाड़ के कोने-कोने में लगातार पन्द्रह वर्षो से युद्ध हो रहा है। अव मैं युद्ध को अधिक लम्बाने के पक्ष में नहीं हूँ।'

'हम कहाँ लम्बा रहे हैं महाराज ? यह तो दुष्ट मुगलों का काम है। अकवर ने अपने सारे साम्राज्य का वोझ मेवाड़ पर डाल रखा है।'

'इस बोझ को उतारकर फेंकना होगा भामाशाह। चाहे सिर ही हाथ में लेकर क्यों न लड़ना पड़े, मैं एक ही हल्ले में मुगलों को मेवाड़ से निकाल वाहर करना चाहता हूँ। बताओ, कल किस-किस मोरचे पर आगे बढ़ा जाये ?'

'महाराज, आपकी प्रजा और आपके सामन्त सभी तैयार ही हैं। हम तो

थके नहीं, परन्तु मेवाड़ में फँसी मुगल सेना अवश्य थक चुकी है। हमारा एक ही हल्ला उसे निकाल बाहर करने के लिए काफी होगा। आप आज्ञा दें उन मोरचों पर आगे बढ़ा जाये।'

तभी समीप से मीराबाई के भजन का यह पद उन्हें सुनाई दिया :

'मैं भी हो गई काली .... कन्हैया ....
मैं भी हो गई काली !'

प्रताप ने पहचान लिया कि वह स्वर गौतमी का था। वह उसी ओर आ रही थी। परन्तु उसे कोई भान नहीं था।

'देखना गोतमी, कहीं गिर न पड़ना।' पहाड़ के किनारे की ओर बढ़ती हुई गौतमी को सचेत करते हुए महाराणा ने कहा।

'कौन, राणाजी ?'

'हाँ, कहाँ जा रही हो ?'

'काले कन्हैया में समाने।'

'क्या मतलब ?'

'देख नहीं रहे हैं, मेरा कन्हैया कितना व्यापक और विशाल हो गया है ! सर्वत्र उसी का कृष्ण-रूप—उसी की कालिमा दिखाई दे रही है। जिधर देखती हूँ वहीं दिखाई देता है।'

'यह कालिमा कहाँ से उत्पन्न हुई गौतमी ?'

'मेरे प्रभु की प्रतिमा से .... आज मैंने कन्हैया की झाँकी सजाई .... फूलों का उत्सव किया .... जगत के प्रभु को मेवाड़ के प्रभु ने अपने हाथों झुलाया .... मेरा जीवन किसी झूले पर चढ़ा नयी पैंग ले रहा है राणाजी !'

'गौतमी, चलो ! मुझे भी पुनः प्रभु की प्रतिमा के दर्शन कराओ।'

प्रकृति के अन्धकार को कृष्ण की व्यापकता समझ उसमें समा जाने को आतुर गोतमी को यदि राणा ने टोका न होता तो क्या होता ? वह चलती हुई किसी घाटी में गिर जाती। गिरने और मरने का उसे कोई भय नहीं था। मरते हुए भी वह अपने कृष्ण के वरद हस्त का ही अनुभव करती। यदि राणाजी कृष्ण की मूर्ति के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त न करते तो वह सम्भवतः लौटती भी नहीं। भक्ति की समाधि में लीन वह सुन्दरी अपने भान में जो नहीं थी।

राणाजी हाथ पकड़कर उसे गुफा में ले आये। उन्होंने उसके ठाकुरजी के पुनः दर्शन किये और तब उसे सुला दिया। उसकी देख-भाल के लिए वहाँ कुछ लोगों को नियुक्त भी कर दिया।

आधीरात बीते महाराणा भी सोने गये। महारानी अभी तक उनकी प्रतीक्षा में जाग रही थीं। राणाजी ने उन्हें गौतमी के बारे में बताया तो वह बोलीं—मुझे तो सिसोदिया कुल में ही एक प्रकार के उन्माद के लक्षण दिखाई देते हैं।

'क्या मुझमें भी ?'

'हाँ राणाजी, आपमें भी। पागलपन न होता तो बिना साधनों के इतने युद्ध कैसे करते और इतने पहाड़ों को कैसे नापते ? गौतमी कृष्णमय हो रही है और आप मेवाड़मय। दोनों का पागलपन, दोनों का उन्माद एक-जैसा ही है।' कहते-कहते महारानी हँस दीं।

'ऐसे पागलपन और उन्मादग्रस्त के साथ तुमने अपनी जीवन-गाँठ क्यों जोड़ी रानीजी ?'

'पाँच वर्ष पहले पूछा होता तो मैं दूसरे ही ढंग से जवाब देती।' यह कहकर महारानी ने राणा का घट्टोंवाला कठोर हाथ अपनी कोमल हथेली में ले लिया। प्रताप मुस्करा दिये।

राजा और रानी शब्द के उच्चारण-मात्र से सुख, समृद्धि और विलास का वैभवपूर्ण चित्र आँखों के आगे आ खड़ा होता है। महाराणा ने अपनी महारानी को कौन-सा सुख दिया ? किस वैभव में उन्हें रखा ? विलास के कितने क्षण उन्होंने अनुभव किये ? रानीजी बड़ी चतुर थीं। इतने कष्टों और इतनी उम्र के बाद भी वह अपने सौन्दर्य को सुरक्षित रख सकी थीं। प्रताप भी सौन्दर्य का उपभोग करना जानते थे; कवि और सौन्दर्यशास्त्री उनके आसपास भी छाये रहते थे। फिर भी....

'क्यों रानीजी, हाथ छोड़ क्यों दिया ?' प्रताप ने पूछा। रानी ने राणा का हाथ छोड़ दिया था।

'मैं योगियों को लुभानेवाली अप्सरा नहीं हूँ।' रानी ने कहा।

'रानीजी, तुम्हारा यह हाथ न मिलता तो मैं भी किसी घाटी में लुढ़क गया होता, जिस प्रकार गौतमी लुढ़क जाती !'

'कल का कार्यक्रम क्या है ?'

'मुगलों को पछाड़ना.... लेकिन तुम्हारे इस हाथ के बिना मेरे हाथों में बल न होगा।'

और महाराणा ने रानी पद्मादेवी का हाथ जोर से खींचकर अपने हाथ में ले लिया।

::५::

प्रताप के पाँवों में नया बल, नयी शक्ति आ गई। विजय उन्हें आँखों के समाने खड़ी दिखाई देने लगी। सतत पन्द्रह वर्ष वह बिना थके युद्ध कर चुके थे और अभी पन्द्रह वर्ष और लड़ने को तैयार थे। यदि शरीर थक जाता, जर्जर हो जाता, काम देने योग्य न रहता तो उसे भी फेंककर नया जन्म ग्रहण कर लड़ते रहने की उनकी तैयारी थी।

भामाशाह द्वारा संगठित नयी सेना में भील आ-आकर सम्मिलित होने लगे। दूर-समीप के ग्रामीण लोग भी भरती होने के लिए आये। पहाड़ों और जंगलों में छिपे-बैठे किसान, कारीगर, व्यापारी और जमींदार-ठाकुर भी आये। दूर-दूर से युवक दौड़-दौड़कर आने लगे। देखते-देखते सारा देश कमर कसकर तैयार हो गया। मुगलों को मेवाड़ की पवित्र भूमि से निकाल बाहर करने के अनुष्ठान में कोई भी वर्ग पीछे नहीं रहना चाहता था। रात का अन्धकार सूर्योदय के साथ ही छिन्न-भिन्न हो जाता है। मेवाड़ की निराशान्धकार से भरी रात का भी उसी भाँति अन्त हुआ और आशा के अरुणोदय की लाली सर्वत्र फैल गई।

नयी सेना संगठित हो गई और उसका नेतृत्व करते हुए महाराणा प्रताप मुगल चौकियों को घेरने, तोड़ने और नष्ट करने के लिए आगे बढ़े।

पहली मुगल चौकी मिलते ही मेवाड़ी वीर उस पर बाज की भाँति टूट पड़े। एक ही झपट्टे में चौकी के परखचे उड़ गये। वहाँ की मुगल सेना छिन्न-भिन्न हो गई। जिसने सामना किया मारा गया और शेष प्राण बचाने के लिए या तो भाग गये या शरणागत हुए।

विजय का झण्डा फहराते हुए राणाजी की सेना वहाँ से दूसरी चौकी की ओर बढ़ी। अभी कुछ ही दूर गये थे कि उन्हें सामने से एक राजपूत सैनिक टुकड़ी आती दिखाई दी। मुगलों के सहायतार्थ मेवाड़ के बाहर से राजपूत सैनिक भी

आते रहते थे और महाराणा प्रताप की सेना को उनसे भी लड़ना पड़ता था। लेकिन राणा उनसे लड़ने के लिए अभी मोरचेबन्दी कर ही रहे थे कि सामनेवाली सेना में से एक घुड़सवार निकला और अकेला मेवाड़ियों की ओर बढ़ने लगा। राणा ने उसे पहचाना। वह उन्हीं का सगा भाई शक्तिसिंह था।

समीप आकर शक्तिसिंह घोड़े से उतर पड़ा और महाराणा को प्रणामकर बोला—राणाजी, मेवाड़ का द्रोही आज मेवाड़पति के चरणों में एक भेंट चढ़ाने आया है।

'मुझे घोड़ा देकर मेवाड़ से द्रोह करने के पापका प्रायश्चित तो तुम बहुत पहले ही कर चुके हो शक्त! तुम मेरे साथ आ गये इससे बड़ी और कौन-सी भेंट मेवाड़ के लिए होगी? अब तुम सदैव मेरे साथ ही रहोगे। तुम्हारा स्थान मेरी बगल में ही है भाई, आओ!' महाराणा प्रताप ने कहा।

'मैंने निश्चय किया था कि जब तक आपके चरणों में कोई भेंट नहीं चढ़ाऊँगा अपना मुंह नहीं दिखाऊँगा। भींसरोर का किला मैंने मुगलों से जीत लिया है और उसे आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।'

मेवाड़ियों की पहली विजय के बाद यह पहला शुभ समाचार था। मुगलों ने इस किले में अपनी जबर्दस्त मोरचेबन्दी कर रखी थी। वहाँ उनकी सेना भी काफी थी। प्रताप का इरादा अभी उसे छेड़ने का नहीं था। लेकिन शक्तिसिंह ने, जो भाई कभी उनसे रूठकर शत्रु से जा मिला था, उसे जीतकर राणा को समर्पितकर दिया।

'शक्त, जिस दिन तुमने मेरे भ्रातृत्व को स्वीकार किया....'

'केवल भ्रातृत्व ही नहीं महाराज, आपका आधिपत्य....'

'नहीं शक्त, आधिपत्यतो केवल एकलिंगजीका; अधिपति वही है, मैं तो उनका विनम्र चाकर हूँ। हल्दीघाटी के युद्ध में अनेक चमत्कार हुए और सबसे बड़ा चमत्कार यह हुआ कि तुम मुझे मिल गये। उस दिन से आज तक मुझे पाँव मोड़कर बैठना न मिला। परन्तु अब ऐसा लगता है कि हमारी तपश्चर्या सफल होगी, होने ही वाली है। बारह वर्ष की तपस्या में तो विद्या मिलती है, भगवान तक मिल जाते हैं। तो क्या हमारा पन्द्रह वर्षों का तप इतना कच्चा और क्षीण होगा कि स्वाधीनता भी न मिले? मैं तो मेवाड़ की स्वतंत्रता को अब अपने नेत्रों के सम्मुख खड़ा देख रहा हूँ।'

'महाराज, हमें देवीर पर आक्रमण करना चाहिए। राजकुमार अमरसिंह वहीं हैं। यदि हम वहाँ पहुँच गये तो स्वतंत्रता हाथ बाँधे दौड़ी चली आयेगी।' शक्तिसिंह ने कहा।

'क्या अमरसिंह वहीं है?' महाराणा ने पूछा।

'जी हाँ! जब आपसे बिछुड़ गये तो हमने केवल एक काम किया : जहाँ-जहाँ दुश्मन की चौकियाँ थीं वहीं जाकर छिप गये। आपके पास आने लगा तो थोड़े-से सैनिक मैंने अमरसिंह के पास भी भेज दिये। सम्भवत: उन्होंने देवीर पर हमला कर भी दिया हो। हम पहुँच गये तो विजय निश्चित है।' भामाशाह ने कहा।

जब मुगलों का दबाव बहुत बढ़ गया और राणा प्रताप को पहाड़ों का आश्रय लेना पड़ा तो उन्होंने अपने सभी सामन्तों और सरदारों को आदेश दिया कि वे जहाँ भी मुगलों की चौकियाँ, थाने और अड्डे हों उनके आसपास छिप जायें और शत्रु की गति-विधि का पता लगाते रहें। आदेशानुसार मेवाड़ी सरदार शत्रु-प्रदेश में जा छिपे। शत्रु की गति-विधि पर बराबर दृष्टि रखते, महाराणा को संवाद पहुँचाते रहते, अवकर देखकर लड़ भी लेते। और कुछ न होता तो शत्रु को पहुँचाई जानेवाली रसद आदि ही लूट लेते थे। मेवाड़ से बाहर जाकर नयी सेना संगठित करने का कार्य भामाशाह ने अपने जिम्मे लिया था। इस प्रकार सभी सरदार चुपचाप अपने कार्यों में संलग्न थे। लेकिन आगे चलकर स्थिति इतनी विषम हो गई कि सरदारों का राणाजी के साथ सम्पर्क टूट गया। सरदारों की सारी गति-विधि ही रुक गई और राणाजी के मेवाड़ छोड़ने की नौबत आ गई।

उधर भामाशाह बराबर अपना कार्य करता रहा। उसने विशाल सेना संगठित कर ली और ठीक समय पर मेवाड़ लौट आकर महाराणा की धन और जन दोनो से ही सहायता की। साथ ही उसने मेवाड़ में बिखरे हुए सब सामन्तों को भी धन और धनुर्धारी भेजे।

उन दिनों मुगलों का सबसे बड़ा और शक्तिशाली सैनिक केन्द्र देवीर नामक नगर में था। पिता से बिछुड़ने के बाद अमरसिंह ने यहीं अपना अड्डा जमाया। अन्यान्य सरदारों की भाँति वह भी अवसर की ताक में था। प्रतीक्षा करता रहा कि मौका मिले और दुश्मनों को अपने हाथ दिखाये। वह तो बहुत पहले भिड़ जाता, परन्तु बिना पूरी तैयारी के शत्रु से मुठभेड़ करने पर राणाजी ने कड़ी रोक लगा

दी थी। अमर मन मारे बैठा रहा। लेकिन जैसे ही भामाशाह द्वारा भेजी हुई कुमक उसे मिली, वह देवीर के किले पर आक्रमण करने के लिए बेताव हो उठा।

आखिर उसने हमला बोल ही दिया। जब प्रताप और शक्तिसिंह अपनी सेनाओं के साथ देवीर पहुँचे तो वहाँ राजपूतों और मुगलों के बीच घमासान लड़ाई हो रही थी। राजपूत बड़ी उमंग से लड़ रहे थे। वे जानते थे कि यदि देवीर को जीत लिया तो आधा मेवाड़ कब्जे में आ जायेगा। अमर युवकोचित उत्साह से लड़ाई का संचालन करता हुआ सोच रहा था, कितनी शुभ होगी वह घड़ी जब मैं पिताजी के चरणों में देवीर की विजय-भेंट समर्पित करूँगा !

काम बहुत कठिन था। शक्तिसिंह ने एक किला जीता था। भीलों ने राणा के पीछे लगी मुगल सेना को रोका और भामाशाह ने उसे हराया था। लेकिन देवीर का किला तोड़ना तो बहुत ही मुश्किल काम था। काम कितना ही मुश्किल हो युवक जब मन में ठान लेता है तो परिणाम की चिन्ता छोड़ उसे पूरा करने में लग जाता है।

कुमक मिलते ही अमर ने सहसा आक्रमण कर दिया। मुगल आकस्मिक आक्रमण के लिए प्रस्तुत नहीं थे और राजपूतों का वेग बड़ा ही प्रबल था। पहले मुगलों के पाँव उखड़ने लगे, लेकिन मुगल सेनापति मेवाड़ में हारने के लिए तो आये नहीं थे। उस समय सिपहसालार सुल्तानखाँ देवीर का हाकिम था। वह बड़ा ही अनुभवी सेनापति और कई युद्धों में लड़ा हुआ था। जब उसने मुगलों के पाँव उखड़ते देखे तो स्वयं तलवार घुमाता हुआ मैदान में आ कूदा और ललकारकर अपने सैनिकों की हिम्मत बढ़ाने लगा। सेनापति को तलवार और भाला चलाते देख भागते सैनिकों के पाँव रुक गये। वे भी प्राणों का मोह छोड़कर लड़ने लगे।

अब मुगलों के प्रबल प्रतिरोध के कारण राजपूतों की बाढ़ रुक गई। अमर स्वयं सबके आगे अपनी सेना का नेतृत्व कर रहा था। उसने ललकारकर कहा—वीरो, दिखा दो अपने जौहर ! हो ही जाये आज फैसला ! यहाँ दूसरी हल्दीघाटी बना दो। पाँव पीछे न पड़ने पायें। बढ़े चलो मेरे साथ। मारकर भगा दो दुश्मन को ! जय एकलिंग ! हर हर महादेव !

और अमरसिंह प्रतिरोध कर रही मुगल पाँतों पर पूरी शक्ति से टूट पड़ा। राजकुमार को संकट के मुंह में अकेला आगे बढ़ते देख राजपूत सैनिकों ने भी

उसका अनुसरण किया। ठीक उसी समय महाराणा प्रताप अपनी सुसज्जित विशाल सेना के साथ वहाँ आ पहुँचे। मुगल सेना छिन्न-भिन्न होने लगी। लेकिन मध्य भाग, जहाँ अमर लड़ रहा था, अब भी वैसा ही अडिग और अटल था। मुगलों ने अपनी पूरी ताकत वहाँ लगा रखी थी। दोनो दल जान की बाजी लगाये लड़ रहे थे। भयंकर मार-काट मची हुई थी और लाशों के अम्बार लग रहे थे। यह देख भामाशाह ने कहा—महाराज, मध्य भाग में राजकुमार लड़ रहे हैं। हम वहाँ कुमक पहुँचा दें तो फतह निश्चित है।

'नहीं भामाशाह, हमें दूर ही रहना चाहिए, अमर को अकेला लड़ने दो।' प्रताप ने कहा।

'महाराज, बेकार जोखम उठाने से क्या फायदा ! देख नहीं रहे हैं, राजकुमार ने अपने सिर की बाजी लगा दी है!'

'नहीं भामाशाह, मुझे दूर से देखने दो कि मेरा बेटा क्या करता है। अपनी सन्तति और वंशजों के वीरत्व को देखना भी ब त बड़ा सुख और सौभाग्य है।'

और महाराणा प्रताप दूर खड़े अपने बेटे की वीरता को देखते रहे।

लड़ाई अपने पुरजोर पर थी। आखिर अमर और सुलतानखाँ लड़ते-लड़ते एक-दूसरे के सामने आ पहुँचे।

सुलतानखाँ ने कहा—कुँवरजी, अभी तुम छोटे हो। जीना चाहो तो हथियार डाल दो।

'हथियार डालकर जीने की आकांक्षा नहीं खान। तुम चाहो तो हथियार छोड़ सकते हो। मैं वार नहीं करूँगा।' अमर ने जवाब दिया।

'क्या कहते हो ! मुगलों का सिपहसालार हथियार छोड़ दे ? गैर मुमकिन !'

'मेवाड़ का भी यही कहना है। तो हो जाओ होशियार।' कहते हुए अमर ने घोड़े को एड़ लगाई। उधर सुलतानखाँ ने भी अपने घोड़े को आगे बढ़ाया। दोनो के भाले टकराये, और बिजलियाँ कौंध गईं। फिर तलवारें झनझनाने और चिनगारियाँ छूटने लगीं। दोनो घुड़सवार तलवार के दाँव दिखाने लगे। हठात् अमर ने अपने अश्व को दो डग पीछे हटाया और भाला उठाकर प्रबल वेग से सुलतानखाँ पर वार किया।

मुगल सेनापति इस वार को रोक न सका। अमर का भाला शत्रु की ढाल और

जिरह-बख्तर को भेदता हुआ छाती के आर-पार निकल गया। दूसरे ही क्षण मुगल सेनापति का शव घोड़े से नीचे आ गिरा। उसका गिरना था कि राजपूतों ने जय-घोष किया: 'जय एकलिंग ! जय महाराणा प्रताप ! ! हर हर महादेव ! ! !'

और मुगल सेना में भगदड़ पड़ गई। जिसको जिधर राह मिली भाग चला। अमर को पता नहीं था कि उसके पिता महाराणा प्रताप खड़े युद्ध देख रहे हैं। उसने जैसे ही भागते हुए मुगल सैनिकों के पीछे घोड़ा डाला किसी ने उसके कान में कहा—राणाजी पधार गये हैं।

अमर के बढ़ते हुए पाँव वहीं रुक गये। वह लौट पड़ा। वहाँ आया जहाँ पिता प्रताप खड़े थे। घोड़े से उतरा और पिता के चरणों का स्पर्श किया। फिर बोला—महाराज, देवीर आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।

प्रताप ने कोमल कुमार अमर के मस्तक पर हाथ रखा और उसे उठाकर अपने पास खड़ा करते हुए कहा—वत्स, पूर्वजों का पुण्य फल रहा है। नित्य नयी वस्तुएं भेंट में प्राप्त हो रही हैं। मेवाड़ की ग्रह-दशा सुधरती दिखाई देती है।

पिता-पुत्र की भेंट बहुत दिनों के बाद हो रही थी इसलिए उन्हें वार्तालाप का अवसर देकर अन्य सैनिक और सेनानायक युद्ध की समाप्ति के कार्य में प्रवृत्त हुए। भागते हुए मुगलों का पीछा करना था। उनकी छावनी और युद्ध-सामग्री पर कब्जा करना था। युद्ध में विजय हो जाने के बाद विजयी सेना का कार्य अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। देवीर के युद्ध में मुगलों की पराजय स्पष्ट दिखाई दे रही थी। अन्त में मुगलों को भागना ही पड़ा। मुगल सेनानायकों के, अपनी सेना को रोकने और संगठितकर प्रत्याक्रमण के, सभी प्रयत्न निष्फल हुए।

देवीर के युद्ध में मुगलों की पराजय और राजपूतों की विजय के संवाद चारों ओर विद्युत् वेग से प्रचारित हो गये। जिसने भी सुना दंग रह गया। कहाँ तो यह सोचा जा रहा था कि महाराणा प्रताप अब-तब में पकड़ लिये जायेंगे और कहाँ देवीर-जैसे शक्तिशाली, सब साधनों से परिपूर्ण दुर्ग से मुगलों को हारकर भागना पड़ा ! लोगों के मन यह एक आश्चर्य ही था। देवीर मेवाड़ में मुगलों का केन्द्रीय सैनिक अड्डा था। यहीं से वे सारे मेवाड़ का सूत्र-संचालन करते थे। मेवाड़ के विभिन्न भागों में यहीं से सैनिक और रसद भेजी जाती थी। अब वही स्थान राजपूतों के अधिकार में था और मुगलों को वहाँ से भागना पड़ा था।

इस युद्ध के वाद पासा ही पलट गया। सारे मेवाड़ में मानो आग के शोले भड़क उठे। जहाँ भी मुगलों की छावनियाँ, सैनिक अड्डे अथवा चौकियाँ थीं, वहीं घमासान मच गया। अब तक जो [illegible] और जंगलों में छिपे बैठे थे वे सब निकल-निकलकर मुगलों पर हमले करने लगे। सैनिक और नागरिक सभी एक हो गये और आक्रमणकारियों को अपनी मातृभूमि से शीघ्रातिशीघ्र निकाल बाहर करने के पवित्र अनुष्ठान में लग गये। भीलों के उत्साह का तो कोई पार न था। वे किसी भी मुगल को देखा न छोड़ते थे। सबके मन में यही बात थी कि मेवाड़ की एक भी अंगुल भूमि पर विदेशियों को नहीं रहने देंगे। सारे मेवाड़ में स्वाधीनता के यज्ञ की पूर्णाहुति प्रारम्भ हो गई। स्त्री और पुरुष, बूढ़े और बच्चे सभी उसके होता बन गये। अब पराधीनता का एक-एक क्षण लोगों के लिए दूभर और असहनीय हो उठा था।

महाराणा प्रताप ने इस जोश का पूरा-पूरा उपयोग किया। उन्होंने मुगलों पर चहुँमुखी धावे आरम्भ कर दिये। कहीं सीधी भिड़न्तें होतीं, कहीं सहसा छापे मारे जाते, कहीं आते-जाते मुगल सैनिकों को घेरकर मौत के घाट उतार दिया जाता। गरज यह कि मुगलों का मेवाड़ में रहना असम्भव हो गया। दुश्मनों को लगता था जैसे प्रताप के हजार हाथ हों। राणा कभी पूर्व से निकल आते तो कभी पश्चिम से, कभी उत्तर से चढ़ दौड़ते तो कभी दक्षिण से। यहाँ तक कि मुगल अपनी परछाईं से भी डरने लगे। उन्हें हवा और आसमान में भी राजपूत सैनिक उभरते दिखाई देते थे।

एक-एक कर सभी किले राजपूतों के अधिकार में आते गये। सबसे पहले भींसरोर, उसके बाद देवीर, फिर गोगुंदा जीता गया। एक दिन कुंभलमेर भी राणा के कब्जे में आ गया। दूसरे दिन मेवाड़ियों ने उदयपुर को जीत लिया। राणा जिधर भी मुड़ जाते विजय वरमाला लिये खड़ी दिखाई देती। राणा की मुगल सैनिकों और सेनानायकों पर ऐसी धाक बैठ गई कि बेचारों के होश फाख्ता हो गये। अल्लाहो अकबर का नारा वे अब भी लगाते थे, परन्तु उसमें कोई दम नहीं रह गया था। राजपूतों के हर हर महादेव में उनका नारा खो जाता था।

राणा प्रताप के इस विजय-प्रवाह को रोकने का अकबर ने भगीरथ प्रयत्न किया। उसने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। मेवाड़ी युद्ध के अनुभवी सरदारों को

मोरचे पर भेजा। लेकिन मेवाड़ की आजादी सभी बाँध, सभी बाधाओं को तोड़ती ई आगे और निरन्तर आगे ही बढ़ती गई। प्रताप को समझाने के प्रयत्न किये गये, जो शर्तें उन्हें स्वीकार हों उन पर सन्धि करने की तैयारी दिखाई गई, परन्तु उनका एक ही जवाब था और वह यह कि पहले सारी मुगल सेना मेवाड़ के बाहर निकल जाये; उसके बाद, यदि मै आवश्यक समझूंगा तो समझौते और सन्धि की बात स्वयं कर लूंगा।

मेवाड़ में मुगलों का दबदबा समाप्त हो गया। महाराणा प्रताप का प्रखर तेज सूर्य के प्रकाश की भाँति जगमगाने लगा। मेवाड़ी जनता के मन तो वह मेवाड़ का उद्धार करनेवाले देवता ही बन गये। मुगलों द्वारा तोड़े हुए किलों, मन्दिरों और नगरों का पुर्ननिर्माण किया जाने लगा। किसान फिर से खेती करने लगे। कारीगरी, कला-कौशल और व्यवसाय-वाणिज्य का सिलसिला पुनः प्रारम्भ हुआ। पन्द्रह वर्षों की तपस्या फलीभूत हुई और लोगों के चेहरे स्वाधीनता की आभा से दीप्त हो उठे।

मेवाड़ के ईशान कोण पर, मेवाड़ की सीमा से लगा हुआ ही राजा मानसिंह और भगवानदास का अम्बर अथवा आमेर राज्य का मत्स्य प्रदेश था। आमेर और मेवाड़ की परम्परागत पुरानी मैत्री चली आती थी। जब भी आमेर पर कोई बाहरी आक्रमण होता तो वह मेवाड़ से सहायता की याचना करता, जो उसे सहर्ष प्रदान की जाती थी। सदियों से यह क्रम चला आता था। लेकिन उसी अम्बर के कछवाहा राजा मानसिंह और भगवानदास ने अपने ही सहायक मेवाड़ की कमर तोड़ने का प्रयत्न किया। महाराणा प्रताप इस बात को भूले न थे। कछवाहों की बढ़ती हुई शक्ति उनको आँखों में खटकती रहती थी। यदि कछवाहों ने अकबर को अपनी सेवाएँ समर्पित न की होतीं तो वह कदापि इतनी शीघ्रता और सफलता से भारत का एकछत्र अधिपति न बन पाता। मेवाड़ के राणा को चक्रवर्तीत्व का कोई लोभ न था। वह तो केवल इतना चाहता था कि बापा रावल द्वारा भगवान एकलिंगजी को समर्पित भूमि पर किसी दूसरी शक्ति और सत्ता की पताका उड़ने न पाये। अपने इस छोटे-से उत्तरदायित्व को निभाने के लिए अनेक मेवाड़ी वीरों, वीरांगनाओं और सतियों ने शौर्य-तर्पण किये थे, असिधारा का व्रत लिया था और स्वातंत्र्य-यज्ञ में अखंड आहुति देते आये थे।

राणाजी इन्हीं बातों को सोचते हुए पिछोला तालाव के किनारे घूम रहे थे। समीप ही उनके रहने के लिए झोंपड़ियाँ बनी हुई थीं। उदयपुर को जीतकर भी राणाजी को महलों में रहना स्वीकार नहीं हुआ था। गोपीनाथ पुरोहित, भामाशाह आदि सरदार उस समय राणाजी के साथ ही थे। सहसा गोपीनाथ ने कहा—महाराज, एकलिंगजी के दर्शन करने का समय तो अब हो गया। एकलिंगजी का राज्य आपने दुश्मनों से जीत लिया, अब उसे पुनः एकलिंगजी को समर्पित करने की विधि भी सम्पन्न हो जानी चाहिए।

'मुझे एक नहीं, दो दर्शन करने हैं गोपीनाथ!' महाराणा ने कहा।

'दो दर्शन कैसे महाराज? मैं समझा नहीं।' भामाशाह ने पूछा।

'एक दर्शन तो मेवाड़ के इष्टदेवता एकलिंगजी के जैसा कि गोपीनाथ ने कहा; और दूसरे दर्शन मेवाड़ की महारानियों के इष्टदेवता भगवान कृष्ण के, जिनके मन्दिर की स्थापना गौतमी ने की है।' प्रताप ने उत्तर दिया।

'गौतमी के कृष्ण कौन-से?' ताराचन्द ने पूछा।

'गौतमी के कृष्ण शालिवाहन!' उत्तर दिया युवक सालुंवाराय ने।

'दर्शन के योग्य तो वह युवक भी है ही। परन्तु मेरा अभिप्राय महारानी मीराँबाई के कृष्ण प्रभु से है, जिनकी प्रतिमा गौतमी को प्राप्त हुई है।' प्रताप ने अपने कथन का स्पष्टीकरण किया।

'तो अन्नदाता, फिर देर क्यों? आप हुक्म दीजिए और हम दोनो जगह चलकर दर्शन कर आयें।' भामाशाह ने कहा।

बात असल में यह थी कि सारा मेवाड़ मुगलों से छीनकर भी प्रताप अभी तक चित्तौड़ नहीं ले पाये थे। यह बात उनके हृदय में सदैव शूल की भाँति खटकती रहती थी। चित्तौड़ का अभाव उन्हें सतत पीड़ित करता रहता था। उन्होंने दुःखित होकर कहा—भामाशाह, चित्तौड़ को हम अभी तक जीत नहीं सके।

'तो क्या हुआ महाराज! जब चित्तौड़ को जीत लेंगे तब मीराबाई के कृष्ण भगवान के दर्शन कर लिये जायेंगे। अभी तो जितना जीत चुके हैं उसी को भगवान के चरणों में समर्पित कर दीजिए?' भामाशाह ने कहा।

'महाराज, इस समय मुझे दादाजी की एक बात याद आ रही है।' झालाराणा के एक किशोर पौत्र ने, जो उस समय वहाँ संयोग से उपस्थित था, कहा।

'प्रातःस्मरणीय वीरवर झालाराणा की जो भी बात होगी मैं उससे बँधा हुआ हूँ। आप बताइए, क्या बात है वह ?'

'बात यह है महाराज, कि जब मानसिंहजी हमारे मेहमान हुए थे, तो उन्हें आपकी ओर से दादीजी के द्वारा यह सन्देश दिया गया था, कि अब मेवाड़ के महाराणा अम्बरपति से उनके अम्बर प्रदेश में ही आमने-सामने मिलेंगे। महाराज भूले न होंगे, पर फिर भी मैं याद दिलाने की धृष्टता कर रहा हूँ।'

किशोर झालाराणा की वीरता और संग्राम-प्रियता सर्वविदित थी। वह सभी युवक सरदारों का प्यारा और नेता था। उसकी बात सुनते ही वहाँ उपस्थित सभी सरदार समझ गये कि मेवाड़ी वीर केवल अपना खोया प्रदेश प्राप्त कर ही सन्तुष्ट नहीं है, वे मेवाड़ को जीतने का घमण्ड करनेवाले मानसिंह का गर्व भी तोड़ना और उसके प्रदेश को जीतकर ही दर्शन-उत्सव सम्पन्न करना चाहते हैं।

'अन्नदाता, बात तो नन्हें झालाराणा ने बावन तोले और पाव रत्ती की कही है। मानसिंह को वह सन्देश स्वयं आपने ही भिजवाया था। तो क्यों न हम एकलिंगजी को समर्पित करने के लिए अम्बर से कुछ ले आयें और तब दर्शनों को चलें ?' भामाशाह ने युवक झालाराणा की बात का समर्थन करते हुए कहा।

प्रताप के मुंह पर मुस्कराहट फैल गई, वह कभी-कदास ही हँसते थे। इस समय अनायास उन्हें हँसी भी आ गई। उनके नेत्रों के समक्ष सारा पुरातन इतिहास मूर्तित हो उठा। इसी पिछौले तालाब पर मानसिंह की जो मेहमानवाजी हुई थी वह उन्हें याद आई। हल्दीघाटी का संग्राम भी याद आया। पहाड़ियों और उपत्यकाओं में अपना पीछा करते हुए मानसिंह और भगवानदास याद आये। जगन्नाथ कछवाहा को तो वह भूल ही कैसे सकते थे ! उसने उन्हें पकड़ने के लिए पहाड़ के पहाड़ जला दिये थे ! अकबर के कछवाहा सेनापतियों ने मेवाड़ को लूटा और रौंदा था। यदि राजस्थान के अनुभवी क्षत्रियों ने सहायता न की होती तो क्या मजाल थी अकबर की कि वह मेवाड़ में इतने दिनों टिका रहता ? प्रताप को यह सब याद आते ही उनकी मुस्कराती आँखों में खून उतर आया।

उन्होंने उसी समय अम्बराधिपति को पत्र लिखा। उसमें मानसिंह, भगवानदास और जगन्नाथ को सूचित किया गया कि पत्र प्राप्त होने के सात दिनों के अन्दर एकलिंगजी को भेंट में देने के लिए मेवाड़ के राजा के पद और गौरव के

अनुरूप यदि कोई वस्तु नहीं भेजी गई तो मेवाड़ अम्बर की सीमाओं के अन्दर कहीं से भी अपनी मनोनुकूल वस्तु लेने के लिए स्वतंत्र होगा।

जब यह पत्र अम्बरपति भगवानदास को मिला तो उसके प्राण सूख गये। मानसिंह उस समय मुगल सेना के साथ अकबर के लिए कहीं दूर विजय प्राप्त करने में लगा था। बूढ़े भगवानदास ने घबराकर अपने सम्बन्धी जगन्नाथ कछवाहा को बुलाया और आदेश दिया कि सीमाओं पर चौकी-पहरे का प्रबन्ध और भी कड़ा कर दो। किसी को भीतर मत आने दो। जगन्नाथ स्वयं कुशल सेनापति था। मुगलों के कई आक्रमणों और युद्धों का सफल संचालन कर चुका था। अम्बर की सीमा की सुरक्षा उसके लिए कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी। परन्तु अम्बरवासियों के कलेजे मुंह को आ रहे थे। प्रताप और उनके सूरमाओं की धाक सब के मन पर बैठ चकी थी। सब डर रहे थे कि पता नहीं कब और किस दिशा से मेवाड़ का विजयी राणा आ धमके! जगन्नाथ ने मेवाड़ की ओर से अम्बर में प्रवेश करने के जितने भी मार्ग थे सभी की पूरी नाकेबन्दी कर दी। सारी सीमा पर जगन्नाथ स्वयं घम रहा था। इस तरह सात दिन पूरे हो गये। लोगों को यह विश्वास तो था ही कि वचन-वीर राणा अवधि के पहले तो आक्रमण नहीं ही करेगा।

आठवाँ दिन आ गया। लोग दिल थामकर सोच रहे थे कि देखें, राणा किस ओर से आता है और आता भी है या सब निरी गीदड़भभकियाँ ही हैं। उन दिनों दिल्ली से अम्बर और अजमेर होता हुआ एक राजमार्ग दक्षिण तक चला गया था। यह पूरा मार्ग मुगलों के अधिकार में था। खूब चलता था। बहुत सुरक्षित समझा जाता था। पहाड़ों में छिपकर छापा मारनेवाले प्रताप के इस मार्ग से अम्बर में प्रवेश करने की तो किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। लेकिन ठीक आठवें दिन, इस मार्ग पर अवस्थित, मालपुरा नगर के प्रवेश-द्वार पर युद्ध की नौबत जोरों से बज उठी। मालपुरा उन दिनों बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। मुगल सैनिकों की अधिकांश जरूरतें यहीं से पूरी की जाती थीं। नौबत का बजना था कि मालपुरा-वालों के दिल दहल उठे। अभी वे इधर-उधर भौचक्के-से देख ही रहे थे कि मेवाड़ी योद्धा मानो धरती फोड़कर निकल आये और नगर पर टूट पड़े। यह नगर उतना ही सुरक्षित समझा जाता था जितना अम्बर, दिल्ली अथवा अजमेर। स्वप्न में भी नहीं सोचा गया था कि इस नगर पर आक्रमण होगा।

नौबत के बजते ही नगर के द्वार बन्द हो गये और सैनिकों को तैयार होने के आदेश दे दिये गये। लेकिन अभी सैनिक तैयार भी नहीं होने पाये थे कि बल्ल और जोध कबन्ध के सहारे नगर के परकोटे पर चढ़ गये और उन्होंने अपने भील वीरों को नगर के अन्दर उतार दिया। इतने में मालपुरा के दुर्गरक्षक आ पहुँचे। झपाझप तलवारें चलने लगीं। वल्ल और जोध साक्षात् रुद्र के अवतार की भाँति तलवारें चला रहे थे। दायें-बायें शत्रुओं को काटते हुए वे दोनो भाई मालपुरा के फाटक तक पहुँच गये और द्वार खोल दिये। दरवाजों के खुलते ही प्रताप की सारी सेना अन्दर घुस गई। नगर के समीप एक पहाड़ी पर बैठे प्रताप अपनी सेना का संचालन कर रहे थे। उन्होंने आदेश दिया कि मालपुरा का सारा सरकारी खजाना और जो व्यापारी दिल्ली के साथ व्यापार करते हैं उनके भंडारों पर अधिकार कर लिया जाये।

बात-की-बात में मेवाड़ी सैनिकों ने अपने महाराणा की आज्ञा पूरी कर दिखाई। अम्बर राज्य का मालपुरा में जो खजाना था वह लूट लिया गया और धनाधीश व्यापारियों की कोठियों में जितना धन और माल था वह सब मेवाड़ियों ने अपने अधिकार में कर लिया। दुपहर होते-होते तो सारा किस्सा ही खत्म हो गया। सूर्य अभी मध्याकाश में पहुँच भी नहीं पाया था कि मेवाड़ी सैनिक मालपुरा को लूटकर चल भी दिये। लोग देखते ही रह गये कि किधर से आये और किधर चले गये! किसी को उनके पीछे जाने की हिम्मत न हुई। कौन अपने प्राणों को संकट में डालता! शाम को सीमा की सुरक्षा पर तैनात टुकड़ी अपनी गश्त पूरी करके मूछों पर ताव देती हुई लौटी तो सेनापति जगन्नाथ कछवाहा को पता चला कि प्रताप सबकी आँखों में धूल झोंककर आये और सारा सरकारी खजाना और नगर लूटकर चले भी गये! रात होते-होते तो यह समाचार सारे अम्बर और आस-पास के राज्यों में भी फैल गया। सबके दिलों में डर समा गया। पता नहीं राणा प्रताप—अब की किस राज्य पर हमला कर दें!

लेकिन राणाजी को तो किसी भी राज्य पर हमला करना अथवा लूटना अभीष्ट नहीं था। उनका अभीष्ट तो केवल यह था कि मेवाड़ की भूमि किसी की एड़ी-तले कुचली न जाये। अम्बर के मानसिंह का वह केवल घमण्ड तोड़ना चाहते थे। वह उन्होंने किया और वहाँ से सीधे एकलिंगजी के दर्शनार्थ चल पड़े।

अरावली की दुर्गम पहाड़ियों के बीच देवाधिदेव महादेव एकलिंग के रूप में विराजमान थे। सिसोदिया के पूज्य और प्रातःस्मरणीय महाराणा बापा रावल ने अपने पवित्र कर-कमलों द्वारा एकलिंगजी की स्थापना की थी। मेवाड़ के सभी महाराणा एकलिंगजी के दरबार में सिर झुकाते आये थे। जिस दिन प्रताप एकलिंगजी के दर्शनार्थ मन्दिर में पहुँचे सारा मेवाड़ उमड़कर वहाँ आ उपस्थित हुआ। आगन्तुकों में असंख्य भील थे, राजपूत थे, व्यापारी और कारीगर थे, ब्राह्मण और साधु थे, स्त्री, बच्चे और बूढ़े थे।

महाराणा प्रताप और महारानी ने एकलिंगजी की विधिवत पूजा की, उन्हें मेवाड़ के अधिपति मानकर पुनः अपने मंत्रिपद की शपथ ली और तब आँसू-भरी आँखों से प्रताप ने दोनो हाथ जोड़कर प्रार्थना की—हे देवाधिदेव, मुझे इस योग्य बना कि मैं मेवाड़ की रक्षा कर सकूं।

पूजा के पश्चात् एकलिंगजी के चौक में विशाल दरबार का आयोजन हुआ। समस्त प्रजाजनों को वहाँ उपस्थित देख प्रताप गद्‌गद हो उठे। वह निर्णय न कर पाये कि किसे पुरस्कार दें और किसे नहीं। किसानों ने जब जरूरी समझा खेती की और जब जरूरी समझा खेती को उजाड़ दिया; सैनिकों ने जब जरूरी हुआ अपने सिर कटाये और शत्रुओं के सिर काटे; व्यापारियों ने लाखों रुपये उपार्जित किये और लाखों रुपये उजाड़ दिये; भील नर-नारियों ने तो राणा और उनके परिवार को अपनी आँख की पुतलियों से भी अधिक हिफाजत के साथ रखा था; और मेवाड़ी महिलाओं ने सुहाग के आभुषण बेचकर भी सेना के लिए शस्त्रास्त्र खरीदने में सहायता दी थी। किसके बलिदान और आत्म-त्याग को अधिक समझा जाता !

'प्रजा महाराणा को रत्नजटित स्वर्ण मुकुट पहनाना चाहती है।' भामाशाह ने कहा।

'लाओ मुकुट !' महाराणा ने कहा।

भामाशाह ने बड़ी प्रसन्नता से मुकुट महाराणा के हाथ में थमा दिया। राणाजी ने उसे अपने मस्तक पर धारण नहीं किया, आदरपूर्वक एकलिंगजी की गादी पर धर दिया।

फिर उन्होंने कहा—यह मुकुट महाराजाओं के महाराज देवाधिदेव महादेव के मस्तक पर ही शोभा पा सकता है। भामाशाहजी, मैं तो भगवान एकलिंगजी

का सामान्य सेवक हूँ। यहाँ उपस्थित समस्त प्रजाजनों-जैसा ही, उन्हीं में से एक हूँ। सबको अपने में और अपने को सभी में देखता हुआ सबके साथ एकता का अनुभव कर रहा हूँ। विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् की अनुभूति मुझे हो रही है। मेरे मस्तक पर मुकुट पहनाकर मुझे सबसे पृथक् क्यों करना चाहते हैं....

महाराणा के इन शब्दों को सुनते ही वहाँ उपस्थित सभी नर-नारी हर्ष-विभोर हो उठे। उन्होंने अपने प्यारे महाराणा का इतने उत्साह से जयजयकार किया कि दसों दिशाएँ गूंज उठीं।

मंत्रिमंडल ने पुरस्कारों और पदवीदान का विशाल कार्यक्रम आयोजित किया था। लेकिन जहाँ सारी प्रजा ही प्राणों की बाजी लगाकर लड़ी हो वहाँ कौन तो पुरस्कार देता और कौन लेता! अन्त में महाराणा के इस प्रस्ताव को कि सभी ज्ञात-अज्ञात शहीदों की स्मृति में चेतक के नाम से, उसके निधन-स्थान पर एक चबूतरा बना दिया जाये, सबने सहर्ष स्वीकार किया। महाराणा-महारानी के साथ सबके सहभोज से उस दिन के समारोह का समापन हुआ।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक यही विचार तरंगित हो रहा था—ऐसा है हमारा यह महाराणा: हम सब के हृदयों को संयुक्त करके यदि एक देव-मूर्ति को निर्मित किया जाये तो उसका रूप-रंग ठीक हमारे इस राणा-जैसा होगा।

उधर महाराणा प्रताप के मन में भी लगभग इसी से मिलता-जुलता विचार आ रहा था—यह है मेरी प्रजा! अपने हृदय के अणु-परमाणु को बिखेरकर उत्पन्न किया हुआ मेरा ही विराट रूप।; प्रताप को गौरवान्वित करनेवाली प्रताप की परम्परा ही उसकी प्रजा है।

और आधीरात तक एकलिंगजी की उपत्यका में राजा और प्रजा के परिवार सम्मिलित रूप से उत्सव मनाते रहे।

शिवमन्दिर पर दीप जलाये गये और दीपमालिका से सारा पार्वत्य प्रदेश आलोकित हो उठा। ऐसा लग रहा था मानो कातिक के पूनो की चाँदनी ही खिल उठी हो। शिवमन्दिर का स्वर्ण कलश चन्द्रमा की भाँति जगमगा रहा था; एकलिंग-जी के मन्दिर की ध्वजा पवन में फरफराती आकाश के साथ ताली बजाती प्रतीत होती थी।

वहाँ उपस्थित सारा मानव-समुदाय नाच रहा था, गा रहा था, हँस रहा

था, किल्लोल कर रहा था। राणा और रानी के साथ मेवाड़ की समस्त जनता स्वाधीनता का उत्सव मना रही थी।

साधन-विहीन प्रताप की विजय हुई थी। पराक्रमशील मेवाड़ ने साधन-सम्पन्न मुगल-साम्राज्य को ठोकर मारकर बाहर फेंक दिया था।

: : ६ : :

'राणाजी, आपकी आँखों में अब भी असन्तोष क्यों?' उत्सव की उसी रात जब महाराणा और महारानी एकान्त में मिले तो रानीजी ने प्रताप से पूछा। योगी-जैसे राणाजी के चेहरे पर हर्ष-विषाद की छाया क्वचित् ही दिखाई देती थी। परन्तु सतत साथ रहनेवाली रानी की अनुभवी आँखों से उनका सूक्ष्माति-सूक्ष्म भाव-परिवर्तन भी नहीं छिप पाता था।

'असन्तोष? तुम्हारे-जैसी महारानी जीवन-सहचरी है, फिर मुझे असन्तोष ही क्या?' महाराणा प्रताप ने कहा।

'हँसी-मजाक की उम्र तो हमारी कभी की बीत गई राणाजी!'

'नहीं! उम्र कितनी ही बीत जाये, हँसना-खेलना तो फिर भी बना ही रहता है। लेकिन मैं तो तुम्हें शायद ही कभी हँसने-हँसाने का खेल खिला पाया हूँ।'

'हँसना-खेलना कब से बन्द हुआ, कहिए तो याद दिला दूं?'

'मेवाड़ की भूमि हाथ से निकल जाये, रहने के स्थान बदलने पड़ें, मुगल सेना चारों ओर से घेरे हुए हो तब हँसना-खेलना किसे सूझ सकता है?'

'अब तो मेवाड़ हाथ में आ गया।'

'रानीजी, चित्तौड़ अभी तक हाथ में नहीं आया। चित्तौड़ के बिना मेवाड़ कैसा?'

महाराणा प्रताप मुगलों को मेवाड़ से निकाल चुके थे, लेकिन चित्तौड़ को जीतने में अभी तक उन्हें सफलता नहीं मिली थी। हारते और भागते हुए मुगलों ने भी जैसे इरादा कर लिया था कि चाहे सारा मेवाड़ महाराणा ले लें, लेकिन चित्तौड़ को न जाने देंगे। इस प्रसिद्ध दुर्ग को बचाने के लिए मुगलों ने अपनी पूरी ताकत लगा दी थी। अकबर ने किले की ऐसी मोरचेबन्दी की थी कि मेवाड़ की सारी सेना उतर आती तो भी वहाँ की एक ईंट न खिसकने पाती। वास्तव में चित्तौड़

मेवाड़ से पराजित और निष्कासित मुगल-सत्ता की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। मुगलों की सारी शक्ति और सारा ध्यान यहीं केन्द्रित हो गया था।

सिसोदिया वंश के राणा को अपने चरणों में झुकाने की अकबर की बड़ी अभिलाषा थी। उसकी यह आकांक्षा जब किसी भी तरह पूरी न हुई तो उसने राणा प्रताप के छोटे भाई सगर को, जो मेवाड़ छोड़कर अकबर का शरणागत हुआ था, चित्तौड़ के एकाकी किले को मेवाड़ का राज्य घोषित कर, वहाँ की गादी पर बिठा दिया। इस प्रकार अकबर ने मेवाड़-विजय और सिसोदिया वंश के शरणागत होन के सुख और सन्तोष का अनुभव किया।

लेकिन मुगलों को यह डर बराबर लगा रहता कि महाराणा प्रताप अकबर के इस सुख और सन्तोष को कभी भी छिन्न-भिन्न कर सकते हैं, जब भी चाहे मेवाड़ी सूरमा चित्तौड़ पर चढ़ाई कर सकते हैं। इसलिए चित्तौड़ में हमेशा बड़ी भारी सेना और किले के रक्षक-दल को तैयार रखा जाता था। महाराणा ने चित्तौड़-विजय के कई प्रयत्न किये, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। सारा मेवाड़ उन्होंने मुगलों से जीत लिया था, अकेला चित्तौड़ ही मुगलों के पास रह गया था। परन्तु चित्तौड़ था सारे मेवाड़ की नाक। जब तक नाक मुगलों के कब्जे में रहती राणाजी क्योंकर सन्तुष्ट रह सकते थे! इसलिए मेवाड़ में सर्वत्र सुख, शान्ति और सम्पन्नता होते हुए भी महाराणा असन्तुष्ट थे। उनके चेहरे पर हर्ष और उल्लास नहीं था। रानीजी इस बात को जानती थीं। उन्हें ज्ञात था कि चित्तौड़ महाराणा के दिल में खटकता रहता है। राणाजी की बात सुनकर उन्होंने कहा—वह भी अब हाथ में आ जायेगा। मेवाड़ का चित्तौड़ मेवाड़ में ही रहेगा।

'सब-कुछ तो हो गया, केवल यही नहीं हुआ, कोई इसे न कर सका।'

'आप अमर को आदेश दें। वह करेगा इसे।' रानी ने कहा।

सुनते ही राणाजी का चेहरा उतर गया। उन्होंने दृष्टि दूसरी ओर घुमा ली। पहाड़ी उपत्यका की ओर देखते हुए उन्होंने विषण्ण स्वर में कहा—नहीं रानी, बापा रावल का पुण्य अब क्षीण हुआ, सम्भवतः मैंने ही सारे पुण्य को खर्च कर डाला।

'नहीं महाराज, मैं तो ऐसा मानती हूँ कि आपने उसमें वृद्धि ही की है।'

तब, उत्सव की उस रात, महाराणा ने बड़ी गम्भीरता से अपनी महारानी को

वह गुप्त बात बताई जिसे उन्होंने अपने ही तक रखा था। वयःप्राप्त होते ही अमरसिंह ने अपने लिए प्रियतमा खोज निकाली थी। वनवासी राणा ने उसी समय चुपचाप अमर का विवाह भी कर दिया। मेवाड़ जीतकर भी, जब तक चित्तौड़ पर अधिकार नहीं होता, महाराणा को महलों में रहना नहीं सुहाया। उन्होंने अपने तथा राजपरिवार के सदस्यों के लिए पिछोले की पाल पर झोपड़ियाँ बनवा लीं और वहीं रहने लगे। झोपड़ियों में सुख-सुविधा के साधन भी झोपड़ियों-जैसे ही थे। उधर कुम्भलमेर, उदयपुर और गोगुंदा के राजमहल खाली पड़े हुए थे। महाराणा को चित्तौड़ की चिन्ता में रात में भी नींद नहीं आती थी। वह अकसर अपनी झोपड़ी से निकल आते और पिछोले की पाल पर, अन्धेरी रात में अकेले घूमते हुए चित्तौड़ को जीतने की योजनाएँ बनाया करते। एक दिन वह इसी तरह झोपड़ियों के समीप घूमते हुए सोच रहे थे कि जिस प्रकार शक्तिसिंह आ मिला उसी प्रकार सगरसिंह भी आ मिले तो चित्तौड़ को यों चुटकी बजाते जीता जा सकता है; परन्तु सगर को मनाया जिस तरह जाये! हिन्दू राज्यों में तो कोई सहायता करनेवाला दीखता नहीं था। प्रायः सभी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी और दूसरों को भी यही सलाह देते रहते थे। अब अकबर से सन्धि करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। जिस प्रकार मेवाड़ को तलवार के जोर पर जीता उसी प्रकार चित्तौड़ को भी जीतेंगे .... इस प्रकार सोचते हुए राणाजी अँधेरे में घूम रहे थे कि हठात् उनके कानों में एक नारी-कण्ठ से निकले हुए निम्न शब्द पड़े :

'प्राणनाथ, हम कब तक इन झोपड़ियों में पड़े रहेंगे ? क्या हमारे भाग्य में ये झोपड़े ही लिखे हैं ?' स्वर अमरसिंह की पत्नी का था। एकान्त में बात कर रहे स्नेही-जन और सन्तान का वार्तालाप सुनना घोर पातक है, अनुचित तो है ही, परन्तु राणा के पाँव वहीं रुक गये। सन्तान का स्नेह-सम्भाषण और प्रेमीजनों की प्रेमवार्ता के साथ ही वह मेवाड़ के भावी राणा की बात भी थी। प्रताप अमरसिंह का प्रत्युत्तर सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। क्योंकि वर्तमान राजा को यह अधिकार तो हमेशा होता ही है कि वह भावी राजा के विचारों और बातों को जब चाहे और जैसे भी चाहे मालूम करे।

'कुँवरानी, मेरा बस चले तो तुम्हारे लिए इसी झोपड़ी पर संगमरमर का महल खड़ा कर दूं। जानता हूँ कि तुम्हारे-जैसी कोमलांगी यहाँ नहीं रह सकती,

पर महाराणा की जिद, न आप महलों में रहते हैं और न दूसरों को रहने देते हैं।'

अमर के इन शब्दों को सुना तो महाराणा सन्नाटे में आ गये। शब्द नहीं थे उस तपस्वी, देशाभिमानी, स्वतंत्रता के पुजारी के हृदय पर जलते हुए अंगारे थे। उन्होंने उसी समय झोपड़ी के द्वार पर दस्तक दी। अमर और उसकी कुँवरानी चौंक पड़े। द्वार खोलकर बाहर आये। देखा तो महाराणा सामने खड़े थे। दोनों ने प्रणाम किया। प्रताप ने सारे क्रोध, सारी उद्विग्नता को पीकर कहा—कुँवरजी, कल से आप कुँवरानीजी सहित उदयपुर के महल में रहेंगे।

अमर पर तो घड़ों पानी पड़ गया! हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हुए दीन स्वर में बोला—दाता होकम, अपराध क्षमा हो। जहाँ आप, वहाँ मैं।

'अमर, यह मेरा आदेश है।' प्रताप ने कहा।

'नहीं दाता होकम, इस आदेश का मैं कभी पालन नहीं कर सकता। दण्ड-स्वरूप मेरा यह सिर आपके चरणों में प्रस्तुत है।' अमर रोता हुआ राणा के पाँवों में गिर पड़ा।

कुँवरानी ने भी राणा के पाँव पकड़ लिये और बोली—विष की गाँठ तो मैं हूँ महाराज। अपराध मैंने किया है। दण्ड भी मुझी को दिया जाये। हँसी-हँसी में राजमहल माँगने की भूल कर बैठी और सो भी यह जानते हुए कि महाराणा की पुत्रवधू के लिए ऐसी माँग उचित नहीं....

'कुछ नहीं। भीतर जाओ। मैंने प्रण किया है अपने लिए....चित्तौड़-विहीन मेवाड़ मेरे लिए मेवाड़ है ही नहीं। जब उस गढ़ के महलों में पाँव रखूंगा तभी मेवाड़ के दूसरे महल मेरे लिए खुलेंगे, उससे पहले नहीं। लेकिन यह प्रण अकेले मेरे लिए है....' यह कहते हुए प्रताप वहाँ से चले गये। इस घटना से अमर इतना लज्जित हुआ कि पन्द्रह दिनों तक राणा को अपना मुंह नहीं दिखा सका।

प्रताप ने यह बात आज तक किसी से कही नहीं, अपनी पत्नी को भी कुछ नहीं बताया, मन में ही रखे रहे। आज स्वाधीनता-उत्सव के समय जाने कैसे यह बात उनके मुंह से निकल गई। सुना तो रानी भी सन्नाटे में आ गई। अमर राणा ही का नहीं उनका भी तो पुत्र था। वह सहसा कुछ कह न सकीं।

पूरी कहानी सुनाकर महाराणा ने कहा—पुण्य में वृद्धि हुई है या नहीं यह तो नहीं जानता, परन्तु यह डर अवश्य लग रहा है कि कहीं सारा पुण्य क्षीण न हो जाये।

'अमर को उत्तराधिकार से ही वंचित क्यों न कर दिया जाये। महलों का सुख चाहनेवाले राजकुजार को पदभ्रष्ट ही करना चाहिए, चाहे वह युवराज ही क्यों न हो !' रानी ने छाती पर पत्थर रखकर कहा।

'नहीं रानीजी, हमें अमर के साथ इतनी कठोरता नहीं बरतनी चाहिए। हमारा जीवन आग, तलवार और भालों की नोक का जीवन था! उस जीवन से न हम थके, न हमारी प्रजा थकी—किसी ने हार नहीं मानी। अमर जब आठ वर्ष का था तभी से हमारे साथ रहा और अपने प्राणों की बाजी लगाता रहा। कई बार वह मृत्यु के मुख में जाकर लौट आया है। मेरी सभी विजयों और सफलताओं में उसका भी हिस्सा है। जीवन में मैंने भय कभी जाना नहीं, केवल एक भय को छोड़कर....' प्रताप ने इस भाँति कहा मानो कोई संस्मरण सुना रहे हों।

'भय ? आपको भय !' रानी ने चकित होकर पूछा।

'हाँ रानी, भय ही नहीं, महाभयंकर भय।'

'किस बात का !'

'पुरोहित की भविष्यवाणी का !'

'कौन-सी भविष्यवाणी ?

प्रताप ने वह किस्सा सुनाया जब किशोरवय में वह शक्तिसिंह के साथ आखेट को गये थे और सुअर के शिकार को लेकर दोनो भाइयों में तलवारें खिंच गई थीं। तब गोपीनाथ के पिता राजपुरोहित ने दोनो भाइयों को रोकते हुए अपने को बलिदान कर दिया था। ब्रह्म-हत्या का वह पाप राणा के मन में बैठ गया था और मरते-मरते राजपुरोहित ने जो कहा वह तो जीवन-भर उनकी आत्मा को कचोटता रहा। राजपुरोहित ने कहा था—भाई-भाई इस तरह लड़ोगे तो मातृभूमि सदा-सदा के लिए दासता की जंजीरों में बँध जायेगी। माता को बन्दी बनाना हो तो लड़ो। और देखो, मा तो बन्धनों में जकड़ी कराह ही रही है, देखो चित्तौड़ को !

उसी दिन से प्रताप के हृदय में यह भय पैठ गया कि मा मेरे ही पाप के परिणामस्वरूप बन्धन में है। वह इस विचार को अपने मन से ठेलने का बहुत प्रयत्न करते, लेकिन सफल नहीं हो पाते थे। काम और संघर्ष की भीड़ में कभी भूल भी जाते तो मन में इस भय की छाया बनी रहती थी।

यह घटना घटी थी प्रताप के पिता उदयसिंह के समय ! चित्तौड़ उस समय

भी मुगलों के ही अधिकार में था। पन्ना और नन्दिनी के बिना उदयसिंह का सारा जीवन निरानन्द हो गया था। जब प्रताप गादी पर बैठे तो चित्तौड़ हाथ से निकल चुका था। रात-दिन उनके कानों में राजपुरोहित के अन्तिम शब्द गूंजते रहते थे। बेड़ियों में जकड़ी हुई मातृभूमि की दीन-मलिन मूर्ति उनकी आँखों के आगे से कभी हटने ही नहीं पाती थी। उनके मन में यह बात बैठ चुकी थी कि ब्रह्म-हत्या का पाप कभी चित्तौड़ को जीतने न देगा। उन्होंने सारे मेवाड़ से मुगलों को निकाल बाहर किया, लेकिन चित्तौड़ पर मुगलों का झण्डा फिर भी लहराता ही रहा। मेवाड़ को उन्होंने स्वतंत्र किया, लेकिन चित्तौड़ मुगलों की लौह-एड़ के नीचे कराहता ही रहा। और राणा इसे ब्रह्म-हत्या का ही अभिशाप मानते थे।

और ब्रह्म-हत्या भी कैसी? मेवाड़ के राजपुरोहित की हत्या! राजपुरोहित, जो मेवाड़ के राणा का भी गुरु, पूज्य और वन्दनीय होता है। और मेवाड़ के राणा का अर्थ होता है मेवाड़ का प्राण, मेवाड़-मही की आत्मा। जब मेवाड़ का शरीर, एक ओर प्रताप और दूसरी ओर शक्तिसिंह के रूप में, अपने ही ऊपर वार कर रहा था तो मेवाड़ की आत्मा राजपुरोहित के रूप में उन्हें रोकने के लिए बीच में आ कूदी और कट मरी! वह राजपुरोहित नहीं मारा गया, मेवाड़ के जीवन में जो भी पूज्य, वन्दनीय और श्रेष्ठ था वही मौत के घाट उतार दिया गया। उस दिन से प्रताप को निरन्तर लगता रहता था कि मेवाड़ की आत्मा स्वयं उन्हीं के हाथों मार डाली गई और मेवाड़ निष्प्राण हो गया! इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए उन्होंने जीवन-भर शौर्य-तर्पण किया, पूरे पन्द्रह वर्ष तक असिव्रत की तपस्या की, किन्तु चित्तौड़ की पराधीनता का कलंक उनके ललाट से मिट न सका। यह सच था कि छोटा-सा मेवाड़ विशाल मुगल-साम्राज्य में समा न सका, परन्तु यह भी उतना ही सच था कि अकेला चित्तौड़ मेवाड़ से अब भी बाहर था। यह दुःख प्रताप को अन्दर-ही-अन्दर खाये जाता था। सोते-बैठते, रानी के साथ बातें करते, सामन्तों और मंत्रियों के साथ परामर्श करते, भाट-चारणों के कवित्त और कवियों की बिरुदावली सुनते, सैनिकों को तालीम देते और प्रजाजनों का अभिवादन स्वीकार करते राणा के मन में यह विचार गूंजता और उनकी आत्मा को कुरेदता रहता कि सब हुआ, परन्तु चित्तौड़ अभी तक हाथ में नहीं आया; चित्तौड़, जो मेवाड़ की आत्मा है!

उत्सव का समापन हुआ। मेवाड़ स्वतंत्र हो गया। लोग-बाग अपने-अपने काम-धन्धे में लग गये। सर्वत्र आनन्द और उल्लास था। परन्तु राणा के चेहरे पर अब भी विषाद की छाया थी। जिस हँसी और आनन्द को रानी तथा प्रजाजन राणाजी के चेहरे पर देखना चाहते थे वह उन्हें वहाँ नहीं दिखाई दिया। कभी भोजन करते या पानी पीते समय राणाजी की दृष्टि अन्तर्मुखी हो जाती और वह चित्तौड़ का स्पर्श कर आते थे। कभी रात में हड़बड़ाहकर उठ बैठते और घण्टों चित्तौड़ की ओर टक लगाये देखा करते। जीवन की अन्तिम घड़ी तक उन्हें चित्तौड़ की याद सताती और बेचैन करती रही।

इसी तरह करते-कराते राणाजी के अन्तिम दिन आ लगे! इन पिछले दस वर्षों में मुगलों को उन्हें छेड़ने का साहस नहीं हुआ। हो सकता है कि अकबर के प्रशंसक इसे उसकी उदारता समझें, और यह तो मुक्तकंठ से स्वीकार करना ही होगा कि अकबर को अपने शत्रु और मित्र की बहुत अच्छी पहचान थी। परन्तु राणा ने कभी अकबर की दया अथवा उदारता की अपेक्षा नहीं की थी। हल्दीघाटी के युद्ध से लेकर प्रताप के पूरे जीवन और उनकी मृत्यु के बाद तक के इतिहास पर दृष्टि डालें तो उससे और जो भी सिद्ध हो, मेवाड़ के प्रति अकबर की उदारता तो नहीं ही सिद्ध होती। हाँ, यह अवश्य सिद्ध होता है कि अकबर की दिग्विजय को यदि कोई रोक सका तो वह महाराणा प्रताप ही थे। वास्तव में पन्द्रह वर्ष के दीर्घ युद्ध ने मुगल सल्तनत की कमर तोड़ दी थी। अकबर को विश्वास हो गया था कि प्रताप को न झुकाया जा सकता है, न तोड़ा जा सकता है। पूरे पन्द्रह वर्ष तक लड़ते रहने के बाद मुगलों में राणा प्रताप से लड़ने का न साहस रहा था, न उमंग। इसलिए अकबर ने यही श्रेयस्कर समझा कि मेवाड़ को छोड़कर अपनी सैनिक शक्ति कहीं अन्यत्र लगाये, जहाँ अपेक्षाकृत अधिक सरलता से विजय प्राप्त की जा सके।

साधन-सम्पन्न आक्रमणकारी को असफलता का शाश्वत बोध करानेवाले इस महान नरनाहर की अन्तिम घड़ी भी आ पहुँची। उस समय भी इसकी चिन्ता का मुख्य विषय चित्तौड़ ही था। लम्बे, कठोर युद्धों और अमानुषी कष्टों का अभ्यस्त शरीर जर्जर और क्लान्त मृत्यु-शैय्या पर पड़ा था। जीवन में इस महा-पुरुष ने महान कार्य किये थे, लेकिन अन्तिम समय में भी चेहरे पर शान्ति और

सन्तोप नहीं था। चित्तौड़ की चिन्ता चिता बनकर इसके मन-प्राणों को जला रही थी। पिछोले की पाल पर घास-फूसकी झोपड़ी में पुआल के बिस्तर पर मेवाड़ का महाराणा पड़ा हुआ था और प्रजाजन दर्शनों को चले आ रहे थे। सैनिक आये, सरदार आये, सामन्त, महाजन और कृषक आये, आदिवासियों की तो भीड़ ही लगी हुई थी। लोग भीतर जाते, प्रणाम करते, कुशल-क्षेम पूछते और बाहर निकल आते! आने-जानेवालों का ताँता लगा हुआ था, परन्तु शोरगुल का कहीं नाम भी न था! चारों ओर शान्ति छाई हुई थी। अन्दर राणा के पास केवल परिवार के लोग और जिन्होंने जीवन-भर साथ दिया था ऐसे कुछ सरदार ही बैठे हुए थे। और किसी को वहाँ रुकने और बैठने की अनुमति नहीं थी।

राणाजी के चेहरे पर असन्तोष और व्यग्रता देखकर सरदार सालुम्बरा ने धीरे से पूछा—महाराज, अब तो सारे मेवाड़ में शान्ति है, फिर आपके चेहरे पर यह अशान्ति कैसी ?

'सालुम्बराजी, जीवन व्यर्थ ही चला गया !' फीकी हँसी हँसकर राणा ने कहा। जिस कण्ठ से सिंह-जैसी दहाड़ सुनाई देती थी वह घुटने लगा था।

'किसका जीवन व्यर्थ गया महाराज ?'

'मेरा, राणा प्रताप का !'

'जिसके कारण हिन्दू धर्म जीवित रह सका, जिसने क्षत्रियत्व की लाज रखी, जिसके नाम पर आज समस्त आर्यावर्त गर्व से माथा ऊँचा किये खड़ा है, जिसने चक्रवर्तियों का चक्र खंडित कर दिया, उसके जीवन को व्यर्थ और निष्फल कहनेवाले तो अकेले आपको ही देखा महाराज !' सालुम्बरा को राणा की बात सुनकर बहुत बुरा लग गया था।

उसी समय राणा की रोग-शैय्या के समीप बैठे हुए चिन्तामग्न राजकवि की वाणी पर सरस्वती आ विराजमान हुई और उन्होंने वीर-रस से पूर्ण एक कविता सुनाई। उस जोशीले छन्द को सुनकर राणा के शिथिल अंगों में भी नवजीवन का संचार होता दिखाई दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण राणा को चित्तौड़ की याद हो आई और उन्होंने खिन्न स्वर में कहा—कविराज, प्रताप की देह पर अलंकार होता तो अभी उतारकर आपको दे देता। लेकिन . . . .

यह सुनते ही भामाशाह उठ खड़ा हुआ और उसने प्रताप के समीप एक स्वर्ण-

कंकण और मुक्तामाला रखते हुए कहा—अन्नदाता, मेवाड़ के महाराज को कमी ही किस बात की ? महाराणा के हुक्म पर तो वसुन्धरा अपने खजाने खोल देती है और आकाश की अटारियों के द्वार उन्मुक्त हो जाते हैं । कविराज, इन्हें पहन लीजिए और जो चाहिए माँग लीजिए ।

भामाशाह ने आभूषणों को प्रताप का हाथ छुआकर कविराज को पहनाने का प्रयत्न किया। पर कवि ने इनकार कर दिया और बोला—अलंकारों और पारितोषकों का भूखा कवि जिस दिन मेवाड़ में जन्म लेगा उस दिन कविता मर चुकेगी। परन्तु ओ मेवाड़-कुल-तिलक, आप 'लेकिन' कहते-कहते क्यों रुक गये ? कविता में आपको ऐसी कौन-सी कमी दिखाई दी ?

'कमी यही कि जो सिसौदिया चित्तौड़ को मुगलों से छीन न सका उसके विरुद का गान कैसा ? उसके नाम पर कविता कैसी ?' प्रताप ने कहा। देह में शक्ति नहीं थी, परन्तु चित्तौड़ का नाम निकलते ही उनकी आँखों में चमक आ गई थी।

'महाराणा, आपके चरणों की सौगन्ध, बापा रावल के पवित्र सिंहासन की शपथ, जब तक चित्तौड़ को स्वतंत्र नहीं कर लेंगे घास-फूस के बिस्तरे पर सोयेंगे, वृक्ष के पत्तों पर भोजन करेंगे, राजमहलों में नहीं रहेंगे और मिष्ठान्न नहीं खायेंगे।' यह कहते हुए सालुम्बरा सरदार ने राणाजी के चरण छुए और म्यान से तलवार निकालकर माथे से लगाई ।

फिर एक-एक कर प्रताप के समीप बैठे हुए सभी सम्बन्धियों और सरदारों ने सालुम्बरा की ही भाँति उस प्रतिज्ञा को दुहराया। अब कहीं जाकर प्रताप का विषाद कुछ कम हुआ और चेहरे पर मुस्कराहट खिल उठी। उन्होंने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—अब . . . . शान्ति . . . . मैं इस जर्जर शरीर को छोड़ता . . . .

प्रताप ने नेत्र मूंद लिये। दूर से आता हुआ गौतमी के भजन का स्वर उन्हें सुनाई दिया। फिर गौतमी ने राणा की पर्णकुटी में प्रवेश किया। राणाजी ने आँखें खोलकर कहा—कौन, गौतमी ?

'हाँ महाराज, जमुनाजी का जल और वृन्दावन का तुलसी-दल लायी हूँ।'

'किसके लिए ?'

'मेवाड़ के मुकुटधारी के लिए। प्रभु का प्रसाद और किसे दूं !'

'लाओ !' राणाजी ने कहा। गौतमी ने प्रताप को जमुना का जल पिलाया

और तुलसी-दल उनके मुख में रख दिया। पानी की घूंट के साथ ही प्रताप की आत्मा ने नश्वर देह का परित्याग किया। जिस चेहरे पर सारे जीवन में एक क्षण के लिए भी शान्ति और सन्तोष दिखाई नहीं दिये थे उस चेहरे पर इस समय असीम शान्ति और प्रसन्न मुस्कराहट थी। तलवारों के पूरे जंगल में वनराज केशरी की भाँति निडर और निःशंक घूमनेवाला प्रताप अब वहाँ न था। केवल नश्वर देह पड़ी हुई थी।

वहाँ उपस्थित सभी की आँखों में आँसू छलक आये। और अकेले वे ही नहीं, लाखों आँखें चौधार आँसू रो उठीं। अकेले मेवाड़ में ही नहीं, सारे भारत में जिसने भी सुना अपना सिर धुन लिया। अपनी टेक पर अडिग प्रणवीर प्रताप आज नहीं रहा था। उसके शोक में सारा हिन्दू संसार रो रहा था।

लेकिन अकेला हिन्दू संसार और हिन्दुत्व ही नहीं इस्लामी आलम और मुग-लई भी शोकमग्न थी। जिसके आतंक से सारा आलम थरथराता था उसके सामने खम ठोककर खड़ा रहनेवाला जाँबाज और दिलेर दुश्मन आज नहीं रहा था। मुगलों के जौहर को परखनेवाला जौहरी सदा के लिए सो गया था।

अकबर के दरबार की शान-शौकत और राग-रंग तो वही थे, परन्तु शोक की एक अदृश्य काली छाया सब पर छायी हुई थी।

'बाला राणा खुदा के प्यारे हुए!' अकबर के मुख से शोकोद्गार निकल पड़े।

'जहाँपनाह की आँख का काँटा दूर हुआ।' एक दरबारी ने बादशाह को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ठकुरसुहाती की।

बादशाह ने उस चापलूस दरबारी की बात को सुना ही नहीं। अपनी ही धुन में कहता गया—वह माबदौलत से उम्र में छोटे, बहुत ही छोटे थे.... आखिर तक दिल्ली को सिर न झुकाया, नहीं ही झुकाया....

कहते-कहते बादशाह रुक गया। और मन-ही-मन राणा के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन करता रहा।

राजकवि चारण आढा उस समय अकबरी दरबार में ही था। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद अकबर ने उसकी ओर देखा और कहा—कविराज, बता सकते हैं इस समय माबदौलत किन खयालों में मसरूफ हैं?

'जहाँपनाह, सम्राट के हृदय को अगर मैं ठीक से समझ सका हूँ तो इस समय

हुजूर के मन के भाव कुछ इस तरह के होने चाहिए।' चारण ने कहा और वहीं भरे दरबार में प्रताप की प्रशस्ति में यह छप्पय सुनाया :

अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी ।
गौ आडा गवडाय, जिको बहतो धुरवामी ।।
नवरोजे नह गयो, न गौ आतसां नवल्ली ।
न गौ झरोखा हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली ।।
गहलोक राणा जीती गयो, दसणमुंद रसना डसी ।
निसास मूक लहियाँ नयण, तो मृत शाह प्रताप नी ।।*

चारण की हिम्मत देखकर सब दंग रह गये। अकबर के ही मुंह पर उसके कट्टर शत्रु प्रताप का यशोगान? कहीं शहन्शाह हाथी के पाँवतले न दे दें!

परन्तु अकबर को क्रोध न आया। वह शत्रु की वीरता और महानता का आदर और सराहना करना अच्छी तरह जानता था। उसने अँगुली की नोक से आँखों के छोर पर छलक आये अश्रुबिन्दुओं को पोंछकर अपने समकक्ष वीरवर का शौर्य-तर्पण किया।

—:o:—

---

* अपने अश्व को वह बिना दागा (मुगल सेना में भर्ती होनेवाले सैनिकों के घोड़े दाग दिये जाते थे। यह प्रथा पहले शेरशाह ने चलाई और उसके बाद अकबर ने इसका अनुसरण किया) हुआ और अपनी पाग (मुकुट) को बिना झुका हुआ ले गया। अपने यश को गुंजाकर वह मुक्तिपथगामी हुआ। नवरोज के उत्सव में वह सम्मिलित नहीं हुआ, शाही डेरे पर वह कभी गया नहीं। जिस झरोखे में खड़े होकर बादशाह मुजरा लेते थे और जहाँ सारी दिल्ली ही नहीं दुनिया भी जाती थी, वहाँ भी वह नहीं गया। गहलोत वंश का वह राणा विजयी हुआ! शहन्शाह ने सुना कि प्रताप मर गया तो दुःख से भरी लम्बी साँस ली और उनकी आँखे भर आईं।